इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

BHIC - 108

आधुनिक पश्चिम का उदय - II

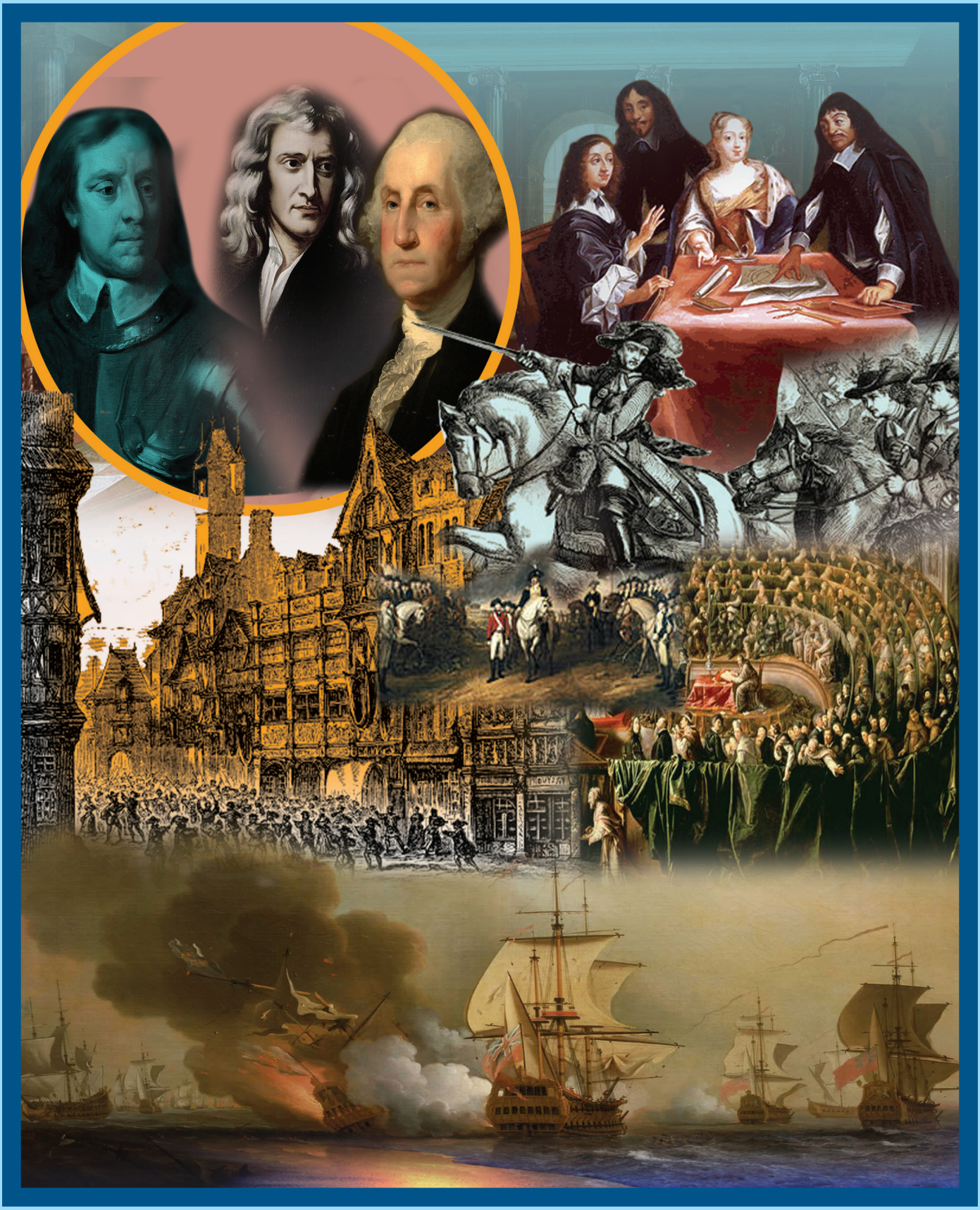

BHIC- 108

आधुनिक पश्चिम का उदय- II

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. अरविन्द सिन्हा (*रिटायर्ड*) इतिहास संकाय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	प्रो. स्वराज बासु, इतिहास संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	प्रो. श्रीकृष्ण (*रिटायर्ड*) इतिहास संकाय, इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, रेवाड़ी, हरियाणा
प्रो. आभा सिंह इतिहास संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	डॉ. नलिनी तनेजा (*रिटायर्ड*) स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	श्री अजय माहूरकर इतिहास संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
डॉ. रोहित वांचू इतिहास विभाग, सेंट स्टीफन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	प्रो. शशिभूषण उपाध्याय इतिहास संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इग्नू, नई दिल्ली	**पाठ्यक्रम संयोजक** प्रो. शशिभूषण उपाध्याय

पाठ्यक्रम निर्माण दल

इकाई सं.	इकाई लेखक
1 और 11	प्रो. अरविन्द सिन्हा (*रिटायर्ड*) सेंटर फॉर हिस्टौरिकल स्टडीज़, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
2, 5, 6 और 8	डॉ. नलिनी तनेजा (*रिटायर्ड*) स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
3, 4 और 9	प्रो. शशिभूषण उपाध्याय इतिहास संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
7, 10 और 12	प्रो. श्रीकृष्ण (*रिटायर्ड*) इतिहास संकाय, इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, मीरपुर, रिवाड़ी
13	डॉ. रोहित वान्चू डिपार्टमेंट ऑफ हिस्ट्री, सेंट स्टीफेन्स कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

पाठ्य-सामग्री और प्रारूप सम्पादन	अनुवाद
प्रो. शशिभूषण उपाध्याय, इतिहास संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	श्रीमती अनीता चौधरी (इकाई 2, 3, 4, 5, 6, 8, 9, और 13) प्रो. अरविन्द सिन्हा (इकाई 1 और 11) प्रो. श्रीकृष्ण (इकाई 7, 10 और 12)

भाषा सम्पादन

प्रो. शशिभूषण उपाध्याय
प्रो. श्रीकृष्ण

मुद्रण प्रस्तुति	चित्रण
श्री यशपाल सहायक कुलसचिव सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग, इग्नू	श्री राकेश कुमार Source: www.alamy.com

जुलाई, 2021

©*इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2021*

ISBN:

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्र मुद्रण) द्वारा अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी नई दिल्ली-110068 से अथवा इग्नू की आधिकारिक वेबसाइट www.ignou.ac.in से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ द्वारा मुद्रित और प्रकाशित ।

लेज़र टाइप सेट- टेसा मीडिया एण्ड कंप्यूटर्स

पाठ्य विवरण

	पाठ्यक्रम प्रस्तावना	4
इकाई 1	सत्रहवीं शताब्दी का यूरोपीय संकट	7
इकाई 2	यूरोपीय औपनिवेशिक विस्तार और वाणिज्यवाद	27
इकाई 3	धर्म, विविधता और असहमति	41
इकाई 4	सत्रहवीं शताब्दी के यूरोप में बौद्धिक धाराएँ	57
इकाई 5	कला, संस्कृति और समाज	71
इकाई 6	इंग्लैंड की क्रांति	87
इकाई 7	आधुनिक विज्ञान	103
इकाई 8	अठाहरवीं शताब्दी में यूरोपीय राजनीति	118
इकाई 9	प्रबोधन काल	133
इकाई 10	अमेरिकी क्रांति में राजनैतिक और आर्थिक मुद्दे	148
इकाई 11	यूरोप में कृषि और जनसांख्यिकीय परिवर्तन	165
इकाई 12	उपभोग और उत्पादन के प्रारूप	182
इकाई 13	व्यापार के प्रारूप, उपनिवेशवाद और अठारहवीं शताब्दी में विचलन	196

पाठ्यक्रम प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम का सरोकार आधुनिक काल के दौरान यूरोप के आर्थिक और राजनैतिक उदय से है। यद्यपि पुनर्जागरण को बौद्धिक स्तर पर यूरोपीय आधुनिकता की शुरुआत के रूप में देखा जा सकता है, यह सत्रहवीं शताब्दी के दौरान था कि आधुनिक यूरोप को अधिक व्यापक रूप से आकार दिया गया था। इस कारण से विद्वानों ने पुनर्जागरण से लेकर सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत तक की अवधि को 'प्रारम्भिक आधुनिक काल' कहा है, जबकि सत्रहवीं शताब्दी के बाद की अवधि को आमतौर पर 'आधुनिक काल' कहा जाता है। यह इस बाद की अवधि में था कि आधुनिक यूरोप की वैचारिक, आर्थिक, सामाजिक और यहाँ तक कि सांस्कृतिक नींव रखी गई थी। इस अवधि में आधुनिक विज्ञान के उदय को सफलता के शिखर पर देखा गया, नई विचारधाराओं का विकास हुआ जिन्होंने विज्ञान के संदर्भ में मान्यता प्राप्त की, और सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन पर धर्म की पकड़ धीरे-धीरे कम होती गई। इस पाठ्यक्रम की अवधि में – सत्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक – हम इस तरह की प्रवृत्तियों की दृढ़ शुरुआत पायेंगे।

यह पाठ्यक्रम 'सत्रहवीं शताब्दी के संकट' से शुरू होता है जिसे यूरोपीय अर्थव्यवस्था, राज्य व्यवस्था और समाज को प्रभावित करने वाला एक सामान्य संकट माना जाता है। इसने यूरोप को पूरी तरह से रूपान्तरित कर देने वाली प्रक्रियाओं की शुरुआत की। **इकाई 1** में हम इन मुद्दों पर विस्तार से चर्चा करेंगे। **इकाई 2** में हम सम्पदा की तलाश में, व्यापार के लिए, बस्तियाँ बसाने के लिए, और यहाँ तक कि ज्ञान के लिए और जिज्ञासा को सन्तुष्ट करने के लिए दुनिया भर में बड़े पैमाने पर यूरोपीय विस्तार का विषय लेंगे। यह तथ्य कि विश्वव्यापी यूरोपीय प्रवासन ने यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं और विचारों को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित किया, उस पर भी यह इकाई दृष्टिपात करेगी।

कैथोलिक धर्म और प्रोटेस्टेन्टवाद के बीच महा-धार्मिक विभाजन, जो सोलहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुआ था, उसने इस अवधि में यूरोपीय राज्य और समाज में तीखा विभाजन किया। जाहिर तौर पर अखण्ड यूरोपीय धर्मों की एकता अनगिनत सम्प्रदायों को जन्म दे रही थी, जो आधुनिक सन्दर्भ में विभिन्न प्रकार के विचारों के साथ प्रयोग कर रहे थे। इस प्रक्रिया और कुछ महत्वपूर्ण धार्मिक सम्प्रदायों की चर्चा **इकाई 3** में की गई है। एक और विकास नये दर्शनों का उदय था, जो कई मायनों में, मध्ययुगीन मानसिकता से एक तीखे विभाजन का प्रतिनिधित्व करता है। तर्कवाद और अनुभववाद इस अवधि के दो सबसे महत्वपूर्ण दर्शन थे, जिनकी चर्चा **इकाई 4** में की गई है। यह उम्मीद की जानी चाहिए कि इस तरह के अस्थिर समय में आर्थिक, वैचारिक, वैज्ञानिक और सामाजिक स्तरों पर बड़े पैमाने पर परिवर्तन के साथ और नये कलारूपों के विकास के साथ-साथ सांस्कृतिक और सामाजिक मानदण्डों में भी बदलाव हुआ होगा। **इकाई 5** इन नये विकासों की चर्चा करती है।

इकाई 6 अंग्रेजी क्रांति की चर्चा करती है जो इस अवधि के दौरान होने वाले परिवर्तनों की अपेक्षाकृत अधिक हिंसक अभिव्यक्ति थी। इंग्लैंड में, नई उभरती हुई आर्थिक और वैचारिक शक्तियाँ, 1640 और 1650 के दशकों के दौरान हिंसक घटनाओं की एक श्रृंखला को जन्म देते हुए, परंपरा और व्यवस्था की पुरानी शक्तियों के साथ

तेजी से टकराईं जिसके परिणामस्वरूप कुछ समय के लिए स्थापित व्यवस्था को पलट दिया गया और शासन करने वाले राजा को मृत्युदन्ड दिया गया। यद्यपि 1660 में राजतन्त्र पुनर्स्थापित हो गया था, लेकिन क्रांति द्वारा उन्मुक्त की गई नई शक्तियाँ सक्रिय रहीं और 1688 में अन्ततः 'गौरवशाली क्रांति' के नाम से प्रसिद्ध एक समझौता समाधान का आविर्भाव हुआ।

सत्रहवीं शताब्दी के दौरान सबसे बड़ी घटनाओं में से एक आधुनिक विज्ञान के उदय से सम्बन्धित विकास था जिसने समय के साथ सोचने के तरीकों को पूरी तरह से बदल दिया। आधुनिक विज्ञान विचार में अन्य सभी विकासों के औचित्य और मान्यता के रूप में यूरोपीय आधुनिकता के केन्द्र में रहा है। **इकाई 7** में इसकी चर्चा की गई है।

इकाई 8 सत्रहवीं शताब्दी में यूरोपीय राजनीति की प्रकृति की चर्चा करती है। यहाँ भी हम कई यूरोपीय देशों की राजनैतिक संरचना में बदलाव देखते हैं। फ्रांस, प्रशा और रूस जैसे कई यूरोपीय देशों में निरंकुशतावादी सम्राटों के उदय की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति थी। एक अन्य प्रवृत्ति ऑस्ट्रियाई और ऑटोमन साम्राज्य जैसे साम्राज्यों के अस्तित्व की थी। तीसरी प्रवृत्ति, जैसे पौलेंड में, कुलीन तन्त्रों की थी। हालांकि, निरंकुशतावाद और संवैधानिक राजतंत्र दो सबसे महत्वपूर्ण राजनैतिक रूप थे जो इस अवधि में सुदृढ़ होते हैं।

इकाई 9 प्रबोधन से सम्बन्धित है, जो इस अवधि में सबसे बड़ा सामूहिक बौद्धिक आन्दोलन था। महान बौद्धिकों की एक श्रृंखला जैसे पियरे बेयल, मांतेस्क्यू, वोल्तेयर, कान्ट, एडम स्मिथ और कई अन्य यूरोपीय देशों में अनेक लोगों ने स्पष्ट रूप से यह सत्यापित किया कि यूरोपीय आधुनिकता आ गई थी। उनके लेखन ने पूरे मध्यकालीन बौद्धिक विरासत से एक स्पष्ट विभाजन का प्रतिनिधित्व किया जो अठाहरवीं शताब्दी की शुरुआत तक बनी रहती है। इन बुद्धिजीवियों ने आधुनिक काल में विचारों के तरीकों में क्रांति ला दी।

अठाहरवीं शताब्दी में सबसे महत्वपूर्ण विकासों में से एक अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम था जिसने सबसे महत्वपूर्ण यूरोपीय औपनिवेशिक क्षेत्र को मुक्त कर दिया। **इकाई 10** इस घटना की चर्चा करती है जिसे 'अमेरिकी क्रांति' के नाम से भी जाना जाता है, जिसने दुनिया में अनेक देशों को संवैधानिकता और लोकतन्त्र के विचारों से प्रेरित किया। **इकाई 11** में, हम इस अवधि में कृषि उत्पादन में बदलावों और यूरोपीय देशों के जनसांख्यिकीय खाके पर विचार करेंगे। अठाहरवीं शताब्दी में, ब्रिटेन में कृषि में एक नाटकीय परिवर्तन हुआ जिसके परिणामस्वरूप भूमि-जोतों का संकेन्द्रण और बड़ी संख्या में लोगों को सम्पत्तिविहीन किया गया। कई अन्य यूरोपीय देशों में भी महत्वपूर्ण कृषि परिवर्तन हो रहे थे जिन्होंने अन्ततः औद्योगिक रूपान्तरण का मार्ग प्रशस्त किया। विभिन्न देशों में जनसंख्या की वृद्धि में भी इस प्रक्रिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इकाई 12 यूरोप में औद्योगिक परिवर्तन के लिए आधार तैयार करने की इस प्रक्रिया की और जाँच-पड़ताल करती है। यह 'औद्योगिक क्रांति' और 'आद्य-औद्योगीकरण' की अवधारणाओं की चर्चा करती है जो विनिर्माण व्यवहारों में और मानसिकता में महत्वपूर्ण बदलावों का उल्लेख करते हैं और जो बाद के विकासों के लिए महत्वपूर्ण साबित हुए। **इकाई 13** उन प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है, जिससे ब्रिटेन और अन्य यूरोपीय

अर्थव्यवस्थाएँ, जिन्होंने आधुनिक औद्योगीकरण की दिशा में कुछ कदम उठाए थे, उनके द्वारा हिन्द महासागर, केरिबियन और अन्य जगहों पर नये उपनिवेश स्थापित करके औपनिवेशिक विस्तार और व्यापार प्रारूप को एक नयी दिशा देने का प्रयास किया। यहाँ हम यूरोप और शेष विश्व के बाद के विकासों में एक विचलन पैदा करने में इन प्रक्रियाओं के प्रभाव की चर्चा भी करेंगे। इन सबको साथ लेकर, इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपके सामने सत्रहवीं और अठाहरवीं शताब्दी के दौरान यूरोप में विभिन्न आर्थिक, बौद्धिक, धार्मिक और सामाजिक घटनाओं की एक विस्तृत तस्वीर पेश करना है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 सत्रहवीं शताब्दी का यूरोपीय संकट*

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 संकट के स्वरूप पर ऐतिहासिक विवाद

1.3 संकट की उत्पत्ति

1.4 संकट का आयाम

- 1.4.1 जनसांख्यिकीय संकट
- 1.4.2 कृषि व्यवस्था का गतिरोध
- 1.4.3 मौद्रिक संकट
- 1.4.4 जलवायु में परिवर्तन
- 1.4.5 आर्थिक संकट

1.5 संकट और तीस वर्षीय युद्ध (1618-1648)

1.6 भूमध्यीय सागर के देश और सत्रहवीं शताब्दी का संकट

- 1.6.1 स्पेन का ह्रास
- 1.6.2 इटली का ह्रास

1.7 सत्रहवीं शताब्दी संकट के परिणाम

1.8 सारांश

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

यूरोप के इतिहास में सत्रहवीं शताब्दी एक विभाजन के रूप में देखी जाती है। पश्चिमी यूरोप में सामंतीय काल की समाप्ति हुई जबकि मध्य व पूर्वी यूरोप में सामंतवाद और अधिक मज़बूत हो गया। इस संकट ने वाणिज्य और व्यापारिक गतिविधियों को भूमध्यसागर से हटाकर अटलांटिक समुद्र के तट पर पश्चिमी यूरोप की ओर पहुंचा दिया। इसका अर्थ था भूमध्य सागर के राज्यों का पतन और इंग्लैंड, हॉलैंड और उत्तरी फ्रांस जैसे देशों का उत्कर्ष।

- इस अध्याय में आप पढ़ेंगे कि सत्रहवीं शताब्दी संकट क्यों 'सामान्य संकट' माना जाता है और इसने यूरोप के नक्शे पर आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक जीवन और भौगोलिक परिरेखा को कैसे प्रभावित किया,
- आप इतिहासकारों द्वारा आरम्भ किए संकट के स्वरूप और आयाम से जुड़ी बहस से परिचित होंगे,
- आप 'तीस वर्षीय युद्ध' के महत्व को और इस युद्ध ने कैसे मध्य यूरोप में योगदान दिया, इसकी व्याख्या कर सकेंगे, और

* इकाई लेखक : प्रो. अरविन्द सिन्हा

- आप 'सामान्य संकट' के राजनीतिक, आर्थिक तथा यूरोप के सामाजिक जीवन पर प्रभाव को खोज पायेंगे।

1.1 प्रस्तावना

मध्य कालीन यूरोप में समृद्धि और अवनति का प्रत्यावर्ती दौर का अनुभव किया गया जो बारी-बारी सत्रहवीं शताब्दी तक चलता रहा। दसवीं शताब्दी से लम्बे समय तक निरन्तर आर्थिक विस्तार, जनसांख्यिकी और कृषि वृद्धि चली। चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'ब्लैक डैथ' ने समृद्धि काल को समाप्त कर दिया। अब कृषि उत्पादन, व्यापार और वस्तु निर्माण के क्षेत्रों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। यूरोपीय अर्थव्यवस्था में सुधार पन्द्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आरम्भ हुआ। सोलहवीं शताब्दी में आर्थिक सम्पन्नता, जनसंख्या में वृद्धि, कृषि क्षेत्र का विस्तार, नए व्यापारिक संगठनों की स्थापना तथा यूरोप के कुछ क्षेत्रों में प्रोटो-औद्योगीकरण का प्रारम्भ देखा जाता है। व्यापार की कुल मात्रा नई ऊंचाइयों पर पहुंच गयी। पुनर्जागरण और धार्मिक सुधार आन्दोलन से सामाजिक दृष्टिकोण बदल रहे थे तथा विश्व स्तर पर औपनिवेशिक साम्राज्य के बनने से व्यापारिक ढाँचा बदल गया। बढ़ती हुए व्यापारिक मात्रा का संचालन करने के लिए नई व्यापारिक गतिविधियाँ तथा वाणिज्य संस्थान स्थापित हुए। औपनिवेशिक साम्राज्य के विकसित होने से यूरोप की मंडियों में अनेकों नई वस्तुएं लाई गयीं जैसे कि चाँदी, कपास, कोशीनील, चीनी, आलू, टमाटर, मसाले, नील इत्यादि। इन सबने यूरोप के कई भागों में अर्थव्यवस्था में मौद्रीकरण को बढ़ाया।

अर्थव्यवस्था का यह व्यापाक विस्तार यूरोप के कई क्षेत्रों में 1600 और 1620 के बीच आकर थम गया। इस पतन के क्या कारण थे, संकट का स्वरूप क्या था और इसने यूरोप को कैसे प्रभावित किया, यह सब इतिहासकारों और विद्वानों द्वारा अलग-अलग ढंग से समझाया गया है। वह एक लम्बे ऐतिहासिक विवाद का विषय बन गया है। आगे के अध्याय में हम इन विवादों पर विस्तृत ढंग से चर्चा करेंगे।

1.2 संकट के स्वरूप पर ऐतिहासिक विवाद

वह वॉलतेयर था – फ्रांस के प्रबुद्धवाद का प्रसिद्ध दार्शनिक – जिसने सामान्य संकट की विचारधारा का 1756 में अपनी पुस्तक 'ऐसे स्यूर ले मोऔर ए लैसप्रित दे नासिओं' में प्रतिपादन किया। 1950 के दशक में पूर्व आधुनिक यूरोप के इतिहासकारों में रोमांचक विवाद प्रारम्भ हुआ जो दो दशक से अधिक चलता रहा। यह रोचक विवाद मुख्य रूप से इस प्रश्न पर केन्द्रित था कि क्या प्रत्येक देश का अनुभव पूर्व आधुनिक सम्पूर्ण यूरोप के परिवर्तन का हिस्सा था या प्रत्येक देश ने रूपान्तरण का अलग मार्ग अपनाया था। अधिकतम इतिहासकारों ने अपनी-अपनी सैद्वान्तिक व्याख्या विकसित की है, जिसके फलस्वरूप 'सत्रहवीं शताब्दी के आम संकट' की आम सहमति बन पायी। इस विषय पर प्रमुख कार्य करने वाले इतिहासकारों में रोलां मुस्न्यु, ऐरिक हॉब्सबॉम, ऐच-आर ट्रेवर-रोपर, थ्योडोर के. रैब, आर. बी. मेरीमैन, नील्स स्टीनगार्ड, जे. वी. पौलीनसकी प्रमुख हैं।

आम संकट विषय पर गंभीर विवाद को मोटे तौर पर तीन अभिगम में विभक्त किया जा सकता हैः पहले दृष्टिकोण के अनुसार, इस संकट का कारण आर्थिक था। आर्थिक व्याख्या को तीन भागों में बाँटा जा सकता है : (क) सैद्धान्तिक क्लासिकी

मार्क्सवादी विचारों पर आधारित तर्क; (ख) वे तर्क जो आर्थिक आँकड़े जैसे कि मुद्रा या मूल्य; (ग) इसमें वो व्याख्या शामिल की जा सकती है जिसमें जनसांख्यिकीय तत्वों पर ज़ोर दिया जाता था। मार्क्सवादी लेखन सामान्य संकट के काल को सामंतवाद से पूंजीवाद में संक्रमण की दृष्टि से निर्णायक चरण के रूप में देखते हैं। इस विवाद का आरम्भ 1954 में ऐरिक हॉब्सबॉम ने अपने लेख द्वारा किया जिस तर्क को बोरिस पोर्चनेव ने आगे बढ़ाया। इस संकट को वर्गीय संघर्ष के रूप में देखा गया, जो दो स्तर पर विकसित हुआ। यूरोप के पूर्वी क्षेत्र में संघर्ष कृषकों और सामंतीय कुलीनों के बीच था जिसमें सामंत विजयी हुए। पश्चिमी यूरोप में राज्य को नियंत्रित करने के लिए संघर्ष बुर्जुवा वर्ग तथा सामंतीय कुलीनों के बीच था जो बुर्जुवा के पक्ष में गया। ऐरिक हॉब्सबॉम, जो कि प्रमुख मार्क्सवादी इतिहासकार हैं, ने इस यूरोपीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख संकट माना है। अपने प्रारम्भिक लेख में हॉब्सबॉम ने देखा कि सत्रहवीं शताब्दी केवल आर्थिक संकट का काल ही नहीं था, अपितु सामाजिक विद्रोह का भी समय था। बाद में हॉब्सबॉम सत्रहवीं शताब्दी के संकट को सामंतवाद से पूंजीवाद के व्यापक संक्रांति काल के साथ जोड़ा। रूगीऐरो रोमानो ने संकट के निश्चित समय निर्धारित करने के लिए विभिन्न स्रोतों से अतिविशाल आँकड़े प्रस्तुत किए। उनका मानना है कि संकट का निश्चित काल 1619 से 1622 था जब सोलहवीं शताब्दी के आर्थिक विकास का अन्त हुआ और आर्थिक ठहराव या पतन का प्रारम्भ देखा गया। इन्होंने संकट को आर्थिक और राजनैतिक संकट के रूप में प्रस्तुत किया। इस व्याख्या ने हॉब्सबॉम के तर्क को तथ्य आधार प्रदान किया। अतः मार्क्सवादी लेखक सत्रहवीं शताब्दी के संकट को उत्पादन का संकट मानते हैं तथा कम से कम कुछ क्रांन्तियों के पीछे मुख्य शक्ति माना है, जो बुर्जुवा वर्ग की शक्ति थी। इनकी आर्थिक गतिविधियाँ सामंतीय समाज की अप्रचलित, प्रतिबंधक और अपव्ययी उत्पादन प्रणाली से निर्बन्धक हो रही थीं। उत्पादन संकट तमाम यूरोप में सामान्य था परन्तु केवल इंग्लैंड में ही सामन्तवाद नवोदित भूमिपति अभिजात वर्ग और बुर्जुवा वर्ग के द्वारा उखाड़ फेंका गया (1642-1660) जिससे पूंजीवाद की विजय हुई।

संकट की व्याख्याओं में दूसरा दृष्टिकोण राजनैतिक मुद्दों पर केन्द्रित है, विषेषकर मध्य शताब्दी के विद्रोहों और बगावतों पर। एच. आर. ट्रेवर-रोपर संभवतः सबसे पहले लेखकों में थे, जिन्होंने 'सत्रहवीं शताब्दी के सामान्य संकट' की विचारधारा प्रस्तुत की। इन्होंने लिखा कि यह यूरोपीय अर्थव्यवस्था का संकट नहीं था अपितु सामाजिक और राज्य के बीच सम्बन्धों के बीच संकट था। यह संकट पुनर्जागरण कालीन राजतंत्रीय सत्ता के विस्तार के कारण हुआ जिसका वित्तीय भार समाज उठाने की क्षमता नहीं रखता था। आर. वी. मैरीमन (अपनी पुस्तक *छः समकालीन क्रांतियों* में) इन्हें संकट की सामाजिक और राजनैतिक अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं जिसने तमाम यूरोप को प्रभावित किया। अपने लेखन में इन्होंने विभिन्न मध्य-शताब्दी काल के विद्रोहों की तुलना की जो इंग्लैंड, फ्रांस, कैतालोनिया, नेपल्स और हॉलैंड में हुए।

सत्रहवीं शताब्दी संकट के विषय में तीसरी प्रमुख व्याख्या सामान्य संकट के बारे में संदेहवादी दृष्टिकोण अपनाती हैं। कई इतिहासकार 'सत्रहवीं शताब्दी की सामान्य संकट' की व्याख्या पर आपत्ति करते हैं। जे. एच. इलियट को शंका है कि व्यापक विद्रोहों से जो अस्थिरता हुई थी वो अपवादात्मक थी। इनका मानना है कि 1560 और 1590 के बीच विद्रोहों का जमघट भी इसी प्रकार का था। इलियट ने इतिहासकारों का ध्यान प्रारम्भिक आधुनिक काल के निरन्तर विद्रोहों की ओर केन्द्रित किया जो उस समय के राजनीतिक ढाँचे में तनाव के रूप में देखे जा सकते थे। इलियट ने

ट्रेवर-रोपर के तर्क पर असहमति दिखायी है जिसमें मध्य-सत्रहवीं शताब्दी के विद्रोहों की व्याख्या की थी। 1975 में थ्योडोर के. रैब ने अत्यन्त उपयोगी पुस्तक–*स्ट्रगल फौर स्टेबिलिटी इन अर्ली माडर्न यूरोप* इस कार्य में पिछले 25 साल के विवादों का समावेश किया गया है और संकट की विचारधारा को नई परिभाषा दे कर बचाया गया है। इसके साथ ही उन्होंने यूरोपीय इतिहास के कार्यक्षेत्र का विस्तार करके 1500 से 1700 के बीच की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की नई जानकारियों को सत्रहवीं संकट के विवाद में शामिल करके प्रस्तुत किया। रैब ने इतिहासकारों को 'संकट' शब्द का प्रयोग अधिक सूक्ष्मता से उपयोग करने के लिए बाध्य किया तथा सांस्कृतिक परिवर्तन आयाम को सामान्य संकट की बहस में शामिल किया।

इन विभिन्न बौद्धिक धाराओं के अतिरिक्त हम देखते हैं कई अन्य व्याख्या जो अलग-अलग विचारों का समावेश करती हैं। रोलैंड मुसनियर ने अपने शोध कार्य में लिखा है कि 1598 और 1715 के बीच के काल का संकट जनसांख्यिकीय, आर्थिक, प्रशासनिक एवं बौद्धिक क्षेत्रों में देखा जा सकता है। यह संकट पूंजीवादी व्यवस्था का एक निर्णायक मोड़ था।

1960 और 1970 के दशकों में अनेकों इतिहासकार 'सामान्य संकट' की विचारधारा के पक्ष या विपक्ष में एकत्र हुए और सामने आए। जे. वी. पोलीसेंसकी द्वारा रोचक व्याख्या प्रस्तुत की गई है जिसमें उन्होंने तीस वर्षीय युद्ध (1618-1648) तथा सत्रहवीं शताब्दी के संकट के बीच संयोजन स्थापित करने का प्रयत्न किया और इसे राजनीतिक और सांस्कृतिक समाज के बीच का संघर्ष बताया – एक प्रोटेस्टेंट या जो उदारवादी था और दूसरा कैथलिक जो स्वेच्छाचारी स्वरूप धारण किए था। सत्रहवीं शताब्दी के संकट विवाद में एक अन्य महत्वपूर्ण योगदान नील स्टींनगार्ड या स्टींसगार्ड द्वारा प्रदान किया गया। इन्होंने वैकल्पिक व्याख्या प्रस्तुत की है जिसमें राजनीति के साथ बढ़ते हुए करों और राज्य के विस्तृत हुए ढ़ाँचे के प्रभाव को उजागर करते हुए आर्थिक को राजनीतिक के साथ जोड़ा। बढ़ती हुई गरीबी ने लोगों को आजीविका के संकट की ओर धकेला। इसने ऐसा आर्थिक संकट तैयार किया जो उतना ही उत्पादन का संकट था जितना कि वितरण का। इनके अनुसार 1500 से 1700 का काल ने अस्थिरता उत्पन्न की जो सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से देखी जा सकती है।

पिछले कुछ वर्षों में सत्रहवीं शताब्दी के संकट की परिकल्पना पूर्व आधुनिक यूरोप के विद्वानों द्वारा स्वीकार की जाने लगी है परन्तु इसका कार्यक्षेत्र पहले से अधिक विस्तृत हो गया है।

1.3 संकट की उत्पत्ति

प्रत्येक इतिहासकार का संकट की तिथि तथा प्रबलता के बारे में पृथक मत हैं जो एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र पर निर्भर करता है। उस विषय के बारे में आम मान्यता है कि यूरोपीय संकट सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विकसित हुआ। कुछ समकालीन विद्वान उपद्रवों और विद्रोहों की लम्बी सूची प्रस्तुत करते हैं जिससे शहरी अर्थव्यवस्था और व्यापार में संकट उत्पन्न हुआ जिसके फलस्वरूप आर्थिक मंदी, जनसंख्या में गिरावट, सामाजिक अशान्ति और व्यापक पैमाने पर युद्ध हुए। अस्सी वर्षीय काल (1582-1662) ने पूरे नीदरलैंडस् में स्पेन के शासन के विरुद्ध जगह-जगह उपद्रव अनुभव किए गये। इसका प्रभाव यूरोप के अन्य क्षेत्रों पर भी महसूस किया गया। तीस वर्षीय युद्ध

(1618-1648) ने मध्य यूरोप के कई राज्यों में, फ्रांस तथा स्पेन में विध्वंस फैलाया। फ्रांस में विद्रोहों और उपद्रवों का निरन्तर सिलसिला आरम्भ हुआ जिसकी शुरुआत आकीतेन प्रान्त में गाबेल (नमक) कर के विरुद्ध हुई। सन् 1590 और 1620 के दशकों में व्यापक कृषक विद्रोह, न्यू पिअेद (1637) तथा सम्पूर्ण आन्तरायिक क्रोकुआन्त कृषक विद्रोहों ने फ्रैंच शासकों के लिए गंभीर समस्या उत्पन्न कर दी थी। नू पीअेद कर - विरोधी विद्रोह था जो नौरमांदी में हुआ। एक अन्य विद्रोह पेरीगम में भड़का जिसमें 30,000 से अधिक सशस्त्र किसानों ने विद्रोह किया जो राजा के विरुद्ध न होकर अधिक कर तथा सरकारी कर तथा अधिकारियों के विरोध में था। फ्रोन्द (1647-1652) मुख्य राजनीतिक आन्दोलन था जिससे फ्रांस में गहरे सामाजिक संकट की मौजूदगी का अहसास होता है। फ्रोन्द विद्रोह में फ्रांस के निरंकुश शासकों की बढ़ती हुई शक्ति का विरोध किया गया। इसलिए विद्रोहकारी कुलीन वर्ग ने पार्लेमाँ (प्रशासनिक तथा न्यायिक संस्था) की शक्तियों को मजबूत बनाने का प्रयत्न किया जिससे वो सर्वोच्च संस्था बन जाए। लेकिन यह विद्रोह असफल हो गया और उसके उपरान्त बूरबाँ वंश ने न केवल अपनी स्थिति सुधार ली बल्कि लुई XIV के शासन में अपने निरंकुश शासन को और सशक्त कर लिया। लगभग इसी समय इंग्लैंड भी गृहयुद्ध (1642-49) में फंसा था जिसमें स्टुअर्ट वंश के शासक चार्लस् I को संसद के समर्थकों द्वारा फांसी दी गयी। तत्पश्चात्, 1660 तक राजनीतिक प्रयोग चलते रहे परन्तु राजनीतिक विवाद 1688-89 की क्रांति तक नहीं सुलझाए जा सके। बोरिस पोर्चनेब ने फ्रांस के फ्रोन्द विद्रोह को इंग्लैंड की 1640 की बुर्जुवा क्रांति के रूपान्तर के रूप में प्रस्तुत किया है और 1789 की क्रांति का अवसान माना है। इसी काल में भूमध्यसागर के क्षेत्र में भी कई विद्रोह हुए। इसमें कैतालोनिया, नेपल्स तथा पुर्तगाल के विद्रोह शामिल हैं, जिन्होंने स्पेन के साम्राज्य में संकट उत्पन्न किया। स्पेन में 1640 के दशक का कृषक विद्रोह बार्सेलोना में फैला, कस्तीलवासियों को अपने क्षेत्र से बाहर निकालने का काम शुरू किया और वायसराय को मार दिया। इटली में नेपल्स विद्रोह (जुलाई 1647) खाद्य की कमी, करों का भार और प्रशासनिक अयोग्यता के कारण हुआ था। थोड़े समय के लिए नेपल्स् मसानिचेलो के नेतृत्व में और फ्रांस के संरक्षण में गणतंत्र बन गया परन्तु स्पेन ने उसे पुनः जीत कर लिया। यूरोप कुछ अन्य भागों में इधर-उधर उपद्रव हुए जैसे कि स्विज़रलैंड में कृषक विद्रोह (1653), युकरेन विद्रोह (1648-54), रूस में विद्रोह (1672), हंगरी में कुरूअेज़ आन्दोलन, आइरिश विद्रोह (1641 तथा 1689) तथा नीदरलैंडस् में राजमहल क्रांति। इस प्रकार क्रांतिकारी घटनाक्रम, राजनीतिक और सामाजिक प्रतिवाद के फलस्वरूप कई लेखक मानते हैं कि तमाम यूरोप में व्यापक संकट था, जिनकी उत्पत्ति अलग-अलग थी परन्तु इनमें कुछ समानताएँ भी नज़र आती हैं।

बोध प्रश्न 1

1) स्पष्ट कीजिए कि सत्रहवीं शताब्दी के संकट को 'सामान्य संकट' क्यों कहा जाता है?

.....

.....

.....

.....

2) इस संकट की उत्पत्ति की विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.4 संकट का आयाम

इस संकट के कई आयाम थे, जिनमें से कुछ की चर्चा हम यहाँ करेंगे।

1.4.1 जनसांख्यिकीय संकट

सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप की आबादी में प्रभावशाली वृद्धि हुई; इसके बाद वृद्धि थम गयी। कुछ क्षेत्रों में ठहराव अनुभव किया गया और कुछ अन्य क्षेत्रों में वृद्धि गति घट गयी। यह भी सच है कि आबादी संबंधित आँकड़े परिशुद्ध नहीं हैं और अन्दाज़ पर आधारित हैं, जो इतिहासकारों की अपनी गणना पर निर्भर करते हैं। उपलब्ध आँकड़े यूरोप के अनेकों भाग में गिरावट का संकेत देते हैं सिवाय उत्तरी यूरोप के कुछ क्षेत्रों के जैसे कि नीदरलैंडस्, नॉर्वे, और स्वीडन। तीस वर्षीय युद्ध के जर्मन की आबादी पर भयंकर परिणाम पड़े जहाँ जनसंख्या का 35 ये 40 प्रतिशत नुकसान हुआ। घनी आबादी वाले राज्य जैसे कि सेक्सनी, ब्रेनडनबर्ग तथा बवेरिया ने लगभग आधी आबादी को खो दिया। पोलैंड में भी यही प्रवृत्ति देखी गयी। स्पेन में भी 1587 से 1650 के बीच आबादी 70 लाख 68 हज़ार से घट कर 50 लाख 25 हज़ार पर आ गिरी।

दक्षिण यूरोप की आबादी भी सत्रहवीं शताब्दी में काफ़ी तेजी से गिरी। यहाँ की आबादी 1700 में 1600 से कम थी। दूसरी ओर यूरोप के कुछ अन्य भाग में स्थिति कुछ भिन्न थी, जहाँ पहले आबादी तेज़ी से बढ़ी थी जैसे कि उत्तरी यूरोप में निचले देष तथा इंग्लैंड। लेकिन यहाँ भी वृद्धि दर सत्रहवीं शताब्दी में मंदी पड़ गयी थी।

सत्रहवीं शताब्दी में आबादी में गिरावट किन कारण से हुई, इस विषय पर इतिहासकारों ने अलग-अलग व्याख्या की है। पीटर क्रीड का कहना है कि आबादी की गिरावट माल्थस के विचार और सामाजिक संकट को दर्शाता है। थामस आर. माल्थस, अठाहरवीं शताब्दी के ब्रिटिश अर्थशास्त्रकार, का मानना है कि प्राकृतिक अर्थव्यवस्था (यूरोप के अधिकांश भाग में यही व्यवस्था थी सिवाय उत्तरी यूरोप के) में आबादी वृद्धि ज्यामितीय गति से होती है जबकि प्राकृतिक अर्थव्यवस्था में उत्पादन वृद्धि अंकगणितीय गति से होती है। इससे आवर्तीय संकट समय-समय पर दोहराता है और इसका निर्वारण या निवारण आबादी के घटने से होता है जब उत्पादन और आबादी का अनुपात पुनः स्थापित होता है।

जनसांख्यिकीय संकट के दूरगामी परिणाम होते हैं जैसे कि पारिवारिक जीवन, जन्म के पैटर्न, खाने की आदतें, प्रजनन प्रक्रिया और विवाह की आयु इत्यादि। साथ यह भी ध्यान रहना चाहिए कि जनसांख्यिकीय प्रवृत्तियाँ एकरूपी नहीं थीं बल्कि अलग-अलग

क्षेत्रों में अलग-अलग थीं और इसका प्रभाव आबादी घटने या बढ़ने पर निर्भर करता था।

1.4.2 कृषि व्यवस्था का गतिरोध

कृषि स्थिति काफी हद तक आबादी और तकनीक जैसे तत्वों पर निर्भर करती है। यूरोपीय कृषि, पिछली तीन शताब्दियों में संकुचन और विकास के वैकल्पिक संकेत देती है। यूरोपीय कृषि का विश्वसनीय आँकड़ों के अभाव के कारण परिशुद्ध चित्रण प्रस्तुत करना कठिन है। हम मध्यकालीन फ्रांस के बारे में अधिक जानकारी रखते हैं फ्रैंच लेखकों के समूह– अनाल्स् के प्रसिद्ध लेखकों के कारण जिसमें पियर गूबर्त, इमैनुअल रॉय लादूरी, जाक ल गोफ इत्यादि शामिल हैं। इन्होंने फ्रांस के ग्रामीण इतिहास का गहराई से अध्ययन से किया है। सामन्तवाद के बारे में मार्क ब्लौक के कलम से दो खंडों में उल्लेखनीय योगदान प्रदान किया गया। फर्नेन्द ब्रोदेल के क्लासिकी लेखन में भूमध्य सागर के क्षेत्र की कृषि कमजोरियों को उजागर किया है। खराब भूमि, मिट्टी में उत्पादकता की कमी तथा पहाड़ी पथरीली ज़मीन ने खाद्य फसलों की खेती को सीमित रखा। इस क्षेत्र में फलों के बागान तथा भेड़ पालन कार्य अधिक था। सोलहवीं शताब्दी में आबादी वृद्धि से कई क्षेत्रों में भूजोत विभाजित होने लगे थे। तकनीकी में नये साधन की अनुपस्थिति के अर्थ थे, अनाज का उत्पादन बढ़ाने के लिए भूमि उद्धार और वनवाशन और वन की कटाई। सत्रहवीं शताब्दी के दौरान कई स्थानों पर यूरोपीय कृषि ह्रास के संकेत मिल रहे थे। दक्षिण और पूर्व यूरोप में सामंतीय प्रणाली का आधिपत्य था। जहाँ तक फ्रांस का प्रश्न है, कृषि क्षेत्र का पतन बहुत स्पष्ट नहीं था परन्तु राज्य सत्ताधारियों का कृषि व्यवस्था पर दबाव बढ़ता जा रहा था। अपने वित्तीय हितों को सुरक्षित करने के उद्देश्य से फ्रैंच शासकों ने छोटे किसानों की भूमि को सामंतीय भूमिपतियों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की परन्तु इस नीति से लम्बी अवधि तक कृषि क्षेत्र में ठहराव रहा। राज्य ने अपने विशाल प्रशासनिक ढाँचे और महाद्वीपीय युद्धों के बढ़ते हुए खर्च के किसानों का शोषण करते हुए तेई (भूमिकर) को कई गुणा बढ़ा दिया। कुलीनों ने भी किसानों पर अपने कर थोप दिए जिससे न केवल किसानों को और अधिक गरीब बना दिया बल्कि कृषि क्षेत्र में निवेश और तकनीकी सुधार कम कर दिया। इस प्रकार फ्रांस में उत्पादकता का संकट विकसित हुआ और इसके फलस्वरूप वहाँ का कृषि ढाँचा अपने को पूंजीवादी नमूने पर परिवर्तित नहीं कर सका जैसे इंग्लैंड में हुआ था।

फ्रांस में अनाज का मूल्य सूचकांक 100 (1625-50) से घटकर 59 (1681-90) हो गया जबकि पोलैंड में अनाज की कीमतों का मूल्य सूचकांक 1580 के 100 अंक से घटकर 1650 के दशक के दशक में लगभग 87 हो गया। स्वीडन-पोलैंड युद्ध के कारण कृषि और अधिक नष्ट हो गयी। जमीन के घटते लगान के कारण भू-संपत्ति के मूल्यों में गिरावट आई। कृषि भूमि को विकसित करने के लिए शायद ही कोई प्रोत्साहन शेष था।

दूसरी ओर मूल्य निरन्तर बढ़ते रहे। 1601-10 के मूल्य स्तर की तुलना में कीमतें इंग्लैंड (147), बेल्जियम (150) तथा ऑस्ट्रिया (118) प्रतिशत बढ़ गई। पश्चिमी तथा मध्य यूरोप में अनाज के मूल्य सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक ऊपर रहे। यूरोप के मध्य और उत्तरी क्षेत्र यह समृद्धि बनी रही परन्तु जर्मनी में तीस वर्षीय युद्ध के कारण कृषि तबाह हो गई यद्यपि कीमतें ऊँची थीं। कुछ अन्य क्षेत्रों में जैसे कि ब्रैबैंट, फ्लैंडर्स, जीलैंड इत्यादि में अनाज के मूल्य गिर गये और इसके स्थान पर अलसी, हॉप और

इसी प्रकार की फसलों की खेती की जाने लगी। सत्रहवीं शताब्दी के संकट ने यूरोप के पूर्वी और पश्चिमी तथा उत्तर और दक्षिण क्षेत्रों के अन्तर को बढ़ा दिया। जहाँ पूर्वी और मध्य-पूर्वी यूरोप ने भू-दास प्रणाली के विस्तार को और मज़बूती से अनुभव किया, इंग्लैंड तथा नीदरलैंडस् में सामंतवाद का विघटन और कृषि को पूंजीवाद की दिशा में बदलते हुए देखा गया। मेथी और शलजम जैसी चारा फसलों को लोकप्रिय बनाया गया, फसलों को अदल-बदल कर बढ़े स्तर पर ज़ोर दिया जाने लगा, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाया जा सके। इस प्रकार उत्तरी-पश्चिमी यूरोप में पुरानी सामूहिक भूमि प्रथा का कुछ हद तक त्याग किया जाने लगा।

1.4.3 मौद्रिक संकट

कुछ विद्वान जो मार्क्सवादी सैद्धान्तिक लेखन से अधिक प्रभावित नहीं थे, सत्रहवीं शताब्दी के संकट की कीमतों के आँकड़ों के द्वारा व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। हैमिल्टन और पीयर शानु जैसे विद्वान यूरोपीय आर्थिक संकट के उत्पन्न होने में सेविल अटलांटिक व्यापार की भूमिका पर जोर देते हैं। इस विचारधारा के अनुसार मुद्रा सप्लाई में कमी और अटलांटिक महासागर के व्यापार पर निवेश की कमी के कारण संकट आया था। इनके अनुसार सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में पूरे यूरोप में मुद्रा में खोट मिलाया जाना प्रचलित मुद्रा की घोर कमी का परिचायक था। 'नवीन संसार' से चाँदी का आयात कर इस संकट का अस्थायी हल निकाला गया। एक बार चाँदी के आयात की मात्रा घटने लगी तो सोलहवीं शताब्दी का आर्थिक विकास कम हो गया। हैमिल्टन भी सोने-चाँदी के आयात संबंधी मौद्रिक कारकों को सत्रहवीं सदी की आर्थिक मंदी का मुख्य कारण मानते हैं। वे विश्व में चाँदी उत्पादन के विस्तृत आँकड़े मुहैया कराते हैं और कहते हैं कि अमरीका से चाँदी का आयात 1620 तक आते-आते चरम सीमा पर पहुंच गया और इसके बाद इसमें गिरावट आने लगी। इस से चल मुद्रा में कमी आने लगी। हैमिल्टन का मानना है कि मूल्यों में वृद्धि होने से अतिरिक्त लाभ होगा और इससे व्यवसाय और उद्योग को प्रोत्साहन मिलेगा। इसके विपरीत मुद्रा के परिचालन में कमी से लाभ घटेगा और विनिर्माण और व्यवसाय क्षेत्रों की ओर से विनिवेश होगा। हैमिल्टन का मानना है कि सत्रहवीं शताब्दी से दूसरी स्थिति बनती जा रही थी। इस तर्क को आगे बढ़ाते हुए रूज्जीएरो रोमानो कहते हैं कि शताब्दी के पहले चालीस वर्षों तक निरन्तर और कई बार तेजी से मुद्रा निर्गमन (छपाई) में संकुचन का अनुभव किया गया। उनके अनुसार 1619 और 1622 के बीच का काल निर्णायक था। रोमानों का मानना है कि मुद्रा के टकसाल से सप्लाई घटने के कारण मुद्रा के कुल स्टाक में कमी होने लगी। मूल्यों के गिरते रहने के बावजूद ऋण में काफ़ी विस्तार हुआ था। रोमानो के अनुसार मुद्रा, मूल्य, विनिमय या बैंकिंग अनिवार्यक उत्पादन और वितरण के तथ्य थे और केवल मूल्यों को अलग करके नहीं देखा जा सकता। व्यापार, उत्पादन और राजस्व की प्रवृत्तियों को मापने के थर्मामीटर का काम मूल्य कर सकते हैं लेकिन वास्तविक आर्थिक परिस्थिति के कारक इतने जटिल होते हैं कि केवल मूल्य के विश्लेषण से इस पूरी स्थिति को नहीं समझा जा सकता है।

संकट की प्रकृति पर टिप्पणी करते हुए जां द व्री दीर्घकाल में मौद्रिक कारकों की भूमिका पर प्रश्न उठाते हैं। वो यह नहीं मानते कि यूरोप की अर्थव्यवस्था का उत्थान और पतन नई दुनिया से बहुमूल्य धातुओं के आगमन से जुड़ा हुआ था, यद्यपि वे स्वीकार करते हैं कि मौद्रिक अस्थिरता ने अल्पकालिक चक्रों, खास तौर पर 1619 से 1622 के संकट में विवादरहित भूमिका अदा की। कई इतिहासकार हैमिल्टन के तर्क

को नहीं मानते क्योंकि उनका तर्क एक बहुत ही जटिल आर्थिक प्रणाली की अति सरल व्याख्या प्रस्तुत करता है। उनका मुख्य तर्क यह है कि अमरीका से आने वाली चाँदी यूरोप में लम्बे समय तक नहीं रही। इसे लेवांत के रास्ते से भारत और चीन को पुनः निर्यात किया। अतः यूरोप में चाँदी के आयात की संकट लाने में वस्तुतः कोई भूमिका नहीं थी।

1.4.4 जलवायु में परिवर्तन

एनाल्स विचारधारा के विद्वानों ने सत्रहवीं शताब्दी की अत्यन्त रोचक व्याख्या प्रदान की है। इनका मानना है कि यह जीवन निर्वाह का संकट था जो संयोग रूप था। इस का अभिप्राय यह है कि संकट सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में अवस्थित नहीं था बल्कि यह कई अल्पकालिक और दीर्घकालिक कारकों के एक साथ मिल जाने से उत्पन्न हुआ था। इन लेखकों के अनुसार, सत्रहवीं सदी के संकट में सांयोगिक कारकों जैसे फ़सल खराब होना और अनाज की अधिक कीमतें जिसके बाद अनाज की कीमतों में भारी गिरावट, भारी कराधन, महामारी और खराब मौसम का एक साथ मिलना शामिल था। इन सबका परिणाम था – व्यापक क्षेत्रों में कृषक विद्रोह, कृषि संकट, व्यापार का सिकुड़ना और पूंजी निवेश का घटना। पर्याप्त निवेश और नई तकनीकी के अभाव से कृषि प्रणाली अच्छी तरह संतुलित नहीं थीं।

एनाल्स विचारधारा के विद्वानों ने सत्रहवीं शताब्दी के संकट में जलवायु सम्बन्धित तत्वों के योगदान का महत्व बताया है। उन्होंने जलवायु के कारकों की भूमिका पर जोर दिया है जिसे वे कृषि और जनसंख्या सम्बन्धी बदलावों के लिए जिम्मेदार मानते हैं। केवल इतिहासकार ही नहीं बल्कि भौतिक वैज्ञानिक, भूवैज्ञानिक और मौसम वैज्ञानिक – इन सभी ने अन्तर-विषयी अध्ययन करके सत्रहवीं शताब्दी संकट के आयाम को खोजने का प्रयत्न किया। ज्योफ्री पार्कर इस संकट में गैर-मानवीय कारकों का पता लगाने के लिए खगोलीय अध्ययनों की भूमिका की चर्चा करते हैं। कुछ वैज्ञानिक इस काल को 'लघु हिम' युग कहते हैं।

ऐ. ई. डगलस के अनुसार, यूरोप के प्रमुख खगोलशास्त्रियों के नोटबुक से पता चलता है कि 1645 और 1715 की अवधि के बीच सूर्य कलंक लगभग पूरी तरह गायब हो गये थे या इनमें तेजी से कमी आई तथा बीच-बीच में ये सामान्य भी दिखे। पेरिस वेधशाला के निर्देशक जी. डी. कसिनी ने भी 1676 में यह देखा कि **अरोरा बोरिएलिस** (पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश कर रहे सूर्य की किरणों द्वारा उत्पन्न उत्तरी रोशनी) पर भी इसी प्रकार का प्रेक्षण किया गया। इसी प्रकार का अवलोकन स्कैंडिनेविया और स्कॉटलैंड के वैज्ञानिकों का भी था। सौर ऊर्जा में कमी होने से वातावरण में कार्बन-14 में वृद्धि हुई जो सजीव प्राणियों पर हानिकारक होती है।

इन परिघटनाओं के अन्य साक्ष्य वृक्ष के तनों में रेखाओं का तुलनात्मक अध्ययन विशेषरूप से फ्रांस के अंगूर के उत्पादन रिकार्ड से किया गया। इस अवधि में वृक्ष के छल्लों के अध्ययन में उल्लेखनीय विकास हुआ और देखा गया कि पेड़ के तने के भीतर की रेखाएँ गहरी काली और मोटी थीं। यह परिघटना नमीयुक्त गर्मी और कड़ाके की ठंड से जुड़ी है। विषेषज्ञ हिमनदों के बढ़ने का संकेत देते हैं और इसके परिणामस्वरूप ऊंचे स्थानों पर कृषि योग्य भूमि में कमी आई। इसका नदी के बहाव पर तथा वनस्पति और खाद्यान्न पर असर पड़ा। इस सभी तत्वों का सत्रहवीं शताब्दी के संकट पर संयुक्त प्रभाव पड़ा।

1.4.5 आर्थिक संकट

सोलहवीं शताब्दी के अन्त में यूरोपीय अर्थव्यवस्थाएँ असमान थीं और मित्र स्तरों पर चल रही थीं – यह काल कृषि, उद्योग और वाणिज्य के क्षेत्र में विकास और विस्तार का चरण था। सत्रहवीं शताब्दी में स्थिति बदल गयी। इतिहासकारों ने सत्रहवीं शताब्दी संकट के स्वरूप और व्यापकता के बारे में अलग-अलग विचार प्रस्तुत किए हैं। फर्नेन्द ब्रौदल, जे. जे. इस्राइल, दोमीको सेला, इत्यादि इस काल को, इ. जे. हॉब्सबॉम की तरह, पूर्ण आर्थिक प्रतिगमन मानते हैं जिसका परिणाम अलग-अलग क्षेत्रीय विविधता के अनुरूप था। हॉब्सबॉम ने अन्य मार्क्सवादी लेखकों की तरह इस संकट को उत्पादन संकट बताया जिसने व्यापार, वाणिज्य और औद्योगिक उत्पादन को प्रभावित किया।

कुछ इतिहासकारों का कहना है कि आर्थिक गतिरोध सब जगह एकरूपी नहीं था। जहाँ कुछ आर्थिक केन्द्रों में अपरिवर्तनीय बदलाव आए और उनका पुराना दबदबा समाप्त हो गया जैसे कि वेनिस, फ्लोरेंस, ऐंटवर्प और कई अन्य केन्द्रों का विकास धीमा पड़ गया, वहीं कुछ क्षेत्रों ने पूंजीवादी दिशा में तेजी से कदम बढ़ाए। भू-मध्यसागरीय अर्थव्यवस्था, जर्मनी और फ्रांस के दक्षिण भाग में तीव्रता से औद्योगिक ह्रास हुआ। प्रत्येक क्षेत्र में कुछ वैकल्पिक उत्पादन केन्द्र विकसित भी हुए। इटली में फ्लोरेंस के औद्योगिक ह्रास के बाद प्रेतो और सियेना के वस्त्र उद्योग का उदय हुआ। उत्तर-पश्चिमी यूरोप में ऐंटवर्प के पतन के बाद ऐम्सटर्डम का उदय हुआ। यूरोप के वस्त्र उत्पादन में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। कपड़े का उद्योग पुराने कारीगर प्रणाली के अन्तर्गत चलता रहा। वस्त्र उद्योग के मामले में अनेकों इतिहासकार मानते हैं कि सत्रहवीं शताब्दी में इतालवी कपड़ा अन्तर्राष्ट्रीय निर्यात बाज़ार से करीब-करीब लुप्त हो गया। फ्लेमिश ऊन उद्योग भी संकुचित हो गया। कई फ्रांसीसी वस्त्र निर्माण केन्द्रों जैसे अमीनस्, रूऐन्स, इत्यादि का भी ह्रास हुआ। परन्तु हॉलैंड और इंग्लैंड में ऐसी स्थिति नहीं थी। यहाँ वस्त्र उद्योग सुस्पष्ट विकास के दौर में पहुंच गया था। फ्लैंडर्स से आए आवासियों ने 'न्यू ड्रेपरिज़' नामक कपड़े की नई किस्म की शुरुआत की थी। एक महत्वपूर्ण वस्त्र निर्माण केन्द्र लीडेन में अवस्थित था।

सत्रहवीं सदी के दौरान यह यूरोप का सबसे महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र बनकर उभरा। 1582 में इसकी आबादी केवल 12,000 थी जो सत्रहवीं सदी के मध्य तक बढ़कर लगभग 70,000 हो गई। इंग्लैंड में न्यू ड्रेपरिज़ (नए कपड़े) के विकास होने से आईबेरियन प्रायद्वीप (स्पेन तथा पुर्तगाल क्षेत्र) और भू-मध्यसागरीय क्षेत्र में अंग्रेजी कपड़ों का दबदबा बन गया। 1660 के बाद उत्पादकों ने अपने कपड़ों की कीमत इतनी घटा दी कि महाद्वीपीय देश उनसे प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते थे। परम्परागत कपड़ा उद्योग के बरबाद होने से न केवल हज़ारों कारीगर बेरोज़गार हो गए बल्कि सामाजिक-आर्थिक विस्थापन भी हुआ। इससे विनिर्माण क्षेत्र में लम्बे समय तक विनिवेश की स्थिति बन गई। यह अनुमान लगाया जाता है कि 1700 तक इटली के उत्तरी शहरों में ऊन बुनकरों की संख्या सोहलवीं सदी के मुकाबले 10 प्रतिशत रह गई थी। सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक से ही स्पेन का जहाज़रानी निर्माण उद्योग का ह्रास आरम्भ हो गया था। इसी काल में डच (हौलैंड) जहाज़रानी उद्योग बहुत तेज़ी से विकसित हुआ और हौलैंड अन्तरराष्ट्रीय नौभार परिवहन के लिए जाना गया। औपनिवेशिक साम्राज्य के उत्कर्ष से व्यापारिक जलसेना का विकास हुआ जो 1629 और 1686 के दौरान तीन गुणा बढ़ गयी। हौलैंड वाणिज्य गतिविधि, जैसे बैंकिंग, बीमा

और स्टॉक ऐक्सचेंज, का केन्द्र बन गया। जैसाकि रोमानो ने कहा कि सोलहवीं शताब्दी में सामान्य आर्थिक विकास, औद्यौगिक और वाणिज्य विस्तार, कृषि सम्पन्नता के सहयोग से संभव हुआ। सत्रहवीं सदी में स्थिति का उलटना काफी हद तक कृषि संकट से जुड़ा था। सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में औद्योगिक और वाणिज्यिक विस्तार काफी सीमित हो गया। अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के दो महत्वपूर्ण क्षेत्र– भू-मध्यसागर और लेवंति/लेवांत सत्रहवीं शताब्दी के दौरान निर्मित वस्तुओं की सप्लाई नहीं कर पा रहे थे और एशियाई व्यापार के नए रास्ते खुलने से अपना महत्व खो बैठे।

यह देखने में आता है कि सोलहवीं सदी के दौरान यूरोपीय अर्थव्यवस्था ने पारंपरिक ढाँचे से आगे बढ़कर मध्यकालीन रुकावटों को दूर कर पूंजीवादी उत्पादन पद्धति लाने की कोशिश की। यूरोप के अधिकांश भाग में सामंतवादी सामाजिक ढाँचे ने इस परिवर्तन को रोकने की कोशिश की। सत्रहवीं सदी के संकट को इस सामंती संकट के प्रकटन के रूप में देखा जाता है। इसे कई मार्क्सवादी इतिहासकार, खासतौर पर ऐरिक हॉब्सबॉम मानते हैं कि सत्रहवीं सदी का संकट यूरोप के कई हिस्सों में मौजूद था, जो मूल रूप से उत्पादन की पद्धति का संकट था। अभी तक का आर्थिक विकास सामंती ताने-बाने के अन्दर ही हुआ था। इसलिए सामाजिक-आर्थिक सम्बंधों के पुराने ढाँचे ने सतत आर्थिक विकास पूंजीवादी चरण में नहीं होने दिया। मार्क्सवादी इतिहासकार इस संकट को सामंती अर्थव्यवस्था से पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की संक्रान्ति का अन्तिम दौर मानते हैं। हॉब्सबॉम के अनुसार, यह संकट पूंजीवाद के रास्ते में सामंती ढ़ाँचे द्वारा उत्पन्न रुकावटों को दूर करने में यूरोप की विफलता दिखाता है। इस संकट का समाधान अलग-अलग समाजों द्वारा अलग-अलग तरीके से किया गया।

हॉब्सबॉम के अनुसार, उत्पादन संकट पूरे यूरोप में सामान्य था लेकिन इसका समाधान केवल 1640 के दशक की इंग्लिश बुर्जुवा क्रान्ति' सत्रहवीं सदी के संकट का सबसे निर्णायक परिणाम था। यद्यपि यह संकट यूरोप के कई हिस्सों में महसूस किया गया लेकिन पूंजीवादी ताकतों की जीत केवल इंग्लैंड में ही हो सकी, जहाँ पुरानी संरचना नष्ट हो गयी थी और एक नए प्रकार की आर्थिक व्यवस्था स्थापित हुई थी।

बोध प्रश्न 2

1) जनसांख्यिकीय आँकड़ों से संकट की व्यापकता को कैसे बताया जा सकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) सत्रहवीं शताब्दी के संकट लाने में कृषि समस्याओं का कितना महत्व था?

.....

.....

.....

.....

3) आर्थिक संकट कितना व्यापक था?

.....

.....

.....

.....

.....

1.5 संकट और तीस वर्षीय युद्ध (1618-1648)

जे. वी. पोलिसेंस्की का कहना है कि तीस वर्षीय युद्ध कम से कम मध्य यूरोप में संकट का अभिन्न हिस्सा था और सामाजिक ढाँचे में आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व प्रदर्शित करता था जिसने आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों को प्रखर रूप से प्रभावित किया।

इस कारण इतिहासकारों ने प्रारम्भ में इस युद्ध को कैथलिक और प्रोटेस्टेंट के बीच धार्मिक युद्ध के रूप में देखा जिसकी शुरुआत जर्मनी में हुई। अब यह स्वीकार किया जाता है कि समस्या का प्रारम्भ जर्मन राज्य में बोहिमिया में हुआ जो रोमन पवित्र संघ का हिस्सा था। बोहिमिया का साम्राज्य में महत्वपूर्ण स्थान था क्योंकि वह मानव शक्ति और भारी मात्रा में सामग्री का योगदान करता था। यहाँ बड़ी संख्या में वस्त्र और शीशे के उद्योग थे और इनके अतिरिक्त लोहा, चाँदी और ताँबे की खानें थीं। मार्टिन लूथर (1483 से 1546) के पहले से ही बोहिमिया धार्मिक झगड़ों का एक केन्द्र रहा था। इस धार्मिक संघर्ष ने एक राजनीतिक रंग ले लिया जब बाहरी राज्यों ने कैथलिक धर्म के लोगों का साथ दिया तथा प्रोटेस्टेंट देशों ने प्रोटेस्टेंट समुदाय को समर्थन दिया। इस प्रकार यह वंशीय और धार्मिक युद्ध में बदल गया जिसका नेतृत्व स्पेन, फ्रांस और नीदरलैंडस् ने सम्भाला। इसे धार्मिक युद्ध इसलिए नहीं कह सकते हैं क्योंकि स्पेन और फ्रांस एक दूसरे के विरुद्ध लड़ रहे थे और दोनों ही कैथलिक देश थे।

इस व्याख्या की वैकल्पिक विचारधारा मानती है कि यह युद्ध दो प्रमुख साम्राज्यों (स्पेन और फ्रांस) के बीच यूरोप पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए लड़ा गया था। स्पेन का राजवंश हैब्सबर्ग और फ्रांस के वैलुआ यूरोप पर अपनी सर्वोच्चता स्थापित करना चाहते थे।

सी. वी. वेजवुड जैसे कुछ इतिहासकार जर्मन-केन्द्रित तर्क प्रस्तुत करते हैं। इनके अनुसार, युद्ध की शुरुआत रोमन पवित्र संघ के भीतर हैब्सबर्ग के शासन के विरुद्ध यूरोप के कई भागों में हुई थी। लगभग आधी शताब्दी तक चलते आ रहे धार्मिक और संविधानिक विवादों ने दो गुटों के बीच युद्ध का रूप धारण कर लिया।

जे. वी. पोलिसेंस्की बोहिमिया में आन्तरिक शक्तियों पर जर्मन-केन्द्रित व्याख्या पर बल देते हैं। इनका मानना है कि झगड़ा मूल रूप से राजनीतिक था जो यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों के शासक वर्ग की नीतियों से उत्पन्न हुआ या परन्तु इस संकट की गहरी आर्थिक जड़ें थीं।

तीस वर्षीय युद्ध की समाप्ति 1648 में वेस्टफालिया की संधि से हुई जो बहुत ही महत्वपूर्ण दस्तावेज था। यह युद्ध बहुत ही विध्वंसक था जिसमें युद्ध का मैदान थोड़े-थोड़े अन्तराल में बदलता रहा। यह युद्ध नए प्रकार का थल युद्ध बना – मानव संचालित हथियार से अग्नि शक्ति का परिवर्तन जिसमें तोपखाना और गोला दागने की क्षमता शामिल थी। इसके बाद युद्ध और भी अधिक आक्रामक और खतरनाक हो गये।

प्रोटेस्टेंट अनुयायियों और कैथलिकों के बीच हुए सुलह ने शांति का नया आधार प्रस्तुत किया। आक्सबर्ग शांति समझौते के बाद जब्त की गई चर्च की सम्पत्ति प्रोटेस्टेंट अनुयायियों को वापस लौटाई गई। केल्विन के समर्थकों को और लूथर के अनुयायियों को भी धार्मिक सहिष्णुता प्रदान की गयी। प्रोटेस्टेंट नेतृत्व जर्मनी में सेक्सोनी के हाथ से निकलकर प्रशा-ब्रेडनबर्ग के हाथ में आ गया।

तीस वर्षीय युद्ध का अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम था रोमन पवित्र साम्राज्य का विघटन। साम्राज्य के विघटन का सीधा नतीजा हुआ कि जर्मनी के बड़े राज्यों का पुनर्गठन होना जैसेकि पैलेटाइन, बवेरिया, सेक्सोनी तथा ब्रेडनबर्ग। इसके परिणामस्वरूप उत्तरी जर्मनी का सैन्य शक्ति के रूप में उभरना जो दक्षिण जर्मनी में परम्परागत शक्ति ऑस्ट्रिया की ताकत को नियंत्रित करने में सक्षम हो गया।

युद्ध के सामाजिक-आर्थिक परिणाम के बारे में इतिहासकारों के विचार विभाजित हैं। इतिहासकारों का एक समुदाय (जिसे डिज़ास्टर स्कूल कहा जाता है) का मत है कि इस युद्ध के परिणाम विध्वंसक थे, जिससे जर्मनी का पतन आरम्भ हुआ। दूसरी विचारधारा (जिसे रिविजनिस्ट स्कूल कहा गया) का मानना है कि युद्ध के परिणामों को बहुत बड़ा-चढ़ा कर दिखाया गया है और जर्मनी का पतन युद्ध के पहले ही आरम्भ हो गया था।

1.6 भूमध्य सागर के देश और सत्रहवीं शताब्दी का संकट

ब्रोदेल के अनुसार स्पेन और इटली सामूहिक आर्थिक और भौगोलिक मण्डल थे जिन्होंने यूरोपीय व्यापार पर सोलहवीं सदी तक अपना आधिपत्य बना रखा था जब अधिकांश यूरोप अभी भी सामंतीय था।

1.6.1 स्पेन का ह्रास

सोलहवीं सदी में स्पेन का दबदबा यूरोप पर बन गया था और यूरोप के अन्दर और बाहर बहुत व्यापक और शक्तिशाली साम्राज्य था। उसके विशाल औपनिवेशिक स्वामित्व अटलांटिक महासागर के पार उसकी संपन्नता और धन-दौलत के स्रोत थे जिसमें सोना और चाँदी शामिल थे। सागर पार दूरगामी व्यापार ने स्पेन की नौसेना और जहाज़रानी उद्योग को बढ़ाया। यूरोप में हैब्सवर्ग वंश के अधीन स्पेन के साम्राज्य में नीदरलैंड, ऑस्ट्रिया और जर्मनी व इटली के कुछ राज्य शामिल थे। यदि साम्राज्य के आकार को शक्ति की माप माना जाये तो सोलहवीं सदी में स्पेन अपने गौरव के चरम बिन्दु पर था परन्तु सत्रहवीं सदी तक स्पेन दूसरे दर्जे की शक्ति बनकर रह गया था। स्पैनिश शक्ति के ह्रास के क्या कारण थे, इसकी विद्वानों ने अलग-अलग व्याख्या की है। उनका अध्ययन आन्तरिक बनाम बाहरी कारणों पर केन्द्रित है, जो पतन के लिए ज़िम्मेदार थे।

स्पेन के ह्रास के पहली बार चित्रण सत्रहवीं सदी के लेखकों द्वारा प्रस्तुत किया गया जिन्हें आर्बिट्रिस्टाज कहा जाता था। इन्होंने स्पेन के शासक को भावी मुश्किलों से सचेत किया और सरकार की नीतियों में प्रबल परिवर्तन का सुझाव दिया था। बीसवीं शताब्दी के इतिहासकार स्पेन के पतन पर आम सहमति तो रखते हैं परन्तु पतन के वास्तविक कारणों पर एक मत नहीं रखते हैं।

जहाँ तक पतन का समय का प्रश्न है, हमें कोई एकमत उत्तर नहीं मिलता है। एक विचारधारा के अनुसार, विस्तार का काल 1550 तक रहा और उसके बाद पतन होने लगा। पतन की चरम सीमा 1640 के दशक में देखी गयी। एक अन्य व्याख्या के अनुसार, पतन का प्रारम्भ 1620 के दशक में था परन्तु किसी भी हालत में 1598 के पहले नहीं था।

स्पेन के पतन के स्वरूप के बारे में विद्वानों में एकमत नहीं है। जे. एच. इलियेट का कहना है कि स्पेन के पतन को अलग से नहीं देखा जा सकता। यूरोप में सत्रहवीं सदी के दौरान वाणिज्य संकुचन और जनसांख्यिकीय घटाव या ठहराव क्षेत्रों की विविधता पर निर्भर करता था। उनके अनुसार, कुछ बातें जो पहले केवल स्पेन के संदर्भ में कही जाती थीं, सभी क्षेत्रों के लिए लागू होती है। उनके अनुसार पतन इतना नाटकीय नहीं था जैसा पहले के लेखकों ने बताया है क्योंकि सत्रहवीं शताब्दी में भी स्पेन अभी भी सबसे बड़ी सैन्य शक्ति था। कुछ इतिहासकार जैसे कि हेनरी कामेन और कार्लो एम. सिपोला पतन की विचारधारा का खंडन करते हैं क्योंकि उनके अनुसार मूल तथ्य तो यह है कि स्पेन का कभी विकास ही नहीं हुआ। स्पेन का विकास मौलिक आर्थिक कमजोरियों के कारण सदियों से बाधित था।

दूसरा विवाद इस बात को लेकर है कि पतन सम्पूर्ण स्पेन का था या कुछ खास क्षेत्रों तक सीमित था। कई इतिहासकारों का मानना है कि पतन वास्तव में स्पेन के केवल कुछ राज्यों तक सीमित था न कि पूरे क्षेत्र का। जे. जे. इसरायल का मानना है कि वैलेचिया राज्य में सोलहवीं सदी में विकास और विस्तार का रुख था और सत्रहवीं सदी में स्थायित्व और पतन शुरू हो गया। कस्तील (स्पेन का सब से बड़ा राज्य) में भी यही हुआ। कामेन का कहना है कि इस अवधि में कैतेलोनिया राज्य में स्पष्ट रूप से विकास था और वास्तव में केवल कस्तील का ही पतन हुआ था।

स्पेन के पतन के विषय पर इतिहासकारों ने अलग-अलग विचार प्रस्तुत किए हैं। सत्रहवीं सदी के स्पेनिश संकट के बारे में प्रारंभिक व्याख्याओं में अर्ल जे. हैमिल्टन के द्वारा प्रस्तुत की गयी व्याख्या थी। उनका मानना है कि स्पेन के उदय में अमरीका से चाँदी के आयात की बहुत बड़ी भूमिका थी और 1620 के दशक से जब आयात की मात्रा कम हुई तभी से स्पेन का पतन आरम्भ हुआ। उनके अनुसार, वाणिज्यवादी युग में अमरीकी सोने और चाँदी द्वारा सृजित सम्पन्नता का भ्रम आक्रामक विदेश नीति और हस्तकलाओं के प्रति घृणा के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार था। इसने विलासिता और फिजूलखर्ची को राजदरबार और विस्तृत नौकर तंत्र में बढ़ाया। शारीरिक श्रम के प्रति घृणा इसी कारण हुई। इन सबने स्पेन के पतन में योगदान दिया। डेनिस ओ फ्लिन कहते हैं कि खनन से प्राप्त लाभ, न कि चाँदी के आयात की मात्रा, स्पैनिश साम्राज्य का सहारा थी। चाँदी के अधिक उत्पादन और स्पेन में इसके आने से इसका बाज़ारी मूल्य घट गया था। इस मत के अनुसार, स्पेन के पतन का मुख्य कारण था समाज का अमरीकी खजाने के आमद का आदी हो जाना। इसके आयात में 1620 के

बाद अचानक कमी होने से सरकार और समाज खर्च को नियंत्रित नहीं कर पाये। फिर भी स्पेन के पतन में अमरीका की चाँदी कई कारणों में केवल एक कारण था।

कुछ विद्वान स्पेन के ह्रास के लिए वहाँ के समाज को जिम्मेदार मानते हैं। वे मानते हैं कि एक विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य होने के बावजूद वहाँ सशक्त मध्य वर्ग का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था। इतनी अधिक मात्रा में कीमती धातु के अप्रवाह से भी स्पेन का आर्थिक विस्तार हो सकता था परन्तु यह अवसर गवां दिया गया। बुलियन का औद्योगिक विकास के लिए समुचित प्रयोग नहीं किया गया। अतः वहाँ सशक्त व्यापारी और व्यावसायी वर्ग का उदय नहीं हो पाया जैसा इंग्लैंड में देखा जाता था।

इंग्लैंड के अभिजात वर्ग के विपरीत, जो कृषि उत्पादकता में गहरी रुचि लेता था और मार्केट संचालन में भाग लेता था, स्पेन का समाज व्यापार और उद्योग के प्रति तिरस्कार का दृष्टिकोण रखता था।

अधिकांश इतिहासकारों का मानना है कि स्पेन का पतन मुख्य रूप से आर्थिक कारणों से हुआ, और उसको गति राजनीतिक-सामाजिक तत्वों से मिली। यह पतन जनसांख्यिकीय आँकड़ों से स्पष्ट नज़र आता है। हालांकि यह सिर्फ स्पेन तक सीमित नहीं थी और यूरोपीय महाद्वीप के कई क्षेत्रों में देखी जा सकती थी, खासतौर पर दक्षिण, पूर्वी और मध्य भागों में भी देखी जा सकती थी।

स्पेन के पतन में कृषि के प्रति सरकार की नीति भी उतना ही महत्वपूर्ण सहायक कारण था। कई इतिहासकारों ने कृषि को नज़रअन्दाज करने के लिए स्पेनी राज्य की नीतियों को दोषी माना है। फर्नेन्द ब्रोदेल तथा कई अन्य इतिहासकारों ने स्पेन की राज्य नीतियों के कृषि के प्रति खामियों को दर्शाया है। सरकार की नीतियाँ भेड़ पालकों को आर्थिक सहायता तथा एकाधिकार देने की थी बजाए कि भूमि पर खेती को प्रोत्साहन देने की जिससे अनाज की कमी होने लगी। स्पेन के शासकों ने न तो कृषि के प्रति निरन्तर नीति को अपनाया और न ही ग्रामीण किसानों को मदद प्रदान की।

स्पेन की औद्योगिक हालत के बारे में इतिहासकारों के विविध विचार हैं। स्पेन में अक्सर मजदूरों की कमी अनुभव की गयी परन्तु यह कहना कठिन है कि इससे औद्योगिक पतन या अनोद्यौगीकरण हुआ। स्पेन के ऊनी उद्योग का विकास भेड़ पालकों के पक्ष में सरकारी नीति के कारण हुआ था। परन्तु सेगोविया और टोलेडो जैसे केन्द्रों में 1580 के दशक से स्पैनिश ऊन उद्योग की प्रगति धीमी पड़ गई। इस दौरान डच और इंग्लिश उद्योग यूरोप के कई भागों के लिए ऊनी कपड़ों के प्रमुख आपूर्तिकर्ता बनकर उभरने लगे। सेगोविया में वस्त्र निर्माण 13,000 पीसेज़ प्रतिवर्ष से घटकर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक केवल 3000 पीसेज़ हो गए। धीरे-धीरे स्पैनिश और अमरीकी बाज़ारों पर स्पेन के ऊन से बने इंग्लिश और डच कपड़ों का कब्जा हो गया।

स्पेन का पोतनिर्माण एक अन्य उद्योग था, जिसका विकास सोलहवीं शताब्दी में हुआ था। यह लेटिन अमरीकी माँग से संभव हुआ था परन्तु स्पैनिश पोतनिर्माण उद्योग अमरीकी माँग को पूरा करने में सक्षम नहीं हो पा रहा था। 1588 में स्पैनिश आर्माडा के इंग्लैंड द्वारा नष्ट करने से बास्क समेत स्पेन के सभी पोतनिर्माण उद्योग पतनोग्रस्त हो गये। लौह उद्योग को भी स्वीडन से कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा था। दूसरी ओर कुछ अन्य उद्योग, जैसे कागज, चर्म, इत्यादि में सीमित सफलता बनी

रही। अमरीका से प्राप्त भारी मात्रा में बुलियन मिलने के बावजूद स्पैनिश उद्योगों को बचाया नहीं जा सका।

इस प्रकार सत्रहवीं सदी के दौरान स्पेन भारी कर्ज में डूब गया। नौकरशाही और सेना के अनियंत्रित विस्तार के कारण लोगों पर भारी आर्थिक भार आ गया। इन सबसे स्पष्ट है कि सोलहवीं सदी की संपन्नता कृत्रिम थी और इससे स्पेन की अर्थव्यवस्था को पूंजीवादी दिशा नहीं मिली।

1.6.2 इटली का ह्रास

इटली की अर्थव्यवस्था जिसमें वहाँ के ऊनी और रेशमी वस्त्र, आबादी का घनत्व, उसका वस्तु उत्पादन, सक्रिय व्यापार और शहरी केन्द्रों में आय वितरण में विषमता सब पहले मौजूद थे। सोलहवीं शताब्दी से ही इस क्षेत्र की आर्थिक सम्पन्नता में पतन के चिह्न नज़र आ रहे थे।

इटली का पतन जनसांख्यिकीय आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है। यहाँ आबादी का संकुचन सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक चला। यह प्रवृत्ति सभी जगह एक समान नहीं थीं परन्तु कुल तस्वीर जनसांख्यिकीय गिरावट की थी। दूसरी ओर सार्डिनिया और जेनोआ जैसे राज्यों में सत्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में आबादी बढ़ी थी। जनसांख्यिकीय घटाव के लिए अनेकों कारण ज़िम्मेदार थे जैसे कि अकाल, प्लेग, महामारियाँ और अन्तर-क्षेत्रीय युद्ध। इन सबका शहरी केन्द्रों पर घातक प्रभाव पड़ा। शहरी आबादी के अधिक घनत्व की वजह से लोग महामारियों के प्रति अतिसंवेदनशील थे। हालांकि, ये सब अल्प-कालीन कारक थे, जिन्होंने इतालवी राज्यों के आर्थिक क्षेत्र को प्रभावित किया – बाजार उत्पादन और व्यापार को सीमित किया जिसका प्रभाव पड़ोसी राज्यों पर भी पड़ा। इससे शहरी अर्थव्यवस्था में व्यापक संकट आया और इटली के राज्यों को सामंतवादी दिशा में धकेल दिया। व्यापारी बैंकरों ने अपनी पूंजी इटली के बाहर सुरक्षित जगह में लगानी शुरू कर दी।

इटली के पतन की गुत्थी कई कारणों से स्पेन से अधिक जटिल थी। स्पेन एक विशाल राजनैतिक साम्राज्य था जिसकी सम्राट के अधीन निश्चित सीमा थी परन्तु आर्थिक दृष्टि से उतना शक्तिशाली नहीं था जितना इटली के राज्य थे हालांकि स्पेन के पास धनी उपनिवेश थे। इटली एक संगठित राज्य नहीं था बल्कि अपने-अपने राजाओं के अधीन कई स्वतंत्र राज्यों का भौगोलिक क्षेत्र था, जैसेकि फ्लोरेंस, वेनीशिया, पिड़मॉट, मिलान, नेपल्स, सिसीली, पोप राज्य, इत्यादि। उत्तरी इटली के वेनिस और फ्लोरेंस जैसे कुछ शहर आर्थिक रूप से समृद्ध क्षेत्र थे, जो व्यापारिक जाल से जुड़े थे, उनके अपने जहाज़ी बेड़े और पोत-कारखाने थे और अनगिणित उत्पादन केन्द्र। व्यापार और कारखानों का संचालन पूर्व-पूंजीवादी ढ़ाँचे में संगठित था जब अधिकांश यूरोप सामंतवादी पद्धति में फंसा था। इटली के राज्य आर्थिक स्तर पर अग्रिम चरण में पहुंच गये थे और विनिमय और उत्पादन में वाणिज्य प्रपत्र का प्रयोग कर रहे थे – कोमेन्डो, सोसीता जैसी व्यापारिक कम्पनी, जो साझेदारी के रूप में थीं, तथा बैंक और वाणिज्य साधन जैसे हुंडी, आश्वासन-पत्र, बीमा इत्यादि। सोलहवीं शताब्दी में इटली के राज्य शहरी क्षेत्र थे जहाँ शहरों में घनी आबादी थी जबकि स्पेन में शहर और नगर एक दूसरे से दूरे थे और अधिकांश आबादी ग्रामीण थी।

सोलहवीं सदी में अधिकांश समय वेनिस भव्य समुद्र शक्ति बना रहा जो भूमध्य सागर के व्यापार को अपने नियंत्रण में किए हुए था। जब पड़ोसी राज्य औद्योगिक पतन के

दौर से गुज़र रहे थे, वेनिस के रेशम और ऊन का उद्योग विस्तार का प्रदर्शन कर रहा था। 1575 से 1577 के बीच प्लेग की महामारी ने औद्योगिक क्षेत्र को बेहद नुकसान पहुंचाया और अनुमान लगाया जाता है कि लगभग एक-तिहाई आबादी इस महामारी की शिकार हुई। मिलान की आबादी 1630-31 की प्लेग के कारण आधी रह गई।

लेकिन इटली के पतन का सारा दोष प्राकृतिक आपदाओं पर डालना गलत होगा। आर्थिक पतन सोलहवीं सदी से ही शुरू हो गया था जब इटली के शहरी राज्य अन्तर्राष्ट्रीय बाजार पर से अपना नियंत्रण खोने लगे थे। इटली के पास प्राकृतिक साधनों की कमी थी और राज्यों की सम्पन्नता कारखाना उद्योग और विदेशी व्यापार पर निर्भर करती थी। प्रत्येक प्राकृतिक विपत्ति या युद्ध के पश्चात् स्थिति पूरी तरह ठीक नहीं हो पाई तथा निर्यात के घटने की पूर्ति न होने पर इटली का नुकसान बढ़ता गया। इटली में निर्मित वस्त्र का स्थान इंग्लिश और डच और कुछ हद तक फ्रेंच कपड़ों ने ले लिया क्योंकि उनके वस्त्र बहुत कम दाम पर बेचे जा रहे थे। ब्रोदेल के अनुसार 1590 और 1630 के बीच इटली के उद्योग को नाटकीय समस्या का सामना उत्तरी देशों की सस्ती औद्योगिक वस्तुओं से होने लगा था।

इटली की एकरूपी तस्वीर प्रस्तुत करना कठिन है क्योंकि वहाँ राजनैतिक और भौगोलिक एकता का अभाव था, और कृषि व्यवस्था का एकरूपी चित्रण करना भी कठिन है। वहाँ के उत्तरी राज्य आमतौर पर खाद्यानों के विदेशी आयात पर निर्भर करते थे क्योंकि कृषि योग्य भूमि की कमी थी और उपजाऊ भूमि की कमी तथा आबादी का घनत्व कृषि क्षेत्र पर निरन्तर दबाव डालता रहा। उत्तरी राज्य प्रायः खाद्यान्न के आयात बड़े पैमाने पर करते थे, जबकि दक्षिणी राज्य कृषि वस्तुओं के उत्पादक थे तथा अन्य राज्य पड़ोसी देशों को निर्यात करते थे। वहाँ पहाड़ी प्रदेश भी थे, जहाँ बहुत कम वर्षा होती थी। इन क्षेत्रों की तकनौलोजी में कुछ विषेष परिवर्तन नहीं हुआ। उत्तरी मैदानों में घने कृषि क्षेत्र (जैसे वैनीशिया, लोम्बार्दी, पिडमौन्ट इत्यादि) सोलहवीं शताब्दी में अनाज, कच्चा रेशम, रंगनेवाली सामग्री और फलों के लिए प्रसिद्ध थे। कृषि की सम्पन्नता शहरी माँग पर टिकी थी। प्राकृतिक आपदा जैसे प्लेग की महामारी, अकाल, युद्ध और आबादी के नुकसान ने उद्योगों को प्रभावित किया जिसने कृषि क्षेत्र की माँग पर प्रभाव डाला। यही स्थिति दक्षिण राज्यों ने अनुभव की और कृषि क्षेत्र का पतन सत्रहवीं सदी में स्पष्ट नज़र आने लगा। इस प्रकार इटली अगली तीन शताब्दी तक पतन की ओर अग्रसर हो गयी।

1.7 सत्रहवीं शताब्दी संकट के परिणाम

सत्रहवीं शताब्दी के संकट का यूरोप के ऊपर व्यापक असर पड़ा हालांकि यह सब जगह समान नहीं था। एक ओर इस संकट ने विस्तार की स्थिति तैयार की और उत्पादन पद्धति के रास्ते में तनाव हटाकर आबादी और अनाज के बीच सप्लाई सन्तुलन स्थापित किया। जनसांख्यिकीय दृष्टि से देखा जाऐ तो इस संकट के परिणामस्वरूप उपमहाद्वीप के कुछ क्षेत्रों में भारी मानव क्षति हुई। आबादी के घटने में एक प्रमुख कारण सैन्य संघर्ष था। निरन्तर युद्ध के साथ प्राकृतिक आपदा (जैसे प्लेग, महामारी, अकाल) भी आई जिसने कई क्षेत्रों में सामाजिक जीवन में उथल-पुथल कर दिया। जनसांख्यिकीय महाविपत्ति मध्य यूरोप में देखी जा सकती है जहाँ तीस वर्षीय युद्ध की अधिकतम लड़ाइयाँ उसी क्षेत्र में लड़ी गयी थी। आबादी का यह नुकसान 25

से 40 प्रतिशत् के बीच था। पौलैंड का भी यही अंजाम था। यहाँ तक डेनमार्क की 1658 से 1669 के डेनिश-स्वीडन युद्ध में लगभग 20 प्रतिशत आबादी घट गयी। शहरी केन्द्रों में आबादी का नुकसान अधिक था जिसने व्यापार और उद्योग को व्यापक पैमाने पर विस्थापित किया। जनसंख्या की इस क्षति से उभरने के लिए लगभग आधी शताब्दी लग गयी।

संकट के बाद एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया – महाद्वीपीय देशों से दूर पश्चिमोत्तर अटलांटिक समुद्री शक्तियों की ओर अंतरण। यूरोप के पूर्वी और पश्चिमी क्षेत्रों के बीच का अन्तर सोलहवीं सदी से बढ़ना शुरू हो गया था। सत्रहवीं सदी के दौरान यह अन्तर और भी अधिक हो गया। अटलांटिक – पार व्यापार के विकास से पश्चिमी यूरोप के औद्योगिक और वाणिज्य विस्तार को लाभ मिला। दो देशों को – नीदरलैंड और इंग्लैंड – फ्लेंडर्स शरणार्थियों के आने से बहुत फायदा पहुँचा जो कुशल कारीगर थे। फ्रांसीसी ह्युनॉट्स ने भी इंग्लैंड के कागज और शीशा उद्योग में बहुत बड़ा योगदान दिया। दूरदराज के बाज़ारों के लिए उत्पाद तैयार करने के लिए ग्रामीण घरों का एक व्यापक नेटवर्क तैयार करने में व्यापारियों की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई।

इंग्लैंड और नीदरलैन्ड में ग्रामीण कुटीर उद्योग का विकास हो चुका था। पश्चिमी और मध्य यूरोप के कई भागों में आदि – औद्योगीकरण का प्रसार था। यह औद्योगीकरण का पहला दौर था। विनिर्माताओं और व्यापारी उद्यमियों की सत्रहवीं सदी के संकट के प्रति अलग-अलग प्रतिक्रिया हुई। शहरी उत्पादन केन्द्रों में घटते मूल्यों और बढ़ती मज़दूरी और गिल्ड प्रणाली के कारण व्यापारियों ने शहरों से हटकर ग्रामीण क्षेत्रों में सस्ती मजदूरी दर और अधिकतम उत्पादन कर मुनाफ़े को बढ़ाया गया। इसका नतीजा हुआ महंगे वस्त्र की जगह सस्ती ड्रेपरी का उत्पादन किया जाना। लाभ को बढ़ाने के लिए एक अन्य साधन था। औपनिवेशिक जगत के साथ व्यापार की मात्रा में वृद्धि करना था ताकि घरेलू बाज़ार में कम हुई माँगों की भरपाई की जा सके। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक ऊन, लिनेन, सूती और मिश्रित कपड़ों के एक बड़े भाग का उत्पादन, इंग्लैंड, फ्रांस, निचले देशों, स्विटज़रलैंड और जर्मनी के ग्रामीण क्षेत्रों में हो रहा था। अतः शहरी औद्योगिक संगठनों को ग्रामीण उद्योगों से प्रतिस्पर्धा मिल रही थी और पुरानी शहरी उत्पादन प्रणाली टूटने लगी।

सत्रहवीं शताब्दी के संकट से कई क्षेत्रों में भू-दास प्रणाली मज़बूत हो गयी क्योंकि सामंतीय ढाँचे को तोड़ा नहीं जा सका। कमजोर बुर्जुवा वर्ग सामंतीय कुलीनों को चुनौती नहीं दे सका न ही उनका स्थान ले सका। राजनीतिक फूट और राजनीतिक विघटन के कारण ग्रामीण कुलीनों की शक्ति और बढ़ गयी। सामंतीय भूस्वामियों ने सफलतापूर्वक किसानों को भू-दास बना लिया और अपने क्षेत्र के व्यापार पर नियंत्रण कर लिया। उन्नीसवीं सदी में जंकर वर्ग इन्हीं कुलीनों से उभर कर आए थे। जैसा कि टी. के. रैब कहते हैं, 1660 से 1789 का काल कुलीनतंत्र का काल था। ये भूमिपति और राजदरबारी बन गये और शक्ति और विशेषाधिकार का आनन्द ले रहे थे।

राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में आर्थिक विच्छेदता, सन्य संचालन और आबादी की क्षति ने सरकार के साधनों पर बहुत भार डाला। साधारण लोगों पर करों का अत्यधिक भार डाला गया। फ्रांस के सम्राट नए कर लगा कर वित्तीय साधनों को बढ़ाकर बहुत शक्तिशाली हो गये। तीस वर्षीय युद्ध में **तेई** (कृषि उत्पादन पर कर) छः गुणा बढ़ा दिया गया। फ्रोन्द विद्रोह की असफलता ने शासक के अधिकारों को कुलीनों के

मुकाबले बहुत बढ़ा दिया। इंग्लैंड में नवोदित बुर्जुवा वर्ग और नए जेन्ट्री ने सामंतीय राजतंत्र को उखाड़ फेंका और इस प्रकार संविधानिक राजतंत्र और संसदीय प्रतिनिधित्व के मार्ग खोल दिया। इसने इंग्लैंड और डच गणतंत्र में पूंजीवाद का मार्ग प्रशस्त किया।

बोध प्रश्न 3

1) इस काल में स्पेन के पतन पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) इस संकट का यूरोप पर क्या प्रभाव पड़ा?

.....

.....

.....

.....

.....

1.8 सारांश

इस इकाई में हमने तुलनात्मक दृष्टिकोण से सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों को समझने का प्रयत्न किया, जिससे यह समझ सकें कि क्यों सत्रहवीं सदी ने सर्वव्यापक विकास और सम्पन्नता से हटकर यूरोप के कई क्षेत्रों में आर्थिक संकुचन, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र का उखड़ना तथा जनसांख्यिकीय ह्रास का मार्ग लिया। हमने यह भी विश्लेषण करने का प्रयास किया कि सत्रहवीं शताब्दी को 'सामान्य संकट' क्यों कहा गया है। इस व्याख्या के पक्ष और विपक्ष में इतिहासकारों में 1950 के दशक से विवाद चलता रहा है। यूरोपियन इतिहास के विषयों पर यह एक महत्वपूर्ण विवाद माना जाता है। इसमें हमने यह भी ढूँढने का प्रयत्न किया है कि क्या प्रत्येक देश ने परिवर्तन का अपना अलग मार्ग अपनाया था या वे सामूहिक अनुभव का हिस्सा थे।

संकट की उत्पति का अध्ययन करते हुए हमने देखा कि इस काल में व्यापक संघर्ष, राजनैतिक विद्रोह, जनसांख्यिकीय हादसे और मौद्रिक संकट महसूस किए गये जिससे यह सामान्य संकट का काल बन गया।

संकट का आयाम व्यापक अध्ययन के क्षेत्र खोलता है जैसेकि जनसंख्या, मौद्रिक, कृषि, आर्थिक और जलवायु सम्बन्धी क्षेत्रों से जुड़े विषय, जिन्होंने यूरोप के ऐतिहासिक विकास को विपरीत दिशा प्रदान की। हमने यह भी पढ़ा कि तीस वर्षीय युद्ध ने संकट की स्थिति को बढ़ाने में योगदान दिया हालांकि इसका कार्यक्षेत्र मध्य और पूर्वी यूरोप तक सीमित था। भू-मध्यसागर की ऐतिहासिक प्रगति को सत्रहवीं सदी में झटका लगा। इस संकट ने इटली और स्पेन का वाणिज्य और नाविक आधिपत्य समाप्त कर

दिया। यह प्रवृत्ति सोलहवीं शताब्दी में भी मौजूद थी परन्तु सत्रहवीं सदी तक हौलैंड, इंग्लैंड और फ्रांस का पश्चिमी तट वाणिज्यिक दृष्टि से केन्द्र बिन्दु बन गया।

इस इकाई के अन्तिम भाग में संकट के प्रभाव की समीक्षा की गई है। इसी संकट ने पूंजीवाद को यूरोप के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में विजय दिया, परन्तु इसी संकट ने मध्य और पूर्वी यूरोप में पूंजीवादी तत्वों को परास्त कर सामंतीय ढाँचे को मजबूत कर दिया। मध्य और पूर्वी यूरोप में उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धों को संकट ने पुनः सामंतीय बना दिया। सत्रहवीं शताब्दी के फलस्वरूप पश्चिमी और पूर्वी तथा उत्तरी और दक्षिणी यूरोप का आर्थिक अन्तर बहुत अधिक बढ़ा दिया।

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 1.2।

2) कृपया भाग 1.3 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) कृपया उपभाग 1.4.1 देखिए।

2) कृपया उपभाग 1.4.2 देखिए।

3) कृपया उपभाग 1.4.5 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) कृपया उपभाग 1.6.1 देखिए।

2) कृपया भाग 1.7 देखिए।

इकाई 2 यूरोपीय औपनिवेशिक विस्तार और वाणिज्यवाद*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 वाणिज्यवाद : परिभाषा और विशेषताएँ

2.2.1 वाणिज्यवादी विचार

2.2.2 वाणिज्यवादी नीतियाँ और व्यापार की प्रकृति तथा संगठन में परिवर्तन

2.3 यूरोपीय देशों में वाणिज्यवाद

2.3.1 डच गणराज्य

2.3.2 इंग्लैंड

2.3.3 फ्रांस

2.3.4 अन्य देश

2.4 यूरोपीय विस्तार की प्रकृति

2.5 प्रवासन, नई बस्तियाँ और वाणिज्यवाद

2.6 बागान अर्थव्यवस्थाएँ

2.7 दासता और दासत्व व्यवस्थाएँ

2.8 बैंकिंग और वित्त

2.9 व्यापारिक पूंजी

2.10 सारांश

2.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको निम्नलिखित में सक्षम होना चाहिए:

- नीति के रूप में और पूंजीवाद के विकास की एक अवस्था के रूप में वाणिज्यवाद की अवधारणा को समझना;
- यूरोप के विभिन्न राज्यों द्वारा अपनाई गई वाणिज्यवादी नीतियों की मुख्य विशेषताओं ओर इनके कार्यान्वयन के क्षेत्रों के बारे में विभिन्न राज्यों के बीच अंतरों को पहचानना;
- सत्रहवीं शताब्दी और अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रीय राजशाही और उनके राज्यों के भीतर आंतरिक सामाजिक और राजनैतिक गतिशीलता को देख पाना;
- यह समझना कि कैसे इन वाणिज्यवादी नीतियों के गैर-यूरोपीय विश्व और उपनिवेशों के लिए कुछ परिणाम थे, और ये सोलहवीं शताब्दी से कैसे भिन्न थे; और

* इकाई लेखक : डॉ. नलिनी तनेजा

- व्यापारिक नीतियों के द्वारा सामने लाए गए नये सामाजिक वर्गों और व्यापारिक पूंजी या पूंजीवाद के रूप में परिलक्षित वर्ग की भूमिका, और व्यापारिक पूंजी के विस्तार की प्रवृत्ति को पहचानना।

2.1 प्रस्तावना

अपने पहले के पाठ्यक्रम में आपने सोलहवीं शताब्दी की खोजों और विश्व के अनेक हिस्सों में यूरोपीय लोगों द्वारा की गई खोज के बारे में पढ़ा है, जिनके बारे में वे पहले नहीं जानते थे। आप समझ गए होंगे कि जब इसे अन्वेषण और खोज का युग कहा जाता था, तो इसमें बहुत कुछ शामिल था; इसका यह भी अर्थ था कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और वाणिज्य में वृद्धि और दोनों उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के महाद्वीपों में लोगों की अधीनता हुई, और यह एशिया के साथ सम्बंधों की गतिशीलता में बदलाव की शुरुआत थी। सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक, यूरोप के विस्तार से दक्षिण अमेरिका में पहले ही स्पेनिश और पुर्तगाली साम्राज्य स्थापित किए जा चुके थे, उत्पादन में दासता की शुरुआत हो चुकी थी और एक फलता-फूलता दास व्यापार और 'विनिर्माण' की एक असमान प्रणाली विकसित हो चुकी थी जिसमें यूरोप के लोगों को लाभ मिला।

आधुनिक यूरोप के इतिहास को इन सम्बन्धों और परस्पर जुड़े घटनाक्रमों के बिना नहीं समझा जा सकता है। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में बस्तियाँ बसाने के लिए नये भू-भागों, ज्यादातर अमेरिका, साइबेरिया, अफ्रीका और ऑस्ट्रलएशिया को विजित किया गया। अमेरिका और साइबेरिया की आबादी का आक्रामक निर्मूलन हुआ और बारह मिलियन अफ्रीकियों का बलपूर्वक अमेरिका में और बाद में केरीबियन के बागानों में (1500 और 1860 के बीच) ले जाया गया और परिणामस्वरूप विभिन्न यूरोपीय शक्तियों द्वारा विश्व पर वर्चस्व कायम हुआ। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यह विस्तार यूरोप और शेष दुनिया के बीच बढ़ती असमानताओं के साथ हुआ था। उपनिवेशवाद एक राजनैतिक वास्तविकता बन गया।

सोलहवीं शताब्दी ने जिन विशेषताओं को दर्शाया, सत्रहवीं शताब्दी ने उन विशेषताओं में परिवर्तन की गति को तेज होने को चिह्नित किया और कुछ नये तत्वों को भी सम्मिलित किया। यह यूरोप में जिसका विस्तार हो चुका था और उन क्षेत्रों में जहाँ यूरोपीय शक्तियों ने विस्तार किया, दोनों के सन्दर्भ में है। इस प्रकार, यूरोप का विस्तार अर्थव्यवस्था की विश्व प्रणाली के विस्तार के साथ-साथ विश्वभर की अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति में परिवर्तन था। इनमें से अधिकांश विकास व्यापार और वाणिज्य की प्रकृति और सम्बन्धित उत्पादन क्षेत्रों में परिवर्तन में दिखाई दे रहे थे। इसमें यूरोपीय और शेष विश्व के बीच आमना-सामना भी शामिल था, जिसके मानवता के इतिहास के लिए दीर्घकालीन परिणाम थे।

इस अवधि के दौरान जो विशेषताएँ व्याप्त थी, उन्हें विभिन्न इतिहासकारों द्वारा वाणिज्यवाद या व्यापारिक पूंजी के रूप में चित्रित किया गया है। इस बात पर बहस चल रही है कि क्या वाणिज्यवाद पूंजीवाद का अग्रदूत था, या पूंजीवाद से पहले का एक चरण था, या यह पूंजीवाद का प्रारम्भिक चरण था या नहीं। यह पारिभाषिक शब्द अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में व्यापार और वाणिज्य की प्रमुखता और विभिन्न यूरोपीय देशों के सामाजिक और राजनैतिक जीवन में व्यापारियों के बढ़ते महत्व को दर्शाता है। हालांकि एक समान परिमाण में नहीं। यह यूरोप के विभिन्न राष्ट्र-राज्यों द्वारा अनुपालन की

जाने वाली नीतियों के एक निश्चित समुच्चय को भी संदर्भित करता है। इसने अठारहवीं शताब्दी के मध्य से यूरोप और बाद में उत्तर अमेरिका में औद्योगिक पूंजीवाद के विकास और शेष विश्व में एक अच्छी तरह से विकसित उपनिवेशवाद की व्यवस्था को जन्म दिया।

2.2 वाणिज्यवाद : परिभाषा और विशेषताएँ

यूरोप के विस्तार और वाणिज्यवाद के बीच एक सम्बंध था। यदि हम आर्थिक विचार के इतिहास को देखें तो किसी समय के आर्थिक विचारों और नीतियों के बीच समानताओं को रेखांकित करना सम्भव है। जिस तरह विभिन्न राज्यों में नीतियों के बीच कुछ अन्तर थे, लेकिन कुछ समानताएँ भी थी जो हमें उन नीतियों को वाणिज्यवादी के रूप में चिह्नित करने और एक निश्चित विचार से जोड़कर देखने की अनुमति देती है। इसलिए नीतियों के जोर और वकालत में अन्तर के बावजूद भी अध्ययन के तहत् अवधि के आर्थिक विचारों में कुछ समानताएँ हैं, जो हमें उन विचारों को वाणिज्यवाद के रूप में चिह्नित करने की अनुमति देती हैं। अठारहवीं शताब्दी के मध्य से इन विचारों और नीतियों की आलोचना और सैद्धान्तिक सम आलोचना उभरी जिसे अहस्तक्षेप का विचार और नीति के रूप में जाना जाने लगा। दोनों के बीच नीतियों में विषमता को मौटे रूप से एकाधिकार और व्यापार के नियन्त्रण और मुक्त व्यापार के रूप में देखा जा सकता है। दोनों पूंजी संचय के व्यापक हितों के अन्तर्गत अलग-अलग दृष्टिकोण से, उभरते और विकसित पूंजीवाद के अलग-अलग चरणों के प्रतिबिंब हैं।

पूंजीवाद को आवश्यकता थी कि यह जो उत्पादन करता था उसे वस्तुओं में बदल दिया जाए अर्थात् ऐसे उत्पाद और यहाँ तक कि श्रम को भी, जिन्हें बाजार में बेचा जा सकता था, ताकि उत्पाद को इसके उत्पादन की लागत से अधिक कीमत पर बेचा जा सके। इसके लिए उत्पादन की प्रणाली और उत्पादन प्रक्रिया के संगठन में बदलाव की आवश्यकता थी। यह अचानक नहीं हुआ था, यह एक क्रमिक ऐतिहासिक प्रक्रिया थी, जैसा कि अब हम देख सकते हैं, हालांकि इतिहास में उस समय परिवर्तन की गति पहले की तुलना में तेज थी।

इस प्रक्रिया में शामिल सभी बदलाव अर्थव्यवस्था के मौजूदा चरण में नहीं उभर सकते थे, हालांकि उनमें से काफी संख्या ने ऐसा किया था। लेकिन उस अवस्था में अधिक प्रभाव बाहरी प्रेरणा का था यानि व्यापार और वाणिज्य का, जो उत्पादन प्रक्रिया का हिस्सा बन गया। इस इकाई में हम इस चरण पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं जिसे वाणिज्यवाद कहा जा सकता है।

2.2.1 वाणिज्यवादी विचार

क्योंकि ''नये विश्व'' (दक्षिण अमेरिका) से सोने और चाँदी के भारी मात्रा में अन्तर्वाह और पूर्व से विलासिता के सामानों का व्यापार (जो वृद्धि के आधार पर ''असमान विनिमय'' बन गया), उसने यूरोपीय राष्ट्र-राज्यों का भाग्य बदलना शुरू कर दिया और कुछ हद तक उनकी जनसंख्याओं को भी (बेहतर, बदतर या केवल भिन्न) यह एक ध्यान देने की घटना बन गई। उस समय के विचारकों और टिप्पणीकारों ने इसके लिए उचित ही व्यापारियों और विनिर्माताओं के बढ़ते और व्यापक कार्यकलाप को जिम्मेदार ठहराया। व्यापारी अब उत्पादन प्रक्रिया में भी निवेश कर रहे थे। इन

आर्थिक विचारकों ने तब जिसे वे राष्ट्र का हित मानते थे उसको प्रोत्साहन देने के लिए मौजूदा राजाओं और सरकारों को सलाह देने और वैधानिक कार्यों को प्रभावित करना शुरू कर दिया। वे निश्चित रूप से, आबादी के आर्थिक स्वास्थ्य और समृद्धि के बजाए अर्थव्यवस्थाओं के विकास और सरकार के राजस्व के प्रति अधिक चिंतित थे। उनका तर्क था कि क्षेत्र की सामान्य दौलत रिसकर सभी की समृद्धि में योगदान देगी। इसलिए उनकी मूल अवधारणा अपने राष्ट्र की आर्थिक स्वास्थ्य की पहचान उसकी सम्पदा से करने की थी और सम्पदा को मुद्रा या परिसंचारित पूंजी के रूप में पहचानने की थी जिसका उपयोग सम्पदा को और अधिक बढ़ाने को किया जा सकता था। वे यह भी मानते थे कि यह केवल राज्य की ताकत के द्वारा ही करवाया जा सकता था यानि इस उद्देश्य से अर्थव्यवस्था को विनियमित करने के पक्ष में काम करने वाले राजा द्वारा। इसलिए उनकी राज्य कानून निर्माण और सक्षमकारी कानूनों के निर्माण पर उनकी सार्वभौमिक निर्भरता थी। तब प्रेरक विचार यह था कि देश के बाहर की बजाए ज्यादा सम्पदा देश के अन्दर की तरफ प्रवाहित होनी चाहिए। निर्यात आयात से अधिक होना चाहिए और इन हितों की पूर्ति के लिए औपनिवेशिक विजय प्राप्त की जानी चाहिए। व्यापार के संतुलन को यह सुनिश्चित करना चाहिए और इन हितों की पूर्ति के लिए औपनिवेशिक विजय प्राप्त की जानी चाहिए और राजनीति या सरकार की नीति को इस दिशा में निर्देशित करना चाहिए।

सरकार को क्या करने की जरूरत थी? इन विचारकों के अनुसार उन्हें अर्थव्यवस्था की रक्षा करने, माँग को प्रोत्साहित करने और उत्पादन की निगरानी करने की आवश्यकता थी। उन्हें पूरे राज्य में बड़े पैमाने पर वाणिज्य को विनियमित करने, कराधान की नीतियों को बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने और अन्य विनियमनों को लागू करने की आवश्यकता थी। उन्हें अन्य देशों की प्रतिस्पर्धा से व्यापारियों और विनिर्माताओं के हितों की रक्षा करने की आवश्यकता थी।

जबकि ये बुनियादी विचार थे लेकिन विभिन्न लेखकों के बीच और विभिन्न देशों के बीच इनको महत्व देने को लेकर अन्तर था। पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में और सत्रहवीं सदी में नीतियों का प्रभावित करने वाले वाणिज्यवादी विचारों में अन्तर थे जो अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में अधिक परिष्कृत विचारों की और अग्रसर हुए जब इन विचारों पर सवाल उठाए जाने लगे और मुक्त व्यापार और सम्पदा को मापने के विभिन्न सूचकांकों के पक्ष में उनकी आलोचना होने लगी।

2.2.2 वाणिज्यवादी नीतियाँ और व्यापार की प्रकृति तथा संगठन में परिवर्तन

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के वर्षों के दौरान, अधिकांश यूरोपीय सम्राट, कस्बों और गाँव स्तर की स्थानीय चुंगी और करों को समाप्त करने और उनके स्थान पर राजाओं को राजस्व लाने वाली कराधान नीति के साथ बदलने में सफल रहे। उन्होंने अपने राज्यों में विदेशी व्यापारियों द्वारा लाई गई वस्तुओं या राज्यों से बाहर निर्मित माल को लाने के लिए सीमा शुल्क अवरोध भी बनाए। इन मामलों में भुगतान किये जाने वाले करों ने न केवल सम्राटों और केन्द्रीय प्रशासन के कराधान आधार को बढ़ाया, बल्कि अन्य देशों की तुलना में अधिक अनुकूल शर्तों पर प्रतिस्पर्धा करने के लिए अपने देश के उत्पादों को सक्षम बनाया। व्यापार को प्रोत्साहित करने के मुख्य उद्देश्य के साथ इन राज्यों की लम्बाई और चौड़ाई में बन्दरगाहों, सड़कों और पुलों का निर्माण किया गया था।

व्यापार के संगठन में परिवर्तन हुए। लम्बी दूरी के व्यापार का मतलब अधिक जोखिम और निवेश था, जिसका सामना व्यापारी कम्पनियों के गठन, व्यापारियों द्वारा उनमें निवेश और राज्यों द्वारा प्रोत्साहन और संरक्षण के द्वारा किया गया। राष्ट्रों द्वारा अलग-अलग व्यापारिक कम्पनियों का गठन किया गया और उन्हें राजनैतिक नियंत्रण के क्षेत्रों पर व्यापार का एकाधिकार प्रदान किया गया। इस प्रकार राजनीति, औपनिवेशीकरण और व्यापार विस्तार के बीच सीधा सम्बंध स्थापित करने के लिए बुनियादी संगठनात्मक ढ़ाँचे का निर्माण किया गया। अठारहवीं शताब्दी के आगमन के साथ इन कम्पनियों को महत्वपूर्ण प्रशासनिक कार्य करने थे और यूरोपीय शक्तियों द्वारा अन्य महाद्वीपों पर अन्तिम प्रत्यक्ष शासन में एक संक्रमणकालीन भूमिका निभाई।

इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दिशा में व्यापार के संतुलन में बदलाव आया जिससे अठारहवीं शताब्दी के प्रथम दशक में इसका परिमाण बढ़ गया, हालांकि सत्रहवीं शताब्दी में यह यूरोपीय महाद्वीप के भीतर स्थानीय और क्षेत्रीय व्यापार था जो सबसे महत्वपूर्ण था। लेकिन जैसाकि कोएनीग्सबर्गर ने बताया है, यह व्यापार की मात्रा को संदर्भित करता हैः मूल्य के रूप में यह समुद्र पार व्यापार था जो अधिक राजस्व लाता था या जिसमें ज्यादा निवेश होता था। 'उष्ण कटिबन्धीय और उप उष्ण-कटिबन्धीय वस्तुओं के लिए एक विशाल और बढ़ती यूरोपीय माँग पर निर्भर' (कोएनीग्सबर्गर, पृ. 174) व्यापार के आधार पर और साथ ही साथ पूर्वी दुनिया की विलासिता वस्तुओं, उत्कृष्ट वस्त्रों और कलाकृतियों के माध्यम से शानदार भाग्य बनाए गये थे।

परिणामस्वरूप सत्रहवीं शताब्दी में व्यापार के लिए वस्तुओं का विस्तार हुआ जिस पर कम्पनियों द्वारा नियंत्रण किया जा रहा था। इन उत्पादों में अब किस्से कहानियों के मसालों के व्यापार के साथ अब कॉफी, चाय, आलू, मक्का, टमाटर, तंबाकू और फिर चीनी शामिल थे। सत्रहवीं शताब्दी में दास एक महत्वपूर्ण वस्तु बन गये। कॉफी और चायघर यूरोप में शहरी दृश्य का हिस्सा बनने लगे। चाय सीधे चीन से आयात की जाती थी। चीनी अब केवल सभ्रांत लोगों द्वारा नहीं बल्कि दूसरों द्वारा भी इस्तेमाल की जाती थी। वास्तव में ये वस्तुएँ जिनमें दास भी शामिल थे, औपनिवेशिक पश्चिमी शक्तियों द्वारा प्रबन्धित और मुनाफा कमाए जाने वाली दुनिया के विभिन्न हिस्सों में बागान अर्थव्यवस्था से जुड़ी हुई थी। और इनके द्वारा उत्पादन प्रणाली में महत्वपूर्ण बदलाव लाए गए, जिससे व्यापारिक पूंजी पूंजीवादी उत्पादन का अभिन्न अंग बन गई (जो प्राचीन विश्व की दास अर्थव्यवस्थाओं से काफी अलग थी)। भारतीय उपमहाद्वीप से सूती कपड़ा व्यापार पहले से ही महत्वपूर्ण वस्तु था। इस वस्तु के व्यापार का उलटना केवल अठारहवीं शताब्दी के मध्य के बाद केवल मिल निर्मित कपड़े से हुआ था।

इसके अलावा पहले से ही सत्रहवीं शताब्दी से यूरोपीय लोगों ने पूर्व में हिन्द महासागर और चीन सागर के माध्यम से स्थानीय व्यापार के एक महत्वपूर्ण भाग पर नियंत्रण कर लिया था और ''इस व्यापार के मुनाफों के साथ यूरोप को एशियाई सामानों के निर्यात का भुगतान करते थे''। बाद में, अठारहवीं शताब्दी के मध्य से, वे कम्पनियों के माध्यम से, राजस्व के अधिकार को प्राप्त करने में सक्षम हुए और इससे अपने निर्यात और मुनाफे के लिए सामान खरीदते थे। यूरोप द्वारा अन्य महाद्वीपों से सुव्यस्थित धन की निकासी, यूरोपीय राज्यों और उभरते पूंजीवादी वर्ग के लाभ के लिए सत्रहवीं शताब्दी में व्यापक थी और वाणिज्यवादी नीतियों का अभिन्न अंग थी। इन देशों में कुछ राज्यों के स्वामित्व वाले विनिर्माण भी स्थापित किये गये थे और इस

अवधि में जहाज निर्माण में वृद्धि हुई थी। कई राज्यों में खनन् और विनिर्माण के क्षेत्र में भी एकाधिकार प्रदान किया गया।

2.3 यूरोपीय देशों में वाणिज्यवाद

सत्रहवीं शताब्दी मुख्य रूप से डच गणतन्त्र, इंग्लैंड और फ्रांस का युग था। एम्सटर्डम अब अच्छी तरह से स्थापित विश्व अर्थव्यवस्था का तंत्रिका केन्द्र था। इस भाग में हम इस अवधि के कुछ महत्वपूर्ण यूरोपीय देशों में वाणिज्यवाद के विकास पर चर्चा करेंगे।

2.3.1 डच गणराज्य

सत्रहवीं शताब्दी डच अर्थव्यवस्था के लिए स्वर्णिम युग थी, जो मुख्य रूप से इसके व्यापार में श्रेष्ठता पर आधारित थी और एम्सटर्डम यूरोप में प्रमुख बन्दरगाह था। इसका व्यापारिक बेड़ा सत्रहवीं शताब्दी के दौरान तीन गुना हो गया जो यूरोप के नौपरिवहन का आधा भाग था। डच ने अपने दायरे में वस्तुओं की एक श्रेणी और राष्ट्रों को ले लिया जिसमें एम्स्टर्डम से अनाज और मछली, पौलेंड और पूर्वी पर्शा से राई और गेहूँ, स्वीडन में उत्पादित लोहा, नमक, मदिरा और अन्य वस्तुएँ और देशों में वेस्टइंडीज, ब्राजील, जापान, दक्षिण-पूर्व एशिया और फ्रांस, स्पेन और भू-मध्यसागर क्षेत्र के अलावा पश्चिमी यूरोपीय तट शामिल था। उन्होंने ने भारत, श्रीलंका और इंडोनेशिया में व्यापारिक कम्पनी की बस्तियाँ भी स्थापित की। एम्सटर्डम विनिमय विपत्रों, बैंकिंग और साख प्रणाली, और एक नहर प्रणाली जिसने नौकाओं को लगभग व्यापारियों के गोदामों तक पहुँचना सम्भव बनाया; इन आर्थिक गतिविधियों का घर बन गया।

फ्रांस की तुलना में, यहाँ सोने-चाँदी या व्यापार के माध्यम से सोने-चाँदी की मात्रा में वृद्धि करने की कोई सनक नहीं थी। सत्रहवीं शताब्दी की बढ़ी हुई व्यापारिक गतिविधियों के लिए आवश्यक जहाज निर्माण में तरक्की या विकसित हो रहे वित्तीय संस्थानों की प्रगति के कारण, व्यापार की वस्तुओं की मात्रा के संदर्भ में सम्पदा को मापा जाता था। वाणिज्यिक क्रान्ति अर्थात् खरीदने और बेचने के माध्यम से लाभ उद्योग को विनियमित करने की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण था। हालांकि सोलहवीं शताब्दी में इतालवी राज्यों के बाद उद्योग बनाने में नीदरलैंड क्षेत्र पहले स्थान पर था। संरक्षणवाद पर कम जोर देने के बावजूद उपनिवेशों में डचों ने एकाधिकार स्थापित किये थे। 1662 में जॉन द विट द्वारा लिखे गये एक आलेख *द इन्टरेस्ट्स ऑफ हालैंड* ने उनके वाणिज्यवादी रुख को प्रतिबिंबित किया। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर अधिक निर्भरता के कारण, उद्योग के विनियमन को उनके द्वारा बाधा माना जाता था चूंकि व्यापार में स्पेनिश और पुर्तगाली एकाधिकार को कुचलने वाले डच प्रथम थे, इसलिए उन्होंने सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक व्यापार में स्वतन्त्रता को प्राथमिकता दी जब तक कि इंग्लैंड और फ्रांस ने गम्भीर चुनौती पेश नहीं की। जब तक फ्रांस और इंग्लैंड द्वारा नौसैनिक युद्ध द्वारा उन्हें वशीभूत नहीं किया, उनकी श्रेष्ठता बनी रही।

2.3.2 इंग्लैंड

इंग्लैंड में सम्राट और संसद के बीच संघर्ष में संसाधनों पर नियन्त्रण भी शामिल था, लेकिन अर्थव्यवस्था पर इसका एक हानिकारक प्रभाव नहीं था। वास्तव में इंग्लैंड सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अन्य राष्ट्रों से आगे

निकल गया था। वाणिज्यवादी विधान को लागू करने वाले राष्ट्रों में यह प्रथम था। समय के साथ इसके रूप बदलेः सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में घरेलू उद्योगों और विनिर्माण गतिविधियों के विनियमन और व्यापार और वाणिज्य के संतुलन के सरोकार से सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नौपरिवहन अधिनियमों और औपनिवेशिक विनियमन तक।

आयातों को कम करने और निर्यात को बढ़ाने की एकसमान नीति थी। 1581 में ही संसद ने सोने-चाँदी के निर्यात पर रोक लगा दी थी, और टयूडर कानूनों ने अंग्रेजी माल को अंग्रेजी जहाजों में भेजना अनिवार्य कर दिया था जबकि विदेशी जहाजों में लाए गये सामान को ऊँचे शुल्क देने पड़ते थे। इस तरह के कानूनों के माध्यम से अंग्रेजी क्षेत्रों के भीतर व्यापार को और जिन वस्तुओं का अंग्रेज व्यापार करते थे, उनमें इंग्लैंड के लिए अधिक अनुकूल बनाया गया था। 1600 में महारानी एलिजाबेथ ने ईस्ट इंडिया कम्पनी का निर्माण करने वाले एक चार्टर को जारी किया। इसके परिणामस्वरूप बाद में भारत और सामान्य तौर पर हिन्द महासागर और फारस में व्यापारिक स्थानों का अधिग्रहण हुआ। थॉमस मुन ने वाणिज्यवादी नीतियों के पक्ष में और राष्ट्र हित में एक अनुकूल विदेश व्यापार के महत्व को दर्शाते हुए कई आलेख लिखे। इनके नाम *डिस्कोर्स ऑन इंग्लिश ट्रेड विद द ईस्टइड़िज* और *इंग्लैंड़स ट्रेजर बाए फोरन ट्रेड* थे।

कई नौपरिवहन अधिनियमों में से पहला 1651 में पारित किया गया था जो इंग्लैंड को पड़ोसी क्षेत्रों में व्यापार पर प्रभुत्व रखने के लिए सक्षम बनाता था और जल्द ही यह सभी यूरोपीय देशों द्वारा और उनके नियंत्रण के क्षेत्रों में एक मानक वाणिज्यवादी अभ्यास बन गया। यह आयातों पर सीमा शुल्कों के अधिरोपण के साथ था जो भी एक मानक अभ्यास बन गया था जिसके परिणामस्वरूप सदियों से कई सीमा-शुल्क युद्ध हुए। और जैसे-जैसे अठारहवीं शताब्दी आगे बढ़ी, वैसे-वैसे उपनिवेशों में भी विनियमन बढ़े, जिसके उपनिवेशों में यूरोपीय शक्तियों के बीच युद्ध भी हुए, उदाहरण के लिए भारत में और नौसेनाओं और युद्ध के लिए नौसैनिक जहाजों का विस्तार हुआ।

2.3.3 फ्रांस

यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि 'वाणिज्यवाद ने निरंकुशतावादी फ्रांस के लिए वित्तीय आधार प्रदान किया।' (मेरीमैन, पृ. 275)। लुई XIII के मुख्यमंत्री, रिचेल्यू ने फ्रांस में एक व्यवस्थित तरीके से वाणिज्यवादी नीतियों का श्रीगणेश किया और शाही आदेशों के माध्यम से आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने को प्रधानता दी। उन्होंने कृषि की तुलना में वाणिज्य पर अधिक बल दिया और नौसैनिक शक्ति के महत्व पर बल दिया। फ्रांसीसी वाणिज्यवादी नीतियों का मुख्य निर्माता, हालांकि, सम्राट लुई XIV के तहत् वित्त और आर्थिक मामलों के मन्त्री जीन बेपटिस्ट कोलबर्ट थे। उन्होंने राजा को आश्वस्त किया कि विश्व के बाजारों के मुख्य दावेदार, जिसमें मुख्य रूप से डच के स्वामित्व वाले लगभग बीस हजार जहाजों में व्यापार शामिल था, जाहिर तौर पर डच थे, लेकिन अंग्रेज और फ्रांसीसी भी थे। वाणिज्य के लिए एक संहिता तैयार की गई थी और उनका दृढ़ संकल्प था कि फ्रांस को सोने और चाँदी के लाभ प्राप्तकर्ता के रूप में स्पेन से आगे होना चाहिए। जिसे वाणिज्यवादियों द्वारा सम्पदा का मुख्य सूचकांक माना जाता था और उन्होंने फ्रांसीसी उद्योग के लिए संरक्षणवादी उपायों पर जोर दिया। इंग्लैंड की तुलना में फ्रांस में उद्योग का विनियमन बहुत अधिक था, जिसमें वाणिजिक वस्तुओं और विनिर्माण की एक पूरी श्रृंखला शामिल

थी। फ्रांसीसियों को सबसे मजबूत रूप में उभरने के लिए, कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाना आवश्यक था, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण थे राष्ट्रीय सीमा शुल्क। ये सीमा शुल्क कोलबर्ट द्वारा 1664 और 1667 में लागू किये गये थे, इनमें पहला समुच्चय मुख्य रूप से डच के खिलाफ और दूसरा अंग्रेजों के व्यापार के खिलाफ निर्देशित था। इसके परिणामस्वरूप इन देशों के खिलाफ, यूरोप में और इसके बाद दुनिया के अन्य क्षेत्रों में युद्ध भी हुआ।

यह यूरोप के देशों के लिए फ्रांसीसी व्यापारिक कम्पनियों के गठन के साथ हुआ थाः बाल्टिक और लेवान्त क्षेत्रों में। लेकिन सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण 1664 में ईस्ट इंडिया और वेस्ट इंडिया कम्पनियों की स्थापना था और अफ्रीका और उत्तर अमेरिका के भागों के लिए कम्पनियों का गठन था। उन्हें सम्बंधित क्षेत्रों में औपनिवेशिक व्यापार के लिए एकाधिकार प्रदान किया गया था जिसमें वे संचालित थी।

फ्रांस के भीतर चुंगी करों को समाप्त कर दिया गया और इसलिए केन्द्र द्वारा संग्रह में वृद्धि हुई। यह अनुमान लगाया जाता है कि पहले के एक चौथाई की तुलना में, पाँच में से चार भाग संग्रह के शाही खजाने में आए, जिसने अन्य चीजों के अलावा, राज्य को एक सक्रिय रूप से आर्थिक और औपनिवेशिक हितों को आगे बढ़ाने के सक्षम बनाया। कुछ राज्य के स्वामित्व वाले विनिर्माण भी स्थापित किये गए थे।

इस अवधि में चार नये नौसैनिक बन्दरगाहों और अटलांटिक और भू-मध्यसागर के बीच एक जलमार्ग के निर्माण के लिए भी पहल की गई।

2.3.4 अन्य देश

स्पेन और पुर्तगाल जो वाणिज्य और सोने-चाँदी पर नियन्त्रण शुरू करने वाले और दक्षिण अमेरिका में जमीन पर कब्जा करने वाले सबसे पहले देश थे, उन्होंने इन नीतियों को सत्रहवीं शताब्दी में भी जारी रखा, हालांकि जैसे-जैसे सत्रहवीं शताब्दी आगे बढ़ी वे व्यापार की मात्रा, पैमाने और मूल्य के संदर्भ में वे अन्य यूरोपीय शक्तियों के साथ प्रतिस्पर्धा में पीछे रह गये।

चूंकि वाणिज्यवाद और निरकुशंता के बीच एक अंतरभूत सम्बंध था, प्रशा, ऑस्ट्रिया और रूस ने ऐसी नीतियों को विकसित किया था जो अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण सुनिश्चित करती थीं। प्रशा में इसकी आवश्यकता तीस वर्षीय युद्ध (1618-1648) के कारण हुई थी, जिसके बाद राज्य ने आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी शुरू कर दी थी। प्रशा और ऑस्ट्रिया के क्षेत्र के भीतर जिसमें जर्मन राज्य शामिल थे वहाँ राज्य ने वाणिज्यवादी नीतियों का संचालन किया था, हालांकि समुद्र तक पहुँच के अभाव में और सामन्तवाद के सामान्य रूप से देर से पतन के कारण पश्चिमी और पूर्वी यूरोप के बीच एक कालानुक्रमिक समय अंतराल था और सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में कृषि दासता की संस्था ने बुर्जुआ समाज और व्यापारिक पूंजी के विकास में बाधा उत्पन्न की। रूस में पीटर के अधीन, एक पश्चिमीकरण की नीति के तहत्, राज्य ने जहाज निर्माण सहित विनिर्माण के प्रोत्साहन और संगठन को अपने हाथ में ले लिया। लेकिन यहाँ जो वाणिज्यवादी नीतियों के समान था, वह कृषि दासता की संस्था और भू-संपत्तिवान आभिजात्य वर्ग के साथ एक मजबूत गठबंधन पर आधारित था। पश्चिम यूरोप की तुलना में व्यापारिक पूंजी और पूंजीपति वर्ग कमजोर रहा। यद्यपि रूस एक शक्तिशाली निरंकुश राज्य बन गया लेकिन यह उस युग में भी एकतन्त्र बना रहा जब पश्चिमी यूरोप में नई सामाजिक ताकतें मजबूत हो रही थी और

वाणिज्यिक पूंजी की भूमिका ने अर्थव्यवस्था में व्यापक बदलाव ला दिये थे। इस युग के दौरान स्वीडन ने भी वाणिज्यवादी नीतियों को अपनाने का प्रयास किया।

बोध प्रश्न 1

1) वाणिज्यवाद की परिभाषा दीजिए। वाणिज्यवादी विचारों के विकास पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) डच गणराज्य और फ्रांस में वाणिज्यवाद के विकास का विवरण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 यूरोपीय विस्तार की प्रकृति

जिसे 'यूरोपीय' विस्तार की संज्ञा दी गई है, वह राजतंत्रीय राज्यों के हितों और उनकी आर्थिक नीतियों से गहराई से प्रभावित था। वाणिज्यवाद, क्योंकि इसमें आर्थिक हितों की रक्षा शामिल थी इसलिए इसने न केवल यूरोपीय शक्तियों को एक दूसरे के साथ टकराव और प्रतिस्पर्धा में ला दिया बल्कि इसने राज्यों और व्यापारिक कम्पनियों के लिए उन क्षेत्रों पर नियन्त्रण और वर्चस्व आवश्यक कर दिया जिनके साथ वे व्यापार करते थे और जिनके संसाधनों से मुनाफे कमाए जाते थे। इस सबने अन्ततः राज्य के राजस्व को लाभ पहुँचाने में योगदान दिया।

यूरोपीय विस्तार, सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों और व्यापार की वस्तुओं का विस्तार था, जैसा कि ऊपर उल्लेखित है। ऐसा नहीं है कि सोलहवीं शताब्दी के अन्वेषणों ने यूरोपीय व्यापार के तहत नये क्षेत्रों को नहीं लाया था। लेकिन सत्रहवीं शताब्दी में, नये यूरोपीय राष्ट्रीय राज्यों ने पुर्तगाल और स्पेन के पुराने साम्राज्य के वर्चस्व को चुनौती दी, नये क्षेत्रों को उनके संसाधनों के व्यापार और शोषण के लिए खोला और इससे समुद्र पार के व्यापार में एक रूपान्तरण हुआ जिससे एक दूसरे देश में वस्तुएँ खरीदी और बेची जा सकती थी और जहाँ से नई वस्तुएँ एक तीसरे देश में खरीदी और बेची जा सकती थी। इस प्रकार, हम एक वृत्ताकार व्यापार स्वरूप की शुरुआत देखते हैं जिसमें उन क्षेत्रों को शामिल किया गया था जो अन्ततः उपनिवेश बन गए। उदाहरण के लिए, भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापार के एकाधिकार ने इसे भारत में सस्ता खरीदने में सक्षम बनाया, जबकि प्रतियोगियों को बाहर रखा गया और कम्पनी की विजय ने भारतीय व्यापारियों को भी उस व्यापार में भाग लेने से

रोका। भारत से अफीम को चीनियों पर लादा जाता था और चीन से प्राप्त की गई चाय को भारत, यूरोप और उत्तर अमेरिका जैसे उपनिवेशों में प्रोत्साहित किया जाता था और बेचा जाता था। अन्ततः कृषि का प्रारूप भी बदल दिया गया और गैर-यूरोपीय विश्व के नियंत्रित क्षेत्रों में लोगों को उन वस्तुओं का उत्पादन करने को मजबूर किया गया जो व्यापार के लिए आकर्षक थे और एक विशेष क्षेत्र में व्यापार को नियंत्रित करने वाली पश्चिमी शक्ति को लाभ पहुँचाते थे। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक उनके राजस्व अधिकार भी छीन लिए गए थे और व्यापार की जाने वाली वस्तुओं को अपने स्वयं के संसाधनों से नहीं बल्कि उन अर्थव्यवस्थाओं से लिया गया था जिनको उपनिवेश बनाया जा रहा था।

सत्रहवीं शताब्दी में, सोलहवीं शताब्दी से भी अधिक, व्यापार लूट का पर्याय बन गया। शक्तिशाली यूरोपीय देशों और व्यापारियों और नवोदित विनिर्माण में शामिल पूंजीपतियों के मुनाफे के लिए दुनियाभर के विशाल क्षेत्रों को नष्ट कर दिया था। वेस्टइंडीज, ईस्टइंडीज, अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, उत्तरी अमेरिका और एशिया के महाद्वीपों को इस लूट का शिकार बनाया गया जो वाणिज्यवाद के तहत आकार ले रही थी, जिसे शिष्ट शब्दों में 'व्यापारिक क्रांति' कहा गया था उसके दौरान बड़े स्तर पर धन के निष्कासन और धन की निकासी को सुव्यवस्थित किया गया।

उपनिवेशों और उपनिवेशों से यूरोपीय देशों तक सम्पदा के प्रवाह ने वाणिज्यवादी विचार ने एक महत्वपूर्ण स्थान पाया। सत्रहवीं शताब्दी इस तरह के विधि निर्माण में महत्वपूर्ण है, जिसने नये अधिग्रहीत विजयों को उपनिवेशों में बदल दिया। वे ऐसे कच्चे माल के स्रोत थे जिनका व्यापार किया जा सकता था और बाद की शताब्दी में अपने स्वयं के विनिर्माण के लिए उपयोग किया जाता था। उपनिवेश वस्तुओं के लिए बाजार भी थे, जरूरी नहीं कि वे वस्तुएँ स्वयं अपने देश से ही हो, बल्कि उनके नियंत्रण में किसी अन्य क्षेत्र से भी हो सकती थी। ये क्षेत्र महत्वपूर्ण पारगमन बिन्दु भी थे।

2.5 प्रवासन, नई बस्तियाँ और वाणिज्यवाद

यूरोपीय शक्तियों और गैर-यूरोपीय विश्व के बीच इस एक तरफा सम्बंध के भीतर, जिस प्रकार से यूरोप ने उस पर पारस्परिक प्रभाव डाला, उसमें काफी विविधता थी। यह इस अवधि के दौरान हुए प्रवासन और नई बस्तियों के बसाने के प्रारूप में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

उष्णकटिबन्धीय देशों में अधिक सम्पदा थी, जो घनी आबादी वाले भी थे और प्रतिरोध करने में सक्षम भी थे। अधिक समशीतोष्ण क्षेत्रों में जनसंख्या विरल थी और सम्पदा उत्पादन की तुलना में कच्चे संसाधनों और भूमि के रूप में अधिक थी।

यूरोप का विस्तार इन दोनों क्षेत्रों में अलग-अलग रूप से प्रकट हुआ। इन क्षेत्रों में औपनिवेशीकरण की प्रकृति विशिष्ट थी, हालांकि शोषण भी उतना ही तीव्र था। उदाहरण के लिए, यूरोपीय लोग, विशेष रूप से अंग्रेज उत्तरी अमेरिका में स्वर्ण, भूमि और नये व्यवसायों के लिए अवसर की चाहत के लिए गये और इस प्रक्रिया में उन्होंने मूल निवासियों को तबाह और वशीभूत किया। ऑस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमेरिका के हिस्सों में भी ऐसा ही हुआ था। ये नये प्रवासियों और बसने वालों द्वारा नियंत्रित किये गये और उनकी बस्तियाँ विकास और आर्थिक पहल का केन्द्र बन गई। जनसांख्यिकी

में नियमित बदलाव आया। इन क्षेत्रों में यूरोपीय प्रवासी एशिया और अफ्रीका की तुलना में संख्या में बहुत अधिक थे, उदाहरण के लिए, जबकि इन क्षेत्रों में देशी आबादी में गिरावट आई या उसे समाप्त कर दिया गया। इसके अलावा, सत्रहवीं शताब्दी के बाद से, यूरोपीय आबादी का अधिकांश विस्तार अपने स्वयं की शाही प्रणालियों के भीतर था। अर्थात् उत्तरी अमेरिका में अंग्रेज और फ्रांसीसियों के अपने सम्बंधित क्षेत्रों में पुर्तगालियों का ब्राजील में और इसी तरह।

एशिया और अफ्रीका में व्यापार चौकी प्राप्त करने, स्थानीय व्यापार पर नियन्त्रण, राजस्व के अधिकार, वित्तपोषण और उत्पादन पर अधिकार रखने और स्थानीय सहयोगी बनाने पर जोर दिया गया। चीन में, कई शक्तियों में विशिष्ट क्षेत्रों में प्रवेश करके उनका नियन्त्रण हथिया लिया। भारत में डच, पुर्तगाली और अंग्रेजों ने अपने अड्डों की स्थापना की और अन्ततः अंग्रेज नियंत्रण पाने में सफल रहे। प्रत्यक्ष शासन, हालांकि, बहुत बाद में आया। अफ्रीकी महाद्वीप विभिन्न यूरोपीय शक्तियों अंग्रेजी, डच और फ्रांसीसी द्वारा प्रतिस्पर्धा और नियन्त्रण का एक समान मामला था। रूसियों ने प्रशान्त महासागर क्षेत्र और मध्य एशिया में अपना मार्ग ढूँढ लिया।

अमेरिका में इन भूमियों में बसने वाले श्वेत लोगों के अलावा, प्रवासियों का एक बहुत बड़ा हिस्सा अफ्रीकियों का था जिन्हें गुलामों के रूप में ले जाया गया और जिससे अठारहवीं शताब्दी और बाद में इन क्षेत्रों में अनेक जगह जनसांख्यिकी को बदल दिया।

2.6 बागान अर्थव्यवस्थाएँ

इन सभी क्षेत्रों में जहाँ अमेरिका में नये लोग आकर बसे थे, या कम्पनियों के एजेंट या विश्व के अन्य हिस्सों के व्यापारियों ने प्रत्यक्ष उत्पादन में निवेश किया था, श्रम की समस्या थी। उनके द्वारा अपने प्रत्यक्ष स्वामित्व या पर्यवेक्षण में, आमतौर पर एक फसल के उत्पादन के लिए, जो विक्रय के लिए एक वाणिज्यिक वस्तु थी, बागानों का निर्माण किया गया। ये उत्तरी अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में सबसे पहले विकसित हुए, उन बस्तियों में जिन्हें उपनिवेश के नाम से जाना गया और जिनमें श्रम के अभाव को दास श्रम का उपयोग करके पूरा किया गया था। ये बागान इन उपनिवेशों की अर्थव्यवस्था की बुनियाद थे।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक, वे पहले से ही ब्राजील, केरेबियन क्षेत्र, उत्तर और दक्षिणी अमेरिका में दिखाई पड़ रहे थे और अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में भारत (चाय, उदाहरण के लिए), सहित दुनिया के अन्य भागों में भी। हालांकि वे अठारहवीं शताब्दी से, उत्तरी अमेरिका को छोड़कर जहाँ पहले से ही तंबाकू, कपास और इस तरह की अन्य वस्तुएँ उगाई जाती थी, एक प्रमुख विशेषता बन गये थे। यह इस तरह के जोखिम भरे कामों के विकास का एक अनुमान देता है। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के आयरिश विद्रोह के बाद आयरलैंड में भी बागान शुरू किये गये थे।

ये बागान या तो गिरमिटया श्रम या दास श्रम के माध्यम से चलाए जाते थे, आमतौर पर जहाँ गिरमिटया श्रम के माध्यम से महँगा था वहाँ दास श्रम द्वारा उत्तरी अमेरिका और पश्चिमी गोलार्द्ध में दासों को बागानों के इतिहास में काफी पहले शुरू कर दिया गया था। पूर्वी गोलार्द्ध के कई उपनिवेशों में गिरमिटया श्रम लाभदायक रहा।

2.7 दासता और दासत्व व्यवस्थाएँ

दासता और दास श्रम यूरोप के विस्तार और विश्व अर्थव्यवस्था के विकास के लिए अभिन्न थे। यूरोपीय और अफ्रीकी दोनों व्यापारियों ने इस उद्यम में भागीदारी की जिसने दासों को वस्तु बना दिया अर्थात् बिक्री की वस्तु। गुलामों ने वस्तु बनकर और अपने श्रम की जब्ती के माध्यम से अधिशेष निर्माताओं के रूप में, बागानों में, घरेलू श्रम के रूप में और कई अन्य तरीकों से अर्थव्यवस्थाओं के विस्तृत वाणिज्यीकरण में योगदान दिया। उनके काम की परिस्थितियाँ अमानवीय थी, यह एक ऐसा तथ्य है जो सर्वविदित है लेकिन उनके माध्यम से अर्जित मुनाफे के विशाल पैमाने की जाँच और आकलन केवल पिछले कुछ दशकों के शोध द्वारा ही किया गया है।

सोलहवीं शताब्दी से ही स्पेनवासियों ने अमेरिकी भारतीयों के विकल्प के लिए अफ्रीकी गुलामों का आयात करना शुरू कर दिया था और चीनी, तंबाकू और बाद में कपास के व्यापार की वस्तु के रूप में महत्व बढ़ने से दास व्यापार में वृद्धि हुई और सभी यूरोपीय शक्तियाँ, व्यापारी और बन्दरगाह इसमें शामिल थेः स्पेनिश, पुर्तगाली, डेन, डच और अंग्रेज। सबसे पहले के दास घोषित अपराधी थे, जिन्हें दूर-दराज के इलाकों में श्रम के लिए अपनाया गया।

अफ्रीका से गुलामों की पहली खेप वेस्टइंडीज के चाय बागानों के लिए 1503 की थी। इंग्लैंड और फ्रांस दोनों ने यहाँ प्रतिस्पर्धा की और वेस्टइंडीज इन दोनों देशों के व्यापार के लिए महत्वपूर्ण था। 1680 और 1786 के बीच सभी बिट्रिश उपनिवेशों में दासों का कुल आयात 20 लाख से अधिक होने का अनुमान है।

2.8 बैंकिंग और वित्त

हालांकि मध्ययुगीन काल से ही साख का व्यवहार अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रचलित था और सोलहवीं शताब्दी में जमा बैंक भी प्रचलित थे, लेकिन यह सत्रहवीं शताब्दी में था कि बैंकिंग और वित्त एक अच्छी तरह से विकसित व्यवसाय बन गया। नीदरलैंड इसमें अग्रणी था। एम्सटर्डम के विनिमय बैंक की स्थापना 1609 में हुई थी और यह 'बाल्टीक, भूमध्यसागर या हिन्द महासागर और चीन सागर में व्यापार करने वाले व्यापारियों के साख लेन-देन के एक विशाल नेटवर्क का केन्द्र बन गया।' इंग्लैंड सहित अन्य शहरों और देशों ने भी बैंक स्थापित किये। 1694 में स्थापित बैंक ऑफ इंग्लैंड अठारहवीं शताब्दी के दौरान बैंक ऑफ एम्सटर्डम की प्रतिद्वन्द्वी होने में समक्ष था। ये सबसे महत्वपूर्ण सरकारी समर्थित बैंक थे, हालांकि कई वाणिज्यिक निजी बैंक भी स्थापित किये गये थे (कोएनिग्स बर्गर, पृ. 179-180 देखें)। संयुक्त पूंजी कम्पनी संगठन का सबसे स्वीकार्य रूप बन गया। कम्पनी के शेयरों की सट्टेबाजी और खरीद शुरू हुई। इस प्रकार, सत्रहवीं शताब्दी उन संरचनात्मक उपकरणों को विकसित करने में महत्वपूर्ण थी जो पूंजी प्रबन्धन की कसौटी बन गए थे।

2.9 व्यापारिक पूंजी

हालांकि अधिकांश इतिहासकार सामंतवाद के अन्त को गति देने में वाणिज्यवाद और इसकी नीतियों के सामान्य प्रभाव के बारे में सहमत हैं, लेकिन व्यापारियों और समुद्र पार व्यापार ने किस हद तक औद्योगिक पूंजीवाद के लिए संक्रमण का निर्माण किया होगा, उस पर असहमति है। प्रमुख बहस उन लोगों के बीच है, जो बाजारों की भूमिका पर जोर देते हैं और अन्य जो तर्क देते हैं कि संक्रमण में महत्वपूर्ण कारक

यूरोपीय शक्तियों की अर्थव्यवस्थाओं के भीतर आर्थिक और सामाजिक सम्बंधों का परिवर्तन था।

सामान्य तौर पर, इस अवधि ने व्यापारियों के हाथों में पूंजी के संचय और राज्य के राजकोष में राजस्व का योगदान दिया। इस संक्षिप्त पूंजी का एक बड़ा भाग व्यापार और वाणिज्य से मुनाफे बढ़ाने के लिए पुनर्निवेशित किया गया था। दूसरे शब्दों में यह संचारी पूंजी बनी रही और अभी भी विनिर्माण अर्थव्यवस्था के दायरे से बाहर थी।

लेकिन पहली औद्योगिक क्रांति के लिए तैयार इस अवधि की शुरुआत और अन्त के बीच एक विशिष्ट अन्तर है। हमने पहले ही बागानों में निवेश की बात की है जिसने अर्थव्यवस्थाओं की संरचना और बाजार के लिए फसलों के उत्पादन के तरीके को बदल दिया। औपनिवेशिक अर्थव्यवस्थाओं से धन की निकासी का एक बड़ा हिस्सा यूरोप में अर्थव्यवस्थाओं का स्वरूप बदलने में इस्तेमाल किया गया। यह प्राथमिक संचय का एक रूप था जिसने यूरोप में विकसित होते विनिर्माण उद्योगों में, या खनन में या छोटे बाजार के लिए उत्पादक खाने की व्यवस्था में रूपान्तरण करके भारी मात्रा में निवेश किया। व्यापारियों द्वारा कच्चा माल प्रदान करने और तैयार उत्पादों पर नियन्त्रण स्थापित करने के हस्तक्षेप ने इस छोटी अर्थव्यवस्था के समीकरणों को राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के रूप में बदल दिया। कुछ यूरोपीय देशों में जिसे व्यापारिक पूंजीवाद और औद्योगिक पूंजीवाद कहा जा सकता है, उनके समय के सन्दर्भ में एक व्यापक अन्तर था। अन्य देशों में यह अन्तर बहुत कम था और इन सभी देशों में विनिर्माण प्रक्रिया के भीतर अन्य रास्ते भी थे जिनसे और अधिक निवेश के लिए अधिशेष आया। इन सभी मामलों में बाजारों की समस्या, श्रम की समस्या और छोटे उत्पादकों को बेदखली पूर्ण पूंजीवादी व्यवस्था के उभरने से पहले होनी थी। वाणिज्यवाद या व्यापारिक पूंजीवाद, विशेष रूप से अनुकूल व्यापार के संतुलन और गैर-यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं के औपनिवेशीकरण पर जोर देने की केन्द्रीयता में, एक महत्वपूर्ण कारक था। उत्तम मुनाफे इसको स्पष्ट करते हैं। यह इस बात पर ध्यान दिये बिना है कि इसे व्यापारिक पूंजीवाद की स्वतंत्र स्थिति या संक्रमणकालीन अवधि दी जाए जिसे उन नीतियों के पक्ष में समाप्त करने की आवश्यकता थी; जो और अधिक मुनाफों और एकाधिकार को खत्म करने के पक्ष में थी जो मुक्त व्यापार के लिए एक बाधा बन गई थी और विश्व अर्थव्यवस्था और राष्ट्रों के भीतर इसकी संरचनाओं में एक नया चरण थी।

बोध प्रश्न 2

1) सत्रहवीं शताब्दी के अन्त और अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोपीय विस्तार की प्रकृति पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) यूरोप से शेष विश्व के अन्य भागों में प्रवासन और बस्ती बसाने के अलग-अलग प्रारूपों पर एक नोट लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2.10 सारांश

अर्थव्यवस्था में, जैसा कि राज्य व्यवस्था में, सत्रहवीं शताब्दी और अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध एक विशिष्ट अवधि की निर्मित करता है। यह एक ऐसी अवधि थी जब व्यापार ने यूरोपीय अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन में मदद की। विश्व-अर्थव्यवस्था का तेज विकास इसके हिस्सों की एकता के साथ-साथ प्रतियोगिता पर भी आधारित था, जो विकासशील पूंजीवाद की एक कसौटी थी। इस अवधि में चुंगीयों और स्थानीय करों का विघटन हुआ, जो अन्त की मध्ययुगीन अर्थव्यवस्थाओं की विशेषता थी और सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक जीवित रही। इसे उन प्रणालियों के साथ प्रतिस्थापित किया गया जिन्होंने राष्ट्रों के भीतर एकीकरण सुनिश्चित किया और जो राजाओं के लिए राजस्व सुनिश्चित करते थे। यह एकाधिकारों और प्रतियोगिता, राज्य विनियमन और लूट की स्वतन्त्रता से परिलक्षित होती है। इसने आधुनिक उपनिवेशवाद और उसके उपकरणों के जन्म को देखा। इसने औद्योगिक पूंजीवाद का मार्ग प्रशस्त किया और यूरोपीय और गैर-यूरोपीय दुनिया के बीच संतुलन को बदल दिया।

2.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 2.2 और उपभाग 2.2.1 को अपने उत्तर का आधार बनाएँ।

2) उपभाग 2.3.1 और 2.3.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 2.4 देखें।

2) भाग 2.5 देखें।

इकाई 3 धर्म, विविधता और असहमति*

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 धर्मसुधार और प्रति-धर्मसुधार

3.2.1 प्रोटेस्टेंट सुधार

3.2.2 प्रति-सुधार

3.3 यूरोपीय महाद्वीप में भिन्न मतावलंबी और गैर-अनुरूपतावादी

3.4 इंग्लैंड में मूलगामी धर्मसुधार

3.5 धार्मिक विविधता और धार्मिक सहिष्णुता

3.6 सारांश

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इनके बारे में जान पायेंगे :

- सोलहवीं शताब्दी में प्रोटेस्टेंट सुधार के मद्देनजर यूरोप की धार्मिक स्थिति;
- कई धार्मिक संप्रदायों का प्रसार जिसने धर्म, समाज और राजनीति के बारे में नये अर्थों को जन्म दिया; और
- धर्म और समाज में इसकी भूमिका के बारे में कुछ आधुनिक विचारों के विषय में इनकी भूमिका।

3.1 प्रस्तावना

प्रारंभिक सोलहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप धार्मिक संघर्ष की श्रृंखलाओं में घिरा था, जिसमें विभिन्न प्रकार के प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक दोनों अपनी-अपनी धार्मिक वैधता को साबित करने की कोशिश कर रहे थे। इसके कारण दीर्घकालीन और विनाशकारी तीस वर्षीय युद्ध (1618-48) का जन्म हुआ जिसमें धार्मिक विभाजन के दोनों पक्षों में अधिकांश यूरोप के देश शामिल होते हैं। हालांकि यह अवधि धार्मिक अर्थों में भी नवीन थी। पूरे यूरोप में बड़ी संख्या में धार्मिक संप्रदाय उभरकर सामने आए जिन्होंने ऐसे विचार सामने रखे जिन्हें स्थापित धर्मों के अन्तर्गत समायोजित नहीं किया जा सकता था। इस अद्‌भुत धार्मिक उफान को 'मूलगामी धर्म सुधार' कहा गया है क्योंकि इनमें से अधिकांश सम्प्रदायों ने प्रोटेस्टेंट सुधार से अपनी प्रारंभिक प्रेरणा प्राप्त की थी। इस इकाई में हम इन विचारों और आंदोलनों के बारे में विचार-विमर्श करने जा रहे हैं।

* इकाई लेखक : प्रो. शशिभूषण उपाध्याय

3.2 धर्मसुधार और प्रति-धर्मसुधार

यूरोप में धर्म का विकास संबंधी ग्राफ सोलहवीं शताब्दी में रोमन कैथोलिक चर्च की स्थापित रूढ़िवादिता के विरुद्ध प्रोटेस्टेंट विद्रोह के कारण बुरी तरह अस्त-व्यस्त हो गया था। सिद्धांतों और दैनिक अनुष्ठानों के स्तरों पर प्रोटेस्टेंट सुधार ने मौलिक परिवर्तन लाने की कोशिश की। अपनी तरफ से कैथोलिकवाद ने इसका उत्तर देने के लिए एक सुधार प्रक्रिया शुरू की जो आंतरिक और अपेक्षाकृत नियंत्रित थी। कैथोलिक शिक्षण की सामग्री और स्रोतों को स्वयं कैथोलिक धार्मिक नेताओं की पहल पर शुद्ध किये जाने की कोशिश की गई।

3.2.1 प्रोटेस्टेंट सुधार

प्रारंभिक आधुनिक यूरोप में सबसे बड़ी धार्मिक असहमति को 31 अक्तूबर 1517 को मार्टिन लूथर द्वारा शुरू किया गया था, जब उन्होंने दंड मोचन (इंडलजेंसीज) की चर्च द्वारा बिक्री के मुद्दे पर सवाल उठाया और जर्मनी में वीटेनबर्ग के चर्च की दीवार पर अपने 'दंड मोचन की सत्ता और प्रभावकारिता पर 95 थीसिज या वाद-विवाद' चिपका दिये थे। उन्होंने अपने विचारों को त्यागने से इंकार कर दिया और वे रोम के पोप के खिलाफ खड़े हो गये। 1520 में लूथर ने सुधार के बारे में और भी उग्र विचारों को सामने रखते हुए तीन आलेख प्रकाशित किये। कैथोलिक चर्च के विरोध में, उन्होंने कहा कि विश्वास, यदि अकेली चीज नहीं थी, तब भी सबसे महत्वपूर्ण थी जो आत्मा की रक्षा कर सकती थी। रोमन कैथालिक चर्च द्वारा सुझाए गए सात संस्कारों में से लूथर ने केवल दो बपतिस्मा और पवित्र कम्यूनियन (सहभागिता) को ही बनाए रखा। उसने तपस्या, मठवासी जीवन, ब्रह्मचर्य जीवन गरीबी और आज्ञाकारिता जिनको रोम द्वारा मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रचारित किया जाता था, उनको अस्वीकार कर दिया। इसके बजाए, उन्होंने केवल अकेले विश्वास पर ध्यान केन्द्रित किया और वह मानते थे कि यही पापी को बचाने के लिए पर्याप्त है। इस नये सुधार आन्दोलन ने पादरियों को अपने पूजा संबंधी कर्त्तव्यों में भाग लेने के अलावा विवाह करने और पारिवारिक जीवन जीने की भी अनुमति दी। इस कदम से पुजारी और सामान्य लोगों के बीच का अन्तर समाप्त हो गया और इससे 'सभी विश्वासियों की पुरोहिताई' का मार्ग प्रशस्त हुआ। पोप की सत्ता को चुनौती, पादरियों की मध्यस्थता को अस्वीकृति और सामान्य विश्वासियों को व्याख्या करने का अधिकार, मूलगामी असहमति के रूप थे जिन्हें धर्म सुधार ने शुरू किया।

लूथर ने राजकुमारों और आम जनता से रोम के पोप के नियंत्रण से मुक्ति के अपने प्रयास में समर्थन देने की अपील की और उनसे अपने क्षेत्रों के चर्चों को सुधारने का आह्वान किया। उन्हें मध्य यूरोप में पादरी वर्ग, सामान्य लोगों और राजकुमारों के बीच अपने विचारों के लिए अनेक अनुयायी प्राप्त हुए। प्रोटेस्टेंट सुधार अब कई गैर-जर्मन क्षेत्रों में फैलने लगा और उसने धार्मिक और राजनैतिक प्रतिष्ठानों के लिए खतरा पैदा किया। यूरोप के अनेक क्षेत्रों में काफी लोगों ने इन विचारों को अपनाना शुरू कर दिया और कुछ राजकुमार प्रोटेस्टेंटवाद में धर्मान्तरित हो गये। 1524 में कुछ राज्यों के बीच पहली प्रोटेस्टेंट लीगों का गठन किया गया था। इन राज्यों में सरकारें कैथोलिक धर्म के विरुद्ध हो गईं। भिक्षुणी मठों और मठों को खत्म कर दिया गया और उन्हें स्कूल और अस्पतालों में बदल दिया गया।

स्विटजरलैंड में प्रोटेस्टेंटवाद को शुरू में हुल्डरिख ज्वींगली (1484-1531) द्वारा प्रचारित किया गया जिसनें लूथर की तरह सिर्फ विश्वास के माध्यम से मुक्ति की प्राप्ति का प्रचार किया। उसने इस बात पर भी जोर दिया कि केवल धार्मिक ग्रन्थों को धार्मिक गतिविधियों का आधार बनाया जाना चाहिए। कुछ मामलों में, ज्वींगली परंपरा को तोड़ने में लूथर से ज्यादा आक्रामक हो गये। और उनका यकीन था कि गरीब भगवान की वास्तविक छवि थे। साथ ही उनके पवित्र सहभागिता के विचार भी ज्यादा मूलगामी थे। यह प्रोटेस्टेंटवाद के भीतर दूसरी सबसे महत्वपूर्ण प्रवृत्ति थी।

प्रोटेस्टेंट सुधार के भीतर तीसरी सबसे महत्वपूर्ण धारा केल्विनवाद थी जो 1540 के दशक में उभरी। जीन केल्विन (1509-1564) फ्रांस में धर्म-सुधार के नेता के रूप में सक्रिय हो गये। बाद में वह अपनी मातृभूमि में उत्पीड़न से बचने के लिए जिनेवा चले गये। लूथर की तरह केल्विन ने प्रायश्चित के संस्कार की कड़ी आलोचना की, लेकिन लूथर के विपरीत मुक्ति के मार्ग के रूप में विश्वास पर जोर नहीं दिया बल्कि ईश्वर की इच्छा के आज्ञा पालन पर जोर दिया। अपने आलेख, *इंस्टीटयूट्स ऑफ द क्रिश्चियन रिलीजन,* में केल्विन ने पूर्व-निर्धारणवाद की अपनी प्रसिद्ध धारणा को आगे बढ़ाया। उनके अनुसार, कुछ व्यक्तियों को भगवान ने मुक्ति के लिए चुना था जबकि बहुसंख्यक अभिशप्त थे। केल्विन ने गरीबी के बारे में व्यापक ईसाई मान्यताओं को भी खारिज कर दिया। उन्होंने कहा कि समुदाय की भलाई के लिए दौलत का संचय बुरा नहीं था। हालांकि, दौलत के साथ जीवन संयमी होना चाहिए। इस तरह के विचारों के साथ, केल्विनवाद ने प्रोटेस्टेंटवाद में एक नई धारा का प्रतिनिधित्व किया जिसे बाद में 'प्रोटेस्टेंट नैतिकता' के नाम से जाना जाने लगा। केल्विनवाद यूरोप के अनेक क्षेत्रों में फैल गया और विशेष रूप से स्विटजरलैंड, फ्रांस, नीदरलैंड, स्कॉटलैंड और इंग्लैंड में काफी प्रभावशाली हो गया। विचारों और अपने प्रभाव के रूप में अपने महत्व के कारण केल्विनवाद को 'द्वितीय धर्म सुधार' भी कहा जाता है।

3.2.2 प्रति-सुधार

अपनी सत्ता के लिए एक गंभीर खतरे का सामना करते हुए, कैथोलिक चर्च ने प्रोटेस्टेंटवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप स्वयं को भीतर से सुधार करने की कोशिश की। 1545 में ट्रेन्ट की परिषद् बुलाई गई जिसमें प्रोटेस्टेंट विचारों को विधर्म और अभिशाप के रूप में मानते हुए पूरी तरह से खारिज करके सुलह की संभावना को समाप्त कर दिया और इसने पादरियों के विवाह के विचार को भी अस्वीकार कर दिया। इसने सातों पवित्र संस्कारों, यूखारिस्ट, पोप और बिशपों की सत्ता, नरक (पाप मोचन स्थान) और दण्ड मोचन की शक्ति में विश्वास की फिर से पुष्टि की।

जेजुइटस् के गठन ने प्रोटेस्टेंट सुधार के प्रति सबसे आक्रामक प्रतिक्रिया पेश की। इस समूह के संस्थापक एक स्पेनिश कुलीन व्यक्ति इग्नेशियस ऑफ लोयोला (1491-1556) थे जो 'आध्यात्मिक धर्मान्तरण' के माध्यम से पूरे यूरोप में कैथोलिक रूढ़िवादिता को पुनर्स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने 1540 में सोसाइटी ऑफ जीसस की स्थापना की जिसे पोप द्वारा अधिकारिक मंजूरी दी गई। जेजुइट्स को कठोर प्रशिक्षण दिया जाता था और प्रति-सुधार के लिए वे आक्रामक धर्म-योद्धा बन गये और उनकी संख्या बढ़ी। उन्होंने पौलेंड को पुनः कैथोलिक धर्म में धर्मान्तरित करने में और ऑस्ट्रिया और जर्मन भाषी क्षेत्रों में कैथोलिक प्रति-सुधार में बहुत योगदान दिया था। वे दुनिया के विभिन्न हिस्सों में प्रचार करने के लिए भी गये।

कैथोलिकवाद और प्रोटेस्टेंटवाद के प्रति निष्ठा रखने वाले राज्यों के बीच बढ़ते तनावों को 1555 में ऑग्सबर्ग की शान्ति द्वारा कम किया गया। जिसमें यह समझौता रखा गया कि पवित्र रोमन साम्राज्य से सम्बन्धित राज्यों में शासक का धर्म लोगों का धर्म होगा और जो इसका अनुपालन नहीं करना चाहते थे, वे अन्य क्षेत्रों में प्रवासन कर सकते थे। 1600 में यूरोप में कैथोलिक के रूप में पहचाने जाने वाले क्षेत्रों में लगभग 42 मिलियन लोग थे, लगभग 28 मिलियन लोग किसी ना किसी रूप में प्रोटेस्टेंट और 28 मिलियन ऑर्थोडॉक्स चर्चों के क्षेत्र में थे। इस अवधि के दौरान एक विशेष चर्च के प्रति निष्ठा का अर्थ शासन करने वाले सम्राट के प्रति निष्ठा भी थी।

हालांकि 1555 में कुछ शान्ति हासिल हुई लेकिन दो व्यापक ईसाई धर्मों के बीच तनाव लगातार बना रहा। लोगों और राजकुमारों पर प्रभाव के लिए उनका क्रमशः दबाव अक्सर उन्हें संघर्ष में ले आता था। कई छोटे पैमाने के टकराव, कभी-कभी बहुत क्रूरता के साथ, बीच-बीच में होते रहे। राजनैतिक सत्ताधारियों की महत्वाकाक्षांओं ने तनाव को तीक्ष्ण बनाने में भूमिका निभाई। 1618 में ये लंबे समय से चला आ रहा तनाव एक लंबे युद्ध 30 वर्षीय युद्ध (1618-48) के रूप में भड़क गया जिसमें अधिकांश यूरोप शामिल था और जो बहुत विनाशकारी साबित हुआ। अन्त में, वेस्टफेलिया की सन्धि (1648) ने एक समझौता स्थापित किया जिससे धार्मिक और राजनैतिक प्रभाव फ्रांसीसी क्रांति तक भौगोलिक रूप से सीमांकित हो गये।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक, धर्म, राज्य और आबादी के बीच के सम्बन्ध का व्यापक प्रारूप स्थापित हो गया था। इटली, स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस, आयरलैंड, बेल्जियम और पूर्वी यूरोप का काफी हिस्सा दृढ़तापूर्वक कैथोलिक था। इंग्लैंड, स्कॉटलैंड, हालैंड, जर्मनी और स्कैंडिनेवियन देश बड़े पैमाने पर विभिन्न संप्रदायों के प्रोटेस्टेंट थे। रूस, पूर्वी यूरोप के भाग और बाल्कन देशों के कुछ भागों में ऑर्थोडोक्स चर्च का प्रभाव था।

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक संस्थागत प्रोटेस्टेंटवाद भी कैथोलिक धर्म की तरह उतनी ही सैद्धान्तिक कठोरता के रूप में व्यक्त हुआ। लूथरवाद अब विशेष राजनैतिक शक्तियों के साथ घनिष्ट रूप से पहचाना जाने लगा था। यह अपने दृष्टिकोण में काफी संकीर्ण हो गया और इसने केल्विनवाद जैसे अन्य प्रोटेस्टेंट सम्प्रदायों के खिलाफ भेदभाव किया। यहाँ तक कि कैल्विनवाद ने भी निरकुंशता और अत्याचारी रूढ़िवाद के प्रति समान रूप से अपना मजबूत झुकाव दर्शाया। कैल्विनवादी जिनेवा धार्मिक कठोरता को बढ़ाने और राजनैतिक सत्ता की अधीनता को स्वीकारने का एक उदाहरण था।

इस अवधि में प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक दोनों द्वारा, लोगों में जिसे अन्धविश्वास के रूप में वर्णित किया जाता था, उससे दूर हटाने के प्रयास हुए। वास्तव में धार्मिक और बौद्धिक आभिजात्य वर्ग द्वारा मूल ईसाई धर्म और इसके लोकप्रिय 'अन्धविश्वासी' संस्करणों के बीच अन्तर करने के प्रयास हुए और इसके साथ-साथ उनके धार्मिक विश्वास प्रणालियों की तथाकथित पापों के बारे में उन्हें समझाने के गहन प्रयास भी किए गए। यूरोप में ईसाई धर्म के इन दोनों प्रमुख रूपों ने लोगों को उनकी मान्यताओं और व्यवहारों की समान व्यवस्था के बारे में शिक्षित करने के लिए बड़े पैमाने पर शैक्षणिक उपक्रम शुरू किए। इस प्रकार अब तक लोकप्रिय धार्मिक संस्कृति, जो विशेष रूप से जादू-टोने से संबंधित थी, उसके बारे में कैथोलिक और प्रोटेस्टेंटों ने अपने अन्यथा तीव्र सैद्धान्तिक मतभेदों के बावजूद, एक साझा मोर्चा प्रस्तुत किया।

यद्यपि विचारों और सम्बन्धता की बहुलता कैथोलिकों के बीच भी उत्तर-धर्मसुधार अवधि में उभरी परन्तु प्रोटेस्टेंटों की बीच यह विचारों और संगठनों की विविधता चौंका देने वाली थी। कई सम्प्रदाय थे जो धर्म-सुधार की एक शताब्दी के भीतर उभरे थे और सबके ईसाई धर्म और मुक्ति के तरीकों के बारे में अपने-अपने विचार थे। अगले भागों में हम इन सुधारवादी सम्प्रदायों की चर्चा करेंगे।

3.3 यूरोपीय महाद्वीप में भिन्न मतावलंबी और गैर-अनुरूपतावादी

हालांकि अधिकांश यूरोपीय लोग मुख्यधारा के चर्चों जैसे कैथोलिक, लूथरवादी या कैल्विनवादी से जुड़ें हुए थे परन्तु हाशिए पर कई मूलगामी सुधारवादी समूह उभरे। प्रोटेस्टेंट विद्रोह से प्रेरित, लेकिन प्रोटेस्टेंटवाद की सीमाओं से अवगत इन हाशिए के समूहों ने अपनी विचारधारा को आगे बढ़ाने और अपने स्वयं के चर्चों को स्थापित करने का प्रयास किया। ये धार्मिक आन्दोलन, मध्यकालीन विधर्मी सम्प्रदायों से व्यक्तिगत पसंद और चर्च के साथ स्वैच्छिक सहयोग पर जोर देने के कारण अलग थे। उन्होंने शिशु बपतिस्मा को अस्वीकार कर दिया और वयस्क बपतिस्मा और आत्म-चयन को धार्मिक संबंधता के लिए स्वीकार किया। यह मौलिक रूप से आनुवंशिक या लादी गई धार्मिक संबंधता से अलग था। लेकिन यह आन्दोलन उत्तर-प्रबोधनकाल के स्वयं चुनाव करने वाले उदारवादी चर्चों से इस रूप में भिन्न थे कि वे किसी प्रकार के सहस्राब्दवाद में विश्वास रखते थे और धार्मिक विश्वासों के लिए अपने जीवन का बलिदान करने की इच्छा भी रखते थे। इनमें से कई मूलगामी संप्रदाय भविष्य में सर्वनाश से संबंधित विश्वास रखते थे। जिसका अर्थ था कि दुनिया का अन्त निकट था और जिसमें बुराई की शक्तियों पर ईश्वरीय शक्तियों की विजय होगी।

ये छोटे या अपेक्षाकृत बड़े समूह जो सामान्य रूप से ईसाई धर्म को मानते थे लेकिन किसी भी बड़े स्थापित ईसाई चर्च से अलग-थलग हो सकते थे उन्हें भिन्न-मतावलंबी और गैर-अनुरूपतावादी कहा जाता है। भिन्न-मतावलबंन का अर्थ रूढ़िवादिता के साथ सैद्धान्तिक टकराव था जबकि गैर-अनुरूपतावाद में रूढ़िवादी व्यवहार से विचलन था। इस तरह के समूहों का स्थापित चर्चों के द्वारा धार्मिक विकृतों के रूप में तिरस्कार किया जाता था। स्पष्ट रूप से ऐसे शब्द सापेक्ष हैं क्योंकि यह राजकीय चर्चों द्वारा निर्धारित मानक था जो विचलन के मुद्दे को तय करता था। हालांकि इन समूहों की निरंतर प्रबल धार्मिक गतिविधियों के परिणामस्वरूप यूरोप में विभिन्न आकारों के 'स्वतंत्र चर्च' स्थापित हुए।

1517 में लूथर के विद्रोह के बाद उभरने वाले उग्र सुधारवादी आंदोलनों में एक 'अनाबेपटिज्म' था जिसने ईसाई समुदाय को पूरी तरह से पुनर्निर्मित करने का प्रयास किया। ग्रीक भाषा में अनाबेपटिज्म का अर्थ है पुनर्बपतिस्मा। इसके अनुयायियों का मानना था कि वही व्यक्ति सच्चे ईसाई धर्म का पालन कर सकते हैं जो जानते हैं कि नैतिक दृष्टि से इसका क्या अर्थ है और वे अपने कर्त्तव्यों और दायित्वों को स्वीकार करने के लिए तैयार थे। चूंकि शिशुओं के लिए धर्म के निहितार्थ को समझना संभव नहीं था, केवल इच्छुक वयस्कों को बपतिस्मा के लिए अनुमति दी जानी चाहिए। यह 1520 के दशक के बाद से जर्मनी, स्विटजरलैंड और हालैंड में और 1540 के लगभग इटली में और 1565 में पौलैंड मे नजर आया। 1524 में अनाबेपटिस्टों ने शिशु बपतिस्मा के अभ्यास को अस्वीकार कर दिया और वयस्क बपतिस्मा पर जोर दिया।

1525 तक वे मुख्यधारा के प्रोटेस्टेंट चर्च से टूटकर अलग हो गये थे। एक स्वतंत्र और स्वैच्छिक चर्च का इनका विचार कैथोलिक वयवस्था के साथ-साथ एक राष्ट्रीय चर्च की प्रोटेस्टेंट अवधारणा के भी खिलाफ था। यूरोप में धार्मिक भिन्न-मतावलंबन के विकास में अनाबेपटिस्टों की भूमिका महत्वपूर्ण थी।

अनेक अनाबेपटिस्ट समूह थे जो विचारधारा और संगठन में एक समान नहीं थे। हालांकि उन्होंने संगठन के एक सामूहिक रूप की वकालत की क्योंकि वे जन्म या क्षेत्र की बजाए स्वैच्छिक सदस्यता में विश्वास करते थे। जर्मनी और स्विटजरलैंड के कुछ भागों में विभिन्न धार्मिक विचारकों द्वारा प्रेरित इन सम्प्रदायों ने कैथोलिक और प्रोटेस्टेंटवादी दोनों द्वारा व्यक्तियों के बजाए पूरे समुदाय पर जोर देने को अस्वीकृत कर दिया। अनाबेपटिस्टों का यह यकीन था कि वास्तविक धार्मिक अनुभव केवल पहले से ही दैवीय शक्ति द्वारा बचाए गए व्यक्तियों के हो सकते थे। इस प्रकार केवल वे जो पूरी तरह से पुनर्जीवित थे, वही वयस्क विश्वासी बपतिस्मा के अनुष्ठान के माध्यम से सुधारे गए समुदाय का हिस्सा बन सकते थे। अपने अत्यन्त मूलगामी विचारों के कारण अनाबेपटिस्टों को प्रोटेस्टेंट चर्च और राज्य दोनों के उत्पीड़न का सामना करना पड़ा। व्यापक अनाबेपटिस्ट आंदोलन के भीतर कई धाराएँ थी लेकिन दो समूह प्रमुख हो गये। पहला समूह मेन्नोनाइट्स का था जो मेन्नो साइमन के अनुयायी थे और शांतिवाद में विश्वास करते थे। और नीदरलैंड के दूर-दूराज के भागों में एकांतप्रिय समुदायों के रूप में एकत्र हुए थे। दूसरा समूह 'हटराइट्स' का था जो सामुदायिक जीवन में सभी संपत्ति के साझा करने के आधार पर जीते थे।

1534 में एक अनाबेपटिस्ट समूह ने जर्मनी के मूनस्टर शहर में चुनाव में जीत हासिल की और शहर में सरकार बनाई। यूरोप के विभिन्न भागों से अनाबेपटिस्ट इस विश्वास के तहत वहाँ पहुँचे कि यह नया जेरूसलेम था। मूनस्टर में अनाबेपटिस्ट सरकार ने कैथोलिक चर्च की सभी संपत्ति जब्त कर ली, निजी संपत्ति को समाप्त कर दिया, मुद्रा के उपयोग को प्रतिबंधित किया और वस्तु विनिमय की एक प्रणाली स्थापित की। जर्मनी में लूथरनवादी और कैथोलिक राजकुमार दोनों ने मिलकर जून 1535 में मूनस्टर पर आक्रमण किया और उनकी सरकार को कुचल दिया।

1524 में कई जर्मन भाषी क्षेत्रों में एक व्यापक किसान विद्रोह हुआ जिसमें अनेक अनाबेपटिस्टों द्वारा समर्थित बड़ी संख्या में किसान शामिल थे। विद्रोह के नेता थॉमस मुंजर (लगभग 1451-1525) थे जो एक पुजारी थे और जिन्होंने धार्मिक सुधार को सामाजिक क्रांति के साथ जोड़ा। उन्होंने कैथोलिक चर्च के साथ-साथ लूथर के खिलाफ भी दृढ़ता से बात की क्योंकि उनका मानना था कि दोनों मानवीय सत्ता के सामने नतमस्तक थे। दूसरी तरफ लूथर ने किसान विद्रोहियों की सबसे कठोर शब्दों में निंदा की और जर्मन राजकुमारों से उनके खिलाफ कड़ी कार्यवाही करने को कहा। 1525 के विद्रोह को कुचलने के लिए कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट दोनों प्रकार के पादरियों ने एक साथ हाथ मिलाया और राजनैतिक सत्ता के साथ मिलकर विद्रोह को कुचला जिसमें एक लाख से ज्यादा किसान मारे गये। मुंजर भी पकड़ लिया गया और बेरहमी से मार दिया गया।

एक अन्य संप्रदाय जिसने मौलिक रूप से स्थापित ईसाई धर्म पर सवाल उठाया था वह एंटी-ट्रिनीटेरियनिज्म था (बाद के यूनिटेरियनिज्म के समान) जिसने ट्रिनीटी के बारे में स्थापित चर्चों के मुख्य सिद्धांत को खारिज कर दिया और ईश्वर की एकमात्र महिमा पर जोर दिया। इसके अनुसार ईश्वरत्व एक एकता थी और इसमें पिता-पुत्र

और पवित्र आत्मा की ट्रिनीटी शामिल नहीं थी। ट्रिनीटी विरोधी विश्वास शुरू में इटली में पैदा हुआ लेकिन बाद में दमन के कारण पूर्वी यूरोप में स्थानांतरित हो गया। 1560 के दशक के दौरान उन्होंने पौलेंड में एक ट्रिनीटी विरोधी चर्च की स्थापना की। सत्रहवीं शताब्दी में यह सम्प्रदाय उत्तरी अमेरिका में पहुँच गया। ट्रांससिलवेनिया में, जो एक ऑटोमन संरक्षित राज्य था, एन्टी-ट्रेनिटेरियनिज्म भली-भाँति विकसित हुआ।

यूरोपीय महाद्वीप में नीदरलैंड मूलगामी प्रोटेस्टेंट और भिन्न मतावलंबी समूहों का मुख्य केन्द्र बन गया। वहाँ काफी 'रूढ़िवाद-विरोधी' साहित्य भी प्रकाशित हुआ जिसने यूरोप और अमेरिका के विभिन्न भागों में काफी लोगों और सम्प्रदायों को प्रभावित किया। इस तरह के लेखन से प्रभावित होने वाले भिन्न मतावलंबी आन्दोलनों में से एक जर्मनी में 'पुण्यशीलतावाद' (पायटिज्म) था जो लूथरवाद और केल्विनवाद दोनों का विरोधी था। पुण्यशीलतावादियों को धर्मशास्त्रीय पेचीदगीयों में कोई दिलचस्पी नहीं थी और भक्तिभाव से समर्पण के साथ एक सरल पंथ इसका लक्ष्य था। इसमें मजबूत रहस्यवादी प्रवृत्ति थी। यह अपने स्वयं के विश्वविद्यालय, अनाथालय, स्कूलों और छापेखाने के साथ सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में ब्रिन्डनबर्ग (जर्मनी) में फला-फूला।

जर्मनी में पुण्यशीलतावाद की उत्पत्ति 1604 और 1610 के बीच के समय में बताई गई है जब जोहान आरंट (1555-1621) ने अपनी रचना 'फोर बुक्स ऑफ ट्रू क्रिश्चियनिटी' प्रकाशित की। इसने पुण्यशीलतावाद की व्यापक वैचारिक रूपरेखा प्रदान की। हालांकि आमतौर पर पुण्यशीलतावाद का सक्रिय चरण फ्रेंकफर्ट के एक उपदेशक फिलिप जेकब स्पैनर (1635-1705) की गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। जब उन्होंने 1670 में 'सर्कल ऑफ द पायस' की स्थापना की और 1675 में अपना निबन्ध 'पिया डेजीडरिया' प्रकाशित किया। इस लेख ने लूथरवाद की उन प्रवृत्तियों की मूलगामी आलोचना की जिन्हें पुण्यशीलतावाद गलत मानता था विशेष रूप से उनमें व्यवहारिक और सक्रिय पुण्यशीलता का अभाव। इस समय के दौरान पुण्यशीलता को 'एक सामाजिक रूप से विवेकपूर्ण आन्दोंलन के रूप में संगठित किया गया था जो रूढ़िवादिता के विरुद्ध था और जिसने चर्च सम्बन्धी और धार्मिक सामुदायिक जीवन के नये रूप सामने लाए।' व्यवहारिक पुण्यशीलता के अपने विचार को प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने शिक्षा और स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय रूप से काम शुरू किया। उन्होंने व्यवहारिक पुण्यशीलता के सक्रिय विकास के माध्यम से आदर्श व्यक्ति बनाने का प्रयास किया। तपस्वी जीवन पर उनका जोर, मितव्ययिता और कड़ी मेहनत को प्रोत्साहन, विलासी जीवन का विरोध और राज्य विरोधी दृष्टिकोण उन्हें आधिकारिक लूथरनवादी प्रोटेस्टेंटवाद से पृथक करते थे। लूथरवादियों ने इस सम्प्रदाय के उपदेश का विरोध किया और 1789-90 के आसपास लूथरवादी रूढ़िवादिता और पुण्यशीलतावाद के बीच खुला टकराव हुआ।

क्वाइटिज्म (शान्तिवाद) पुण्यशीलतावाद की तरह ही धर्म का एक व्यक्तिवादी रूप था जो दृढ़तापूर्वक पादरी विरोधी था और जो रहस्यवाद की ओर अभिमुख था। इसके प्रवर्तक स्पेनिश पुजारी मिगुऐल मोलिनोस था, जिसे रोम और पेरिस में भी लोग जानते थे। अंत में उनको धर्म-न्यायाधिकरण द्वारा उत्पीड़ित किया गया। क्वाइटिज्म ने 'ईश्वर के प्रेम में सभी गतिविधियों का विनाश' का उपदेश दिया। एक और भिन्न मतावलंबी सम्प्रदाय जिसकी उपस्थिति फ्रांस, जर्मनी और नीदरलैंड में थी लेबड़िवाद था जिसकी स्थापना जीन द लेबडि (1610-1674) ने की थी। लेबडिवादियों के सामान्य प्रोटेस्टेंट

विचार थे लेकिन वे लिगों की समानता और संपति की सहभागिता में भी विश्वास करते थे।

सत्रहवीं शताब्दी के दौरान फ्रांस में एक और महत्वपूर्ण भिन्न मतावलम्बी सम्प्रदाय जानसेनवाद उभरा। इसका नाम इसके प्रवर्तक कॉरजेलियस जानसेन (1585-1638) के नाम पर रखा गया था जो एक धर्मशास्त्री थे। जानसेनवाद में केल्विनवाद और रहस्यवाद दोनों के संयुक्त तत्व थे। यह फ्रांस में प्रति-धर्मसुधार के संदर्भ में उभरा। यह फ्रांस और स्पेन में जेजुइट्स के खिलाफ खड़ा हुआ था। जेजुइट्स ने भी इस पर हमला किया और 1642 में रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा जानसेनवाद की निंदा की गई परन्तु जानसेनवाद जारी रहा और इसे फ्रांस के महत्वपूर्ण धर्मशास्त्रियों से समर्थन प्राप्त हुआ। यद्यपि जानसेनवादी कैथोलिक चर्च से वैधता प्राप्त करने के प्रयास करते रहे परन्तु उनके अनेक सिद्धांत प्रोटेस्टेंटवाद के करीब थे और उनकी अक्सर उनके दुश्मनों द्वारा छद्मवेश में प्रोटेस्टेंट कहकर निंदा की जाती रही। यह सच है कि बाइबल के प्रति उनका आदर, उनके धर्मशास्त्र का औचित्य और संतों के बरोक पंत के प्रति उनकी उदासीनता प्रोटेस्टेंट से मिलते-जुलते कुछ महत्वपूर्ण विचार थे। इंग्लैंड में मेथोडिज्म पर भी जानसेनवादी विचारों का प्रभाव था। इटली, ऑस्ट्रिया और नीदरलैंड में भी जानसेनवाद प्रभाव वाले महत्वपूर्ण क्षेत्र थे।

गैर-अनुरूपतावादी और भिन्न-मतावलंबी अनेक सम्प्रदायों और समूहों में विभाजित थे, लेकिन इन सभी ने मिलकर यूरोपीय आबादी में एक अल्पसंख्यक का गठन किया। फिर भी उन्होंने आधुनिकता की प्रक्रिया पर बहुत प्रभाव डाला। यूरोप में अपनी उत्पत्ति के बावजूद ये भिन्न मतावलंबी ईसाई सम्प्रदाय दुनिया के विभिन्न भागों में प्रभावशाली थे। स्थापित चर्चों के खिलाफ अपने संघर्ष की प्रक्रिया में व्यक्तिगत पसंद, वयस्क बपतिस्मा, एक चर्च की स्वैच्छिक सदस्यता, पारस्परिक दायित्व, लोकतान्त्रिक निर्णय लेना और बहुलतावाद इन भिन्न मतावलंबियों द्वारा विकसित किये गये महत्वपूर्ण गुण थे।

अठारहवीं शताब्दी में आमतौर पर पिछली शताब्दियों में कई सम्प्रदायों द्वारा प्रदर्शित उग्रता में गिरावट आई थी। प्रबोधन काल और अन्त में फ्रांसीसी क्रांति ने सम्प्रदायों को अपेक्षाकृत पारंपरिक रूपों की तरफ मोड़कर उन्हें धार्मिक रूप से अधिक रक्षात्मक बना दिया। 18वीं शताब्दी के दौरान धर्म-निरपेक्षता और पुण्यशीलता के निजीकरण की ओर भी रुझान था। चर्चों में जाने वाले लोगों की संख्या में गिरावट आई और मृत्यु के मामले में चर्चों को समर्पित वसीयतों की संख्या में भी उल्लेखनीय गिरावट आई। धार्मिक मुद्दों के प्रति भी उदासीनता बढ़ी। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक, धार्मिक मुद्दों पर चर्चा करने वाली पुस्तकों की संख्या में उल्लेखनीय गिरावट आई। कई यूरोपीय राज्यों ने भी अब धार्मिक प्रतिष्ठानों से दूरी बनाना शुरू कर दिया और राज्य व्यवस्था की धर्म-निरपेक्षता को प्रोत्साहित किया।

बोध प्रश्न 1

1) धर्मसुधार से आप क्या समझते हैं? इसके भीतर प्रमुख रुझानों पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) यूरोपीय महाद्वीप में भिन्न-मतावलंबी और गैर-अनुरूपतावादी रुझानों पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3.4 इंग्लैंड में मूलगामी धर्मसुधार

इंग्लैंड में 1534 में पोप क्लेमेंट VII द्वारा इंग्लैंड के हेनरी VIII को अपनी पत्नी को तलाक देने की अनुमति देने से इन्कार करने के बाद वह रोम के कैथोलिक चर्च से अलग हो गये और उन्होंने इंग्लैंड में एक अलग चर्च की स्थापना की। चर्च ऑफ इंग्लैंड ने लूथरवादी सिद्धान्तों का पालन किया लेकिन व्यवहार में यह यूरोपीय महाद्वीप के सुधार किये गये चर्चों की तुलना में काफी रूढ़िवादी था। यह मतान्तर के प्रति बहुत कठोर था और 1530 के दशक के दौरान कई दर्जन लोगों को आग में जला दिया गया। हालांकि उसी समय बड़े पैमाने पर कैथोलिक मठों को तोड़ा गया और उनकी भूमियों का विक्रय किया गया।

सत्रहवीं शताब्दी के दौरान इंग्लैंड सुधारवादी प्रकार के विभिन्न आत्मविषयक विचारों के केन्द्र के रूप में उभरा। इस शताब्दी के दौरान इंग्लैंड की धार्मिक संस्कृति पूरी तरह से रूपांतरित हो गई। क्रिस्टोफर हिल के शब्दों में:

''1603 में सभी अंग्रेज पुरुष और स्त्रियों को राज्य चर्च का सदस्य माना जाता था, जिससे भिन्न मत रखना एक दण्डनीय अपराध था। विधर्मियों को अभी भी आग में जला दिया जाता था, जिस तरह संदिग्ध गद्दारों को यातना दी जाती थी। 1714 तक प्रोटेस्टेंट धर्म के अन्दर भिन्न मत रखने वालों को कानूनी रूप से सहन किया जाने लगा। चर्च अब और नहीं जला सकता था और राज्य अब यातना नहीं दे सकता था। मध्य युग के जीवन के सभी क्षेत्रों में शक्तिशाली चर्च अदालतें, इस शताब्दी में अपने सभी कार्यों को खो देती हैं। चार्ल्स I के तहत आर्कबिशप लॉड ने देश पर शाासन किया; (महारानी) ऐन के अधीन जब आखिरी बार एक बिशप को सरकारी कार्यालय में नियुक्त किया गया था तब यह सनसनी का कारण बना'' (हिल, 1990: 3)।

एंग्लीकन चर्च के सिद्धांत और प्रथाओं को प्यूरिटन (ईसाई धर्म का एक पंथ) ने चुनौती दी थी जो कैल्विनवाद से प्रभावित थे, विशेष रूप से इसके व्यक्तिगत पूर्व-निर्धारणवाद के सिद्धांत से। प्यूरिटनवाद का उद्देश्य बचे-खुचे कैथोलिक प्रभाव से इंग्लैंड के चर्च को शुद्ध करना था। उन्होंने व्यक्ति द्वारा धर्म-ग्रन्थों की स्वयं अपनी समझ, आध्यात्मिक समर्पण, अनुशासन और त्याग पर बहुत जोर दिया। प्यूरिटनवाद ने इंग्लैंड के चर्च की कार्यप्रणाली में राज्य से इसके सम्बन्ध पूरी तरह से विच्छेद करके एक प्रशासनिक क्रान्ति का आह्वान किया। इसने बिशप के पद को समाप्त करने, हाउस ऑफ लार्डस से उन्हें हटाने और चर्च अदालतों और डीन और चेप्टर की

समाप्ति की माँग की। प्यूरिटनवाद ने व्यक्ति की अखंडता, समुदाय की सेवा और सभी के लिए आध्यात्मिक समानता का उपदेश दिया। उन्होंने विस्तृत चर्च के पदानुक्रम और अनुष्ठानों का खंडन किया और उनका विश्वास था कि बाइबल का ईमानदार अध्ययन और व्यक्ति की अंतरात्मा की अखंडता भगवान की इच्छा को लागू करने के सबसे महत्वपूर्ण तरीके थे। उन्होंने व्यापक समुदाय के कल्याण के लिए अपने स्वयं के व्यवसाय में कठोर उत्पादक कार्यों पर भी जोर दिया। इसके अलावा उन्होंने संतों के दिनों में छुट्टियों की परंपरा को समाप्त करने का आह्वान किया ताकि लोगों को अपने उत्पादक कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए अधिक समय उपलब्ध हो सके।

1570 के दशक में कई प्यूरिटनों ने इंग्लैंड के चर्च से पृथक होने को प्रोत्साहित किया और अनेक स्थानों में अपनी स्वतंत्र धार्मिक सभाएँ स्थापित की। उनके खिलाफ दमन शुरू किया गया और 1582 में वे प्रवासन करके नीदरलैंड चले गये। उनके कुछ नेताओं जैसे कि रॉबर्ट ब्राउन (लगभग 1550-1633) और रॉबर्ट हेरिसन (लगभग 1545-1585) का मानना था कि वंशानुगत होने की बजाए, एक सच्चा चर्च विश्वासियों का एक स्वैच्छिक समुदाय होना चाहिए जो ईश्वर की आज्ञाओं का अनुपालन करे, उच्च नैतिक मूल्यों का समर्थन करे और बन्धुत्व में विश्वास करता हो।

हालांकि अधिकांश प्यूरिटन अभी भी इंग्लैंड के चर्च के अन्दर रहे और इसे अन्दर से सुधारने की कोशिश करते रहे फिर भी उन्हें 'गैर-अनुरूपतावादी के रूप में वर्णित किया गया क्योंकि उन्होंने चर्च के कुछ स्वीकृत व्यवहारों का पालन नहीं किया। उनके भीतर भी मूलगामी थे जिन्होंने स्थापित चर्चों को पूरी तरह से त्याग दिया था और उन्होंने चुने हुए विश्वासियों को 'इकट्ठा चर्चों' में संगठित किया। उनमें विखंडीकरण अक्सर होता रहा और अधिक से अधिक मूलगामी सम्प्रदायों का कम से कम संख्या में अनुयायियों के साथ निर्माण हुआ। उनमें से अधिकांश ने लौकिक सत्ता से दूरी बनाए रखने की कोशिश की। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में उन्हें अवसर मिला क्योंकि राज्य का विघटन होना प्रतीत हो रहा था और उसने इन सम्प्रदायों को संचालन की काफी स्वतन्त्रता प्रदान की। अंग्रेजी गृहयुद्ध (1642-51) के दौरान प्यूरिटन सम्प्रदायों का काफी विकास हुआ।

कुल मिलाकर प्यूरिटनवाद को इंग्लैंड में राज्य चर्च के भीतर सुधार और नवीनीकरण के आंदोलन के रूप में वर्णित किया जा सकता है। प्यूरिटनस ने 'बाइबल आधारित पुण्यशीलता' में अधिक विश्वास और मौलिक ईसाई धर्म की ओर वापसी में यकीन किया। राज्य चर्च के अनुयायियों की तुलना में उन्होंने कैथोलिकवाद से अपने को अधिक पृथक रूप में देखा। वास्तव में वे कैथोलिकवाद को एक धर्म के रूप में नहीं बल्कि पुरोहित निरकुंशता के रूप में मानते थे। मैक्स बैबर और अन्य लोगों द्वारा प्यूरिटनवाद को एक ऐसी विशिष्ट व्यवसायी नैतिकता के रूप में देखा जिसमें शारीरिक कार्य और तपस्वी और मितव्ययी जीवन पर जोर दिया गया था जो 'पूंजीवाद की भावना' उत्पन्न करता है।

अंग्रेजों के बीच एक और भिन्न-मतावलंबी सम्प्रदाय विकसित हुआ। जॉन स्मिथ (1554-1612) ने 1606 में एक स्वतंत्र मंडली का गठन किया जिसने स्थापित चर्चों से स्वयं के पृथक होने का दावा किया। दमन के बाद इस सम्प्रदाय के सदस्य 1608 में नीदरलैंड में स्थानांतरित हो गये। वे बेपटिस्ट थे जो स्वैच्छिक बपतिस्मा में विश्वास करते थे और उन्होंने एम्स्टर्डम में 1609 में औपचारिक रूप से स्वयं को वैसा घोषित किया। बेपटिज्म के धार्मिक सिद्धान्त इंग्लैंड के राज्य चर्च के लिए विध्वसंक थे। इसके

अलावा अगर लोग अपने स्वयं के चर्च को चुनने के लिए स्वतंत्र थे, तो राज्य चर्च को अनिवार्य रूप से दसमांश (जो कि आय का दस प्रतिशत था) का भुगतान पूरी तरह से अतार्किक था। इसलिए बेपटिस्ट और अन्य लोगों ने दसमांश की माँग को अस्वीकार कर दिया और गृहयुद्ध के दौरान उनमें से अनेकों ने इसका भुगतान करने से इन्कार कर दिया।

अब उत्पादक कार्य का सिद्धांत और सभी विश्वासियों की पुरोहितता को राज्य चर्च के पादरियों के लिए, खासकर 1640 के दशक के दौरान बढ़ा दिया गया था। यह तर्क दिया गया था कि पादरियों को अनिवार्य दसमांश पर नहीं बल्कि विश्वासियों के स्वैच्छिक योगदान पर निर्वाह करना चाहिए। यदि यह पर्याप्त नहीं था तो पुजारियों को भी दूसरों की तरह उत्पादक शारीरिक काम करना चाहिए। कई सम्प्रदायों का मानना था कि पुजारियों को सामूहिक मंडली द्वारा चुना जाना चाहिए और उनका स्वैच्छिक योगदान द्वारा भुगतान किया जाना चाहिए। उनमें से कुछ ने पुजारियों के अलग वर्ग की आवश्यकता से इंकार किया और दावा किया कि सामान्य व्यक्ति भी उपदेश दे सकता था। उन्होंने सभी मूलगामी प्रोटेस्टेंट सम्प्रदायों के लिए सहिष्णुता का समर्थन किया।

एक और महत्वपूर्ण धार्मिक आन्दोलन, अनुयायियों की संख्या के संदर्भ में, क्वेकरवाद था। यह जार्ज फॉक्स (1624-1691) द्वारा स्थापित किया गया था जो एक भ्रमणकारी उपदेशक थे और जो पहले बेपटिस्म के प्रभाव में आए थे। अपने उपदेशों के दौरान उन्होंने कई बार सम्पूर्ण इंग्लैंड की यात्रा की जिसके दौरान उन्हें कई बार कैद किया गया और यहाँ तक कि शत्रुतापूर्व भीड़ द्वारा उन पर हमला किया गया। वह उत्तरी इंग्लैंड में बड़ी संख्या में ऐसे व्यक्तियों को एकजुट करने में काफी सफल रहे जो मौजूदा चर्चों से सन्तुष्ट नहीं थे। शुरुआती दौर में क्वेकर्स का मुख्य प्रभाव कृषि आबादी के बीच था, जिनमें से अनेक गृहयुद्ध के दौरान जमींदारों के खिलाफ लड़े थे। इस प्रकार, एक मूलगामी धार्मिक आन्दोलन होने के अलावा क्वेकरवाद राजनैतिक और सामाजिक प्रतिरोध का आंदोलन भी था। 1650 के दशक के मध्य से क्वेकर आंदोलन इंग्लैंड के अन्य भागों में फैल गया और जल्द ही यह अनुयायियों की संख्या में मामले में बेपटिस्टों से आगे निकल गया।

जहाँ तक उनकी विचारधारा का सम्बन्ध था, क्वेकर्स उस समय मौजूद कई अन्य मूलगामी सम्प्रदायों के अनुरूप थे। उन्होंने स्थापित चर्चों के पादरियों की निन्दा की, सच्चे ईसाईयों के लिए सभी स्थलों के रूप में पारंपरिक चर्चो को खारिज कर दिया और दृढ़ता से इस सिद्धांत में विश्वास किया कि शुद्ध और पवित्र व्यक्ति सीधे ईश्वर से प्रेरणा और आंतरिक प्रकाश को प्राप्त कर सकते थे। उनका यह भी यकीन था कि सच्चे विश्वासियों की सच्ची आंतरिक ईश्वरीय प्रेरणा से ईसा मसीह के समान बनने की संभावना थी।

क्वेकर्स ने उन दिनों के अंग्रेजी समाज में व्याप्त प्रतीकवाद और व्यवहार के पारंपरिक रूपों को त्याग दिया। उन्होंने किसी के लिए अपनी टोपी उतारने से इन्कार कर दिया, और दिनों और महीनों के लिए सामान्य प्रचलित नामों को खारिज कर दिया, तथा शपथ लेने से इन्कार कर दिया। हिसंक साधनों के माध्यम से पुण्यशील लोगों के शासन स्थापित करने के लिए क्वेकर्स का डर राजशाही की पुनर्स्थापना के लिए अग्रणी वर्गों को प्रेरित करने का एक महत्वपूर्ण कारक था।

एक अन्य समूह, 'लेवलर्स', प्राकृतिक अधिकारों पर समानता की माँग करने वाले सबसे मूलगामी समूहों में से एक के रूप में उभरा। उन्होंने घोषणा की कि तर्क न्याय की सभी माँगों का मूल स्रोत है। बाद में, एक अन्य समूह जेर्राड विनस्टेनले के नेतृत्व में उभरा जो स्वयं को सच्चा लेवलर कह रहा था। बाद के इसके अनुयायियों को 'डिगर्स' कहा गया क्योंकि वे आर्थिक समानता में विश्वास करते थे और साझा जमीनों को खोदने का काम करते थे। विनस्टेनले ने पारंपरिक धर्म को पूरी तरह से खारिज कर दिया और गृहयुद्ध के दौरान पादरी वर्ग के खिलाफ लिखा। उन्होंने काफी दृढ़ता से सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त कर मानव स्वतंत्रता की बात कही। उन्होंने लिखा कि यह मनुष्य का अन्तःकरण था जो उन्हें बंधन से मुक्त करेगा। बाहर कोई ईश्वर नहीं था और हिल के अनुसार विनस्टेनले 'ईश्वर के स्थान पर विवेक शब्द के उपयोग को वरीयता देते थे' (हिल 1975: 141)।

एक अन्य सम्प्रदाय को 'फेमिलिस्ट, परिवार के प्रेम के सदस्य' नाम दिया गया। उनके नेता 1502 में मूंसटर (जर्मनी) में पैदा हुए हेनरी निकेलस थे। फेमिलिस्टों का मानना था कि ईश्वर और नर्क इसी दुनिया में पाए जाते हैं और मनुष्य फिर से इस पृथ्वी पर उस मासूमियत की स्थिति में वास कर सकते थे जो नैतिक पतन से पहले मौजूद थी। उनका साझा संपत्ति में भी विश्वास था क्योंकि प्रकृति सब कुछ पैदा करती है। वे मानते थे कि ईश्वर प्रत्येक मनुष्य में था और इस प्रकार सभी मनुष्य समान थे। इंग्लैंड में क्रिस्टोफर विटेल्स द्वारा फेमिलिज्म को फैलाया गया और यह इंग्लैंड के गृहयुद्ध के दौरान एक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय बन गया। हालांकि पुनर्स्थापना के बाद इसका तेजी से पतन हुआ और इसके कुछ सदस्य क्वेकर्स में शामिल हो गये।

अनाबेपटिज्म से प्रेरणा पाकर कई भिन्न-मतावलंबी सम्प्रदाय उभरे। 'पिल्ग्रीम फादर्स' नामक एक सम्प्रदाय डच और अंग्रेजी अनाबेपटिस्टों के बीच गठबंधन, से उभरा। एक अन्य सम्प्रदाय जिसे 'फिफ्थ मोनारकिस्ट' कहा जाता था जो मानते थे कि मौजूदा शासन के खिलाफ विद्रोह पृथ्वी पर ईश्वर के शासन को स्थापित करने के लिए आवश्यक था। कुछ और समूह जैसे कि 'रेन्टर्स' और 'फेमिली ऑफ लव' विलासोत्सव को मुक्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग के रूप में मानते थे। अनेक मामलों में इसलिए इन मूलगामी सम्प्रदायों ने राजनैतिक और सामाजिक मानदंडों के प्रति अवहेलना दिखाई। अनेक रूपों में प्रतिरोध दिखाई पड़ा। अक्सर इन सम्प्रदायों के अनुयायियों ने मुख्यधारा के चर्चों को दसमांश देने से इंकार कर दिया। इस प्रकार सामाजिक और राजनैतिक मूलगामी विचारधारा धार्मिक मूलगामी चिन्तन के साथ-साथ आई। गृहयुद्ध के दौरान और क्रॉमवेल के तहत उपलब्ध धार्मिक स्वतन्त्रता इस अवधि के यूरोप में अद्वितीय थी। इसलिए अनेक संप्रदायों, विशेष रूप से बेपटिस्टों और क्वेकर्स ने इसका लाभ उठाकर अपनी सदस्यता का विस्तार किया। क्वेकर्स को धार्मिक और सामाजिक परंपराओं के अनुरूप ना होने, उनके द्वारा पादरी वर्ग, पारंपरिक पवित्र संस्कारों और यहाँ तक कि चर्च की इमारतों (जिन्हें वे निन्दात्मक रूप से सीढ़ीनुमा (स्टीप्ल) हाउस' कहते थे) को भी मूलगामी अस्वीकृति के कारण राज्य के लिए खतरा माना जाता था। दुनिया के अन्त का विचार और यीशुमसीह के राजा के रूप में आकर एक नई दुनिया बनाने का विचार अनेक संप्रदायों के बीच काफी लोकप्रिय था।

इंग्लैंड में चार्ल्स II (1630-1685) के तहत् पुनर्स्थापना द्वारा धार्मिक रूप से गैर-अनुरूपतावादियों को पहले दी गई स्वतन्त्रताएँ और अधिकार खत्म कर दिये गये। 1661 और 1665 के बीच बनाये गये कई कानून प्युरिटन और कई अन्य सम्प्रदायों के

उत्पीड़न का साधन बने। कई समूहों को राज्य और सक्रिय सामाजिक और राजनैतिक बहिष्करण का सामना करना पड़ा और उनके अनेक अनुयायियों को नीदरलैंड और यूरोप के अन्य स्थानों के साथ-साथ उत्तरी अमेरिका में प्रवासन करने के लिए मजबूर होना पड़ा। विशेष रूप से क्वेकर्स जो 1650 के दशक में काफी विकसित हुए थे उनको शक्तिपूर्वक उत्पीड़ित किया गया। 1662 में, क्वेकर ऐक्ट पारित किया गया था जिसने भिन्न मतावलंबियों के साथ व्यापक तरीके से भेदभाव किया।

क्रिस्टोफर हिल ने पीछे हटने की इस अवधि को संक्षेप में इस प्रकार बताया है:

'आंदोलन की स्वतंत्रता और विचार की स्वतंत्रता का महान काल समाप्त हो गया था। 20 साल तक मनुष्यों ने ग्रेट ब्रिटेन में, सेना में, काम की तलाश में, ईश्वर की सेवा में, पीछे की ओर और आगे को थकाऊ भ्रमण किया था ... उपदेशक विचारक अपने गाँव में लौट आए या बनयान जैसे कारागारों में पहुँच गये। लेवलर, डिगर, रेन्टर और फिफ्थ मोनारकिस्ट बिना कोई निशान छोड़े, गायब हो गये ... फॉक्स ने क्वेकर्स को अनुशासित किया: उन्होंने प्रोटेस्टेंट नैतिकता के आगे घुटने टेक दिये। संपत्ति जीत गई थी। बिशप एक राजकीय चर्च में लौट आए, विश्वविद्यालय और दसमांश जीवित रहे। स्त्रियों को उनके स्थान पर वापस पहुँचा दिया गया। महान अव्यवस्था का द्वीप ग्रेट ब्रिटेन का द्वीप बन गया, ईश्वरीय विभ्रान्ति ने मनुष्य की व्यवस्था के सामने समर्पण कर दिया' (हिल 1975 : 378-79)।

क्रांतिकारी वर्षों के जुझारूपन और सहस्राब्दवाद के स्थान पर धीरे-धीरे इन मूलगामी सम्प्रदायों के अनुयायियों के बीच आत्म निरीक्षण ने आश्रय ले लिया। उनमें विभाजन, फिर पराजय और अधिक विभाजनों के कारण इस एहसास का जन्म हुआ कि अपेक्षित परमेश्वर का राज्य इस दुनिया से संबंधित नहीं था। इसलिए पुनर्स्थापना के बाद क्वाइटिस्ट और शान्तिवादी प्रवृत्तियाँ इन सम्प्रदायों के बीच उभरकर सामने आईं। एक चौंकाने वाला उदाहरण क्वेकर्स का था जो जुझारू सहस्राब्दवाद के प्रारंभिक चरण के बाद पूरे शान्तिवादी बन गये। स्थापित चर्चों और संबंधित सरकारों के उत्पीड़न का सामना करते हुए अनेक सम्प्रदायों के सदस्य अमेरिका भाग गये जहाँ उन्हें अपना संदेश फैलाने के लिए अधिक उपयुक्त वातावरण मिला।

पुनर्स्थापना के बाद गैर-अनुरूपवादी सम्प्रदायों द्वारा जिस उत्पीड़न का सामना किया जा रहा था वह गौरवशाली क्रान्ति के बाद समाप्त हो गया, जिसने सहिष्णुता की भावना को जन्म दिया। इसने 1689 के सहिष्णुता अधिनियम ने यह सुनिश्चित किया कि कम से कम सिद्धात में भिन्न-मतावलंबियों को धार्मिक व्यवहार की स्वतंत्रता दी गई थी, भले उन्हें सार्वजनिक पद संभालने से और शैक्षणिक संस्थानों से बाहर रखा जाता रहा हो। 18वीं शताब्दी के शुरुआत में भिन्न-मतावलंबी सम्प्रदायों के अनुयायियों की संख्या लगभग छः प्रतिशत थी। इस अवधि में एक शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन उभरा जिसे 'मेथोडिज्म' कहा जाता है।

मेथोडिस्ट आन्दोलन की स्थापना जॉन वेस्ले (1703-1791) ने की थी। यह विशेष रूप से वेस्ले के उपदेश देने के उत्साह के कारण एक स्वतंत्र आंदोलन के रूप में उभरा। मेथोडिज्म ने पुण्यशीलता, कड़ी मेहनत और मितव्ययता का उपदेश दिया। हालांकि इसकी लोकप्रिय अपील जादू जैसी अलौकिक घटनाओं के प्रति इसके खुलेपन और धार्मिकता से प्रेरित भावुकता के प्रति इसे खुलेपन के कारण हो सकती है। इसके सदस्यों में कुशल श्रमिकों की संख्या प्रमुख थी जो इसका लगभग आधा हिस्सा बनाते

थे। प्रारंभ में मेथोडिज्म इंग्लैंड में स्थापित चर्च के भीतर एक सुधार आंदोलन के रूप में मौजूद था लेकिन आखिरकार यह अपना पृथक चर्च स्थापित कर पाया।

चूंकि मेथोडिज्म एक बड़ा जन आंदोलन था, इसलिए अंग्रेजी मजदूर वर्गों और लोगों में मूलगामी विचारों को रोकने में इसकी भूमिका काफी महत्वपूर्ण थी। फ्रांसीसी क्रांति का प्रभाव जिसे पूरे यूरोप में महसूस किया गया था, वह मेथोडिस्ट उपदेशकों के रूढ़िवादी प्रभाव के कारण इंग्लैंड में दृष्टिगोचर नहीं था। वास्तव में इतिहासकारों ने भिन्न-मतावलंबियों जैसे प्रेस्सीबिटेरियन, इंडिपेंडेट, बेपटिस्ट, क्वेकर और मेथोडिस्ट की रूढ़िवादी सामाजिक राजनैतिक संरचनाओं में क्रमिक एकीकरण को नोट किया है।

पुनर्स्थापना की अवधि के दौरान धार्मिक स्वतंत्रता के दमन के बावजूद अनेक मूलगामी धार्मिक विचार जीवित बचे रहे। किसी ना किसी रूप में ये मूलगामी सम्प्रदाय पर्याप्त अनुसरण को सुनिश्चित करने में कामयाब रहे जिससे गैर-अनुरूपता इंग्लैंड के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू बनी रही। अपनी स्वतंत्रता का दावा बढ़ाते हुए, इस तरह के गैर-अनुरूपतावादी सम्प्रदाय अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में अपनी लचीली संस्थागत संरचना और स्वैच्छिक सदस्यता और मुक्त उद्यमशीलता की अपनी विचारधारा के कारण अपनी सदस्यता बढ़ाने में सक्षम थे। यह अनुमान लगाया गया है कि 1711 में लंदन में छः में से एक व्यक्ति एक भिन्नमतावलंबी था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक, गैर-स्थापित या स्वतंत्र चर्च में भाग लेने वाले लोगों की संख्या ब्रिटेन में कुल आबादी का 20 प्रतिशत थी। इसका अर्थ यह था कि गैर-अनुरूपता वाले चर्चों को मानने वाले लोगों की संख्या कुल चर्च जाने वाली आबादी का लगभग आधा थी। ब्रिटेन में, गैर-अनुरूपतावाद पारिभाषिक शब्द ने भिन्न मतावलंबी शब्द को प्रतिस्थापित कर दिया और उभरते मध्यम वर्गों ने गैर-अनुरूपतावादी सम्प्रदायों के प्रति अपनी तरजीह प्रदर्शित की।

3.5 धार्मिक विविधता और धार्मिक सहिष्णुता

प्रोटेस्टेंट धर्म-सुधार यूरोप की राजनैतिक, सामाजिक और बौद्धिक स्थिति को गंभीरता से प्रभावित करने वाली एक बहुत व्यापक घटना थी। इस प्रकार, सोलहवीं शताब्दी की शुरूआत में जहाँ यूरोप आमतौर पर एक समरूप धार्मिक तस्वीर पेश करता है वहीं 1600 तक यह ना केवल कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट के बीच विभाजित था बल्कि विभिन्न सम्प्रदायों के बीच भी विभाजित था जिनमें प्रत्येक दूसरे से अपनी स्वतंत्रता का दावा पेश करने की कोशिश कर रहा था। कैथोलिकों के बीच भी संस्थागत ढांचे को लेकर कुछ पुनर्विचार और परिवर्तन हुए। इस तरह की भावनाएँ आभिजात्य वर्ग तक ही सीमित नहीं रहे। बल्कि लोकप्रिय स्तरों तक पहुँच गई। इसने अभूतपूर्व स्तर पर यूरोपीय धार्मिक संस्कृति में विविधता को जन्म दिया। बड़ी संख्या में ऐसे छोटे और बड़े समूह मौजूद थे जिन्होंने अपनी विचारधाराओं को मौखिक और छपाई के माध्यमों से खुलकर पेश किया। प्रोटेस्टेंट धर्म-सुधार के भीतर विविधता काफी सामान्य थी लेकिन कैथोलिक धर्म के भीतर भी विविधता के नये रूप सामने आए। आधिकारिक स्तर पर कैथोलिक और प्रोटेस्टेंटवादियों दोनों ने राजनैतिक सत्ता के साथ मिलकर उत्पीड़न और दमन के माध्यम से सैद्धान्तिक विविधता को कम करने की कोशिश की। फिर भी धार्मिक विविधता कई तरीकों से पनपती रही और अन्ततः सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक जीत गई। सत्रहवीं शताब्दी में यूरोप में भिन्न-मतावलंबन और गैर-

अनुरूपतावाद का विस्तृत प्रसार था और इसमें बहुत बहुलतावाद और विखंडन देखा गया।

सुधारवादी संप्रदायों के बीच बहुत सारे मतभेद मौजूद थे, जिसके परिणामस्वरूप उनमें कुछ हद तक टकराव भी हुआ। आधिकारिक तौर पर समर्थित धर्मों के लिए उनका विरोध काफी स्पष्ट था, हालांकि इन संप्रदायों में सैद्धान्तिक प्रश्नों के बारे में काफी हद तक खुलापन और सहिष्णुता मौजूद थी जो कि स्थापित राज्य समर्पित रूढ़िवादी धर्मों में संभव नहीं था। धार्मिक सहिष्णुता के वातावरण ने सचेतन और अचेतन रूप में बड़ी संख्या में मूलगामी सुधारवादी सम्प्रदायों का निर्माण किया जो प्रबोधनकाल में सामान्य तौर पर धार्मिक सहिष्णुता, यहाँ तक कि गैर-धार्मिक विचारों और लोगों के प्रति सहिष्णुता दिखाने की अपील के लिए अवसर प्रदान करता है।

इंग्लैंड में, गृहयुद्ध के दौरान और उसके तुरंत बाद, क्रिस्टोफर हिल के अनुसार न्यू मॉडल आर्मी, लंदन लेवलर्स और मूलगामी डिवाइन्स के प्रतिनिधि, सभी उस युग के लिए आश्चर्यजनक सहिष्णुता के स्तर को दिखाते है (हिल, 1925 : 364)। लेवलर्स जैसे कुछ समूहों में एक लोकतान्त्रिक दृष्टि थी जिसमें एक केन्द्रीय तत्व के रूप में धार्मिक सहिष्णुता थी। इस अवधि के दौरान धार्मिक मूलगामी समूह यह भी विश्वास करते थे कि प्रत्येक व्यक्ति में एक पवित्र आत्मा मौजूद है और उन्होंने दूसरों द्वारा प्रदान की गई पारंपरिक सत्य की बजाए 'स्वयं के अनुभव से प्राप्त सत्य' पर बल दिया (हिल 1975: 368)।

यूरोप में काफी संख्या में धार्मिक संघर्ष हुए जिससे जीवन को बहुत हानि हुई। लेकिन सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक आमतौर पर यह मान लिया था कि सहिष्णुता सभ्य अस्तित्व का सबसे बेहतर तरीका है। इसमें धर्म-निरपेक्षीकरण के रूप में इन सम्प्रदायों के राज्य से एक सख्त पृथक्करण का प्रारूप खोजना भी संभव है। वे धर्म को एक व्यक्तिगत मामला मानते थे जिससे राज्य के हस्तक्षेप से अलग रखा जाना चाहिए था।

बोध प्रश्न 2

1) इंग्लैंड के कुछ महत्वपूर्ण मूलगामी सुधारवादी सम्प्रदायों पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) मूलगामी धार्मिक सम्प्रदायों का यूरोपीय आधुनिकता में क्या योगदान है?

.....

.....

.....

.....

.....

3.6 सारांश

सोलहवीं शताब्दी की शुरुआत में प्रोटेस्टेंट सुधार ने यूरोपीय धार्मिक जीवन को हिला कर रख दिया था। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न स्तरों पर एक शताब्दी से अधिक समय तक लगभग निरंतर धार्मिक टकराव हुआ। प्रोटेस्टेंटवाद विभिन्न विभाजनों द्वारा चिह्नित था और इसे अधिक उग्र धाराओं द्वारा चुनौती दी गई थी जिन्हें सामूहिक रूप से 'उग्र-धर्म-सुधार' के नाम से जाना जाता है। ये मूलगामी समूह पूरे यूरोप में फैले और पाए जाते थे और इनके अनेक सदस्य विश्व के अन्य हिस्सों में विशेषकर उत्तरी अमेरिका में प्रवासन करते हैं। इन उग्र समूहों का भिन्न-मतावलंबन और गैर-अनुरूपतावाद अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक जारी रहा जब तक कि प्रबोधन काल के धर्म-निरपेक्षीकरण और फ्रांसीसी क्रांतिकारी उथल-पुथल का सामना होने पर उनमें से अधिकांश रूढ़िवादी स्थान पर पीछे हट गये।

हालांकि यूरोप की धार्मिक संस्कृति में मूलगामी प्रवृत्ति ने न केवल धार्मिक पदानुक्रम को चुनौती दी, बल्कि सामाजिक और राजनैतिक पदानुक्रम को भी चुनौती दी। विभिन्न कारकों के कारण बल्कि मूलगामी धार्मिक सम्प्रदायों की विभिन्नता के कारण भी सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक यूरोपीय धार्मिक जीवन काफी विविध बन गया और इसने सहिष्णुता को स्वीकार कर लिया। इन धार्मिक सम्प्रदायों की विविधता और कट्टरता बाद में अनेक धर्म-निरपेक्ष और समतावादी विचारधाराओं को पोषित करती है।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 3.2 देखें।

2) भाग 3.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 3.4 देखें।

2) भाग 3.5 देखें।

इकाई 4 सत्रहवीं शताब्दी के यूरोप में बौद्धिक धाराएँ*

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 बौद्धिक पृष्ठभूमि

4.3 संशयवाद

4.4 तर्कवाद

4.5 अनुभववाद

4.6 राजनैतिक सिद्धान्त

4.7 सारांश

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- मोटे तौर पर उस पृष्ठभूमि को समझने में सक्षम होंगे जिसके परिणामस्वरूप सत्रहवीं शताब्दी में गहन बौद्धिक गतिविधियाँ हुईं;
- सत्रहवीं शताब्दी के दौरान महत्वपूर्ण रुझानों को समझ सकते हैं; और
- इस अवधि में विभिन्न विचारकों द्वारा रखे गये विचारों की व्याख्या करने में सक्षम होंगे।

4.1 प्रस्तावना

सत्रहवीं शताब्दी वह अवधि थी जब पश्चिमी आधुनिकता को बौद्धिक नींव रखी गई। यह धार्मिक, सामाजिक और बौद्धिक सभी स्तरों पर गतिविधियों से भरा समय था। व्यापक धार्मिक युद्धों ने यूरोप को तबाह कर दिया जिससे बहुत दुर्गति हुई। उसी समय, इसके परिणामस्वरूप सामाजिक-धार्मिक जीवन और राजनैतिक व्यवस्था का भी पुनर्गठन हुआ। यह बौद्धिक गतिविधियों से भरी शताब्दी भी थी। इसमें विभिन्न प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक और दार्शनिक विचार उभरे और फैले। एक मायने में, सत्रहवीं शताब्दी को विचार के क्षेत्र में यूरोपीय आधुनिकता का अग्रदूत कहा जा सकता है। इसलिए, इस अवधि में विभिन्न बौद्धिक धाराओं की छानबीन करना महत्वपूर्ण है।

सत्रहवीं शताब्दी के यूरोप के बौद्धिक जीवन में मुख्य रूप से तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ– संशयवाद, तर्कवाद और अनुभववाद – शामिल थी। परंपरागत रूप से, उनमें से प्रत्येक के साथ जुड़े कुछ विचारक हैं, लेकिन यह पता लगाना संभव है कि प्रवृत्तियाँ विचारकों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण थीं। इस अवधि के प्रत्येक प्रमुख विचारक में

* इकाई लेखक : प्रो. शशिभूषण उपाध्याय

प्रत्येक प्रवृत्ति के कुछ तत्वों को देखा जा सकता है। यहाँ, हालांकि हम प्रमुख विचारकों के साथ-साथ आमतौर पर उनके साथ जुड़ी प्रवृत्ति का अध्ययन करेंगे क्योंकि उन विशेष विचारों को इन व्यक्तियों के माध्यम से बेहतर अभिव्यक्ति मिली।

यद्यपि यहाँ हम कुछ महत्वपूर्ण रुझानों और कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों के संदर्भ में सत्रहवीं शताब्दी के बौद्धिक इतिहास पर चर्चा करेंगे, लेकिन यह समझना भी आवश्यक है कि वे शून्यता में काम नहीं कर रहे थे। पूरे यूरोप में, बल्कि अमेरिका और एशिया के कुछ भागों में, सहकारी सोच के विशाल संजाल (नेटवर्क) मौजूद थे। सत्रहवीं शताब्दी के यूरोप में बुद्धिजीवियों के लिए विभिन्न आयामों के पत्राचार के संजाल (नेटवर्क) में भाग लेना एक सामान्य अभ्यास बन गया था। इसलिए, इस तरह के संजाल के भीतर उत्पन्न या परीक्षण किये गए विचार कुछ मौलिक मस्तिष्कों की उपज होने की बजाए यह इंगित करते हैं कि उनकी उत्पत्ति सामूहिक थी।

4.2 बौद्धिक पृष्ठभूमि

पुनर्जागरण, धर्म सुधार और आधुनिक विज्ञान के उदय ने सत्रहवीं शताब्दी के यूरोप में एक सशक्त और व्यापक बौद्धिक संस्कृति के उद्भव के लिए बौद्धिक पृष्ठभूमि प्रदान की। जबकि पहले के बौद्धिक आन्दोलन काफी हद तक बौद्धिक आभिजात्य वर्ग या धार्मिक सम्प्रदायों तक सीमित थे, वहीं सत्रहवीं शताब्दी में धर्म-निरपेक्ष बौद्धिक गतिविधियों में यूरोपीय आबादी के अपेक्षाकृत बड़े हिस्से की भागीदारी देखी गई।

पुनर्जागरण एक बौद्धिक आन्दोलन था, जो इटली में चौदहवीं शताब्दी में शुरू हुआ और वहाँ से यह यूरोप के लगभग सभी क्षेत्रों में फैल गया। यह दो शताब्दियों से अधिक विभिन्न रूपों में जारी रहा जिसने यूरोप की बौद्धिक संस्कृति में भारी बदलावों को जन्म दिया। मध्यकालीन यूरोपीय विचार के विपरीत जिसने ईश्वर को ब्रह्मांड का केन्द्र माना था, पुनर्जागरण के विचारकों ने 'मनुष्य' को दुनिया के केन्द्र में रखा। इस दार्शनिक बदलाव को 'मानववाद' के नाम से जाना जाता है। यह मानववाद विचार के लिए पुनर्जागरण का सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक योगदान था। बौद्धिक क्षेत्र में कुछ अन्य महत्वपूर्ण विकास जो इस अवधि के दौरान शुरू किये गये थे, वे थे व्यक्तिवाद और यथार्थवाद। साहित्य, चित्रकला, मूर्त्तिकला, वास्तुकला, दर्शन और राजनैतिक सोच के इन सभी विकासों का आधुनिक पश्चिम के निर्माण पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

एक और महत्वपूर्ण विकास, हालांकि यह धार्मिक क्षेत्र में था, धर्म-सुधार था जिसने कैथोलिक चर्च द्वारा स्थापित धार्मिक सोच और संस्कृति को दोबारा दिशा दी। मार्टिन लूथर (1483-1546) ने मूल रूप से कैथोलिक चर्च के विचारों और अभ्यासों पर सवाल उठाए और मूल ईसाई सिद्धान्तों का अनुपालन नहीं करने के लिए इसकी आलोचना की। लूथर, मार्टिन बूसेर (1491-1551), जीन केल्विन (1509-1564), जॉन फॉक्स (1516-1587) और अन्य नेताओ ने प्रोटेस्टेंटवाद को स्थापित किया। कैथोलिक चर्च से जुड़े विद्वानों ने प्रोटेस्टेंटवाद द्वारा उत्पन्न बौद्धिक और धार्मिक चुनौतियों के प्रति प्रतिक्रिया दिखाई। दो मुख्य ईसाई सम्प्रदायों के बीच इस टकराव ने बहुत सारे बौद्धिक उफान पैदा किये जिन्होंने अन्त में यूरोप में गैर-धार्मिक विचारों को भी प्रभावित किया।

सोलहवीं शताब्दी और सत्रहवीं शताब्दी के दौरान एक और महत्वपूर्ण विकास आधुनिक विज्ञान का उदय था जिसका प्रभाव और भी गहरा था। आधुनिक विज्ञान ब्रह्मांड

विज्ञान के एक शांत पुनर्निर्माण के साथ शुरू हुआ। 1543 में, कॉपरनिकस ने तारों की गति पर अपनी पुस्तक प्रकाशित की। पृथ्वी के सूर्य के चारों और परिक्रमा करने के उनके विचार ने पृथ्वी और बाकी सौर मंडल के बीच के संबंध के बारे में सम्पूर्ण पारम्परिक ज्ञान को पलट दिया। केपलर, गेलिलियों और न्यूटन वैज्ञानिक क्रांति के नाम से जाने जाने वाले आंदोलन की कुछ महान हस्तियाँ थी। ब्रह्मांड के बारे में उनके विचारों ने पश्चिम में लंबे समय से प्राप्त ज्ञान को पूरी तरह अस्थिर कर दिया। आधुनिक विज्ञान के उदय ने धीरे-धीरे यह विचार फैला दिया कि सौर मंडल के केन्द्र में पृथ्वी नहीं बल्कि सूर्य था। इसके अलावा ब्रह्मांड, सौर मंडल जिसका एक भाग था, अंतरिक्ष में अनंत था। तब गति के नियमों की खोज की गई जिन्होंने इस विचार को दिया कि ब्रह्मांड में वस्तुओं की गति, जिसमें मानव भी शामिल हैं, वह दैवीय इच्छा या हस्तक्षेप के कारण नहीं थी बल्कि ऐसी गति के अपने नियम थे जो सभी के लिए सामान्य थे। ब्रह्मांड की कार्यप्रणाली में दिव्य सिद्धान्तों की भूमिका को कार्य और कारण के विचारों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया था। जिनका स्वरूप भौतिक था। इन नियमों को दिव्य रहस्योद्घाटन के बजाए अवलोकन और विश्लेषण द्वारा समझा जा सकता था। इस प्रकार, वैज्ञानिक खोजों की नई श्रृंखला ने असंख्य प्रतिमानों के साथ एक विशाल ब्रह्मांड को प्रस्तुत किया जो अब नये खोजे गये तथ्यों के साथ या तार्किकता के साथ मेल नहीं खाते थे। सत्य को अब सीमित या संकीर्ण नहीं माना जाता था। इन सब विकासों का आधुनिक यूरोप की बौद्धिक संस्कृति पर बहुत प्रभाव पड़ा।

4.3 संशयवाद

सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत पारंपरिक रूप से प्राप्त प्रज्ञान के प्रति संदेह की गहरी भावना से हुई थी। मोटे तौर पर ना केवल धार्मिक (ईसाई) मध्यकालीन चिंतन पर सवाल उठाए गए थे अपितु पुनर्जागरण द्वारा प्राचीनों के महिमामंडन पर भी प्रश्न उठाए गए। दूसरी विषयवस्तु जिसमें सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अधिक तीक्ष्णता हासिल की और अनेक बुद्धिजीवियों ने प्राचीन यूनानियों और रोमनों से प्राप्त शिक्षाओं की निरंतर प्रमाणिकता पर संदेह जताया। ज्याँ बोदिन और मिशेल द मोंटेन दो महत्वपूर्ण बुद्धिजीवी थे, जिन्होंने मूल रूप से प्राचीनों की प्रधानता पर सवाल उठाया था।

एक सामान्य अर्थ में, संदेहवाद का अर्थ सदेंह या अविश्वास है जो हमारे पारस्परिक विचार-विमर्श में प्रकट होता है, हालांकि विचार की एक प्रणाली के रूप में यह विश्व की किसी भी संगठित समझ के प्रति अनिश्चितता, संदेह और अविश्वास की एक व्यवस्थित अभिव्यक्ति को दर्शाता है। संशयवाद को आमतौर पर एक दृष्टिकोण के रूप में समझा जाता है जो कि उस हठधार्मिकता का विरोध करता है जो वास्तविकता को पूरी तरह से जानने और स्पष्ट करने के दावे के साथ एक निश्चित मत का अनुसरण करता है। संदेहवाद के तत्व सभी दार्शनिक प्रणालियों में पाए जा सकते हैं क्योंकि वे पूर्ववर्ती या प्रतिद्वन्द्वी दर्शन की वैधता पर संदेह करते हैं। लेकिन एक बड़े और दूरगामी स्तर पर, संशयवाद हर चीज पर संदेह करता है और मानता है कि वास्तविकता और सत्य का कोई भी अन्तिम संस्करण किसी भी मामले में उपलब्ध नहीं हो सकता है।

ऐतिहासिक रूप से, संशयवाद को प्राचीन यूनानी दर्शन से उत्पन्न कहा जा सकता है। सुकरात और बाद में पीरहो ऑफ ऐलिस (लगभग 355-275 बी.सी.ई.) को संशयवाद के दो अलग-अलग संस्करणों-अकादमिक संशयवाद और पीरहोनिज्म – के संस्थापकों के रूप में सुकरात ने केवल सवाल पूछे और मौजूदा विचारों और मान्यताओं पर सवाल उठाए। उन्होंने कभी अपने स्वयं के विचार की प्रणाली प्रदान नहीं की। बाद में आरसीलॉस और कारनेडस ने 'अकादमिक संशयवाद' के नाम से जानने वाले विचार को प्रबल बनाया। इसने सभी ज्ञान को अस्वीकार नहीं किया और संभावित ज्ञान पर भरोसा करने का प्रयास किया क्योंकि पूरा सत्य कभी उपलब्ध नहीं हो सकता था।

पीरहोनिज्म का व्यवस्थित रूप से सेक्सटस एंपरिकस (दूसरी शताब्दी सी.ई.) की रचनाओं से पता लगाया जा सकता है। उनकी पुस्तकें जैसे कि *आउटलाइन ऑफ पीरहोनिज्म, अगेन्सट द डॉगमेटिस्टस्,* और *अगेन्सट द मेथेमेटिशियन* ने इसके बाद के विकास के लिए स्वनिर्धारित किया। सेक्सटस के अनुसार 'संशयवाद एक दर्शन नहीं था, बल्कि जीवन का एक तरीका था जिसमें कोई व्यक्ति सभी सत्य के दावों के विपरीत दावे प्रस्तुत कर सकता था' (लॉरसेनः पृष्ठ 2211)। सेक्सटस ने तर्क दिया कि एक ही वस्तु या घटना :

(1) अलग-अलग जानवरों को, (2) विभिन्न व्यक्तियों को, (3) अलग-अलग इंन्द्रियों को, (4) अलग-अलग स्थितियों में एक ही इन्द्रिय की अनुभूति को, (5) अलग-अलग स्थानों या अवस्थाओं में, (6) अलग-अलग वस्तुओं के संसर्ग में, (7) अलग-अलग मात्राओं में, (8) अलग-अलग संबंधों में, (9) यदि सामान्य है या दुर्लभ है उसके अनुसार और (10) अलग-अलग रीति-रिवाजों या जीवन के तरीकों वाले लोगों को भिन्न-भिन्न रूप में प्रतीत हो सकती है (लोरसेनः पृष्ठ, 2211)।

इस प्रकार किसी भी दावे का समान रूप से मान्य विपरीत दावे द्वारा विरोध किया जा सकता था। यह स्थिति निर्णय के निलंबन या स्थगन का कारण बन सकती है। उन्होंने सुझाव दिया कि कोई किसी घटना की वास्तविकता पर ध्यान दिए बिना रह सकता है और अपने रीति-रिवाजों और नियमों का पालन कर सकता है।

आधुनिक संशयवाद की उत्पत्ति सोलहवीं सदी में हुई थी। यह बड़े आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण अस्तित्व में आया। पुनर्जागरण और यूरोपीयों के द्वारा विश्व की खोज के द्वारा प्राचीन यूनानी ग्रन्थों के प्रमुखता में आने के परिणामस्वरूप ज्ञान के विभिन्न रूप एक साथ आए और इसने ब्रह्मांड और समाज के बारे में यूरोपीय मध्यकालीन विचारधाराओं पर गंभीर सवाल खड़े किये। आधुनिक विज्ञान और आधुनिक दर्शन प्राप्त-ज्ञान के सभी रूपों के प्रति संदेह की प्रक्रिया के माध्यम से ही उभर सकता था। इससे भी आगे, उनमें से कुछ ने ज्ञान के किसी एक निश्चित रूप की संभावना पर भी सवाल उठाया। सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत तक, ईसाई संशयवाद ने, विशेषकर कैथोलिक धर्म-शास्त्रीयों के बीच, एक सम्मानजनक स्थिति हासिल कर ली थी। सामान्य तौर पर संशयवाद फ्रांस में इतना व्यापक हो गया था कि इसने उन लोगों के भयंकर हमले आमंत्रित करने शुरू कर दिए थे जो मानते थे कि यह विश्वास को क्षीण कर रहा है या जो इसे ज्ञान के लिए खतरनाक मानते थे।

इस अवधि के दौरान, संशयवाद ने मूलगामी विचारों से लेकर रूढ़िवाद तक विभिन्न प्रकार की राजनैतिक स्थितियों में आस्था दिखलाने के लिए उपयोगी रूप में कार्य किया। मोंटेन और हॉब्स दोनों ने विपरीत तर्कों के लिए संशयवाद का उपयोग किया।

इस प्रकार जबकि मोंटेन का लेखन कई बार विध्वंसकारी था, वहीं हॉब्स ने तर्क दिया कि चूंकि सत्य तक पहुँचना मुश्किल था, इसलिए लोगों द्वारा एक आम कार्यवाही के लिए सहमत होना संभव नहीं था, और इसलिए शासक को सत्य के बारे में फैसला करने और सत्य को परिभाषित करने की शक्तियाँ दी जानी चाहिए और यह शक्ति होनी चाहिए कि जो सत्य उनके संस्करण से विचलित हों उन्हें दडिंत करें।

देकार्त परंपरा या इन्द्रिय अनुभव से प्राप्त ज्ञान पर संदेह से शुरुआत करते हैं। उनके अनुसार एकमात्र विश्वास योग्य वस्तु सोचने वाला दिमाग था जो निगमनात्मक प्रक्रिया के माध्यम से पुष्टिकृत ज्ञान का उत्पादन करने में सक्षम था। अन्ततः देकार्त सत्य को प्राप्त करने का प्रस्ताव रखते हैं हालांकि अगर हम ईश्वर के अस्तित्व, सोचने वाले मस्तिष्क और निगमनात्मक प्रणाली की संभावना को उनकी सर्वथा संशयवादी कार्यप्रणाली में शामिल करें तो यह निस्संदेह या निरपेक्ष संशयवाद की ओर ले जाएगा।

पियरे डेनियल हुये (1630-1721) और पियरे बेअल (1647-1706) को संशयवादी माना जाता था। हुये ने देकार्त की स्वयं की सत्य को जानने की व्यवस्था स्थापित करने के प्रयास पर सवाल उठाया। पियरे बेअल ने अपनी विशाल रचना *हिस्टोरिकल एंड क्रिटिकल डिक्शनरी* (1697-1702) में सभी दर्शन विचार प्रणालियों और ऐतिहासिक विद्वता की आलोचना की। बेअल की रचना और लॉ मोथे ले वेयर की रचना *ऑन द स्माल अमाउंट ऑफ सर्टेनिटी इन हिस्ट्री* (1668) ने ऐतिहासिक क्षेत्र में ऐतिहासिक रचनाओं की बहुत सारी गलतियों को सामने लाते हुए संशयवाद को मजबूत किया। उन्होंने तर्क दिया कि एक संभावित वास्तविकता को निरपेक्ष निश्चितता के स्थान पर स्वीकारना चाहिए। बेअल का शब्दकोश संशयवाद की उच्चतम उपलब्धि थी जिसने ऐतिहासिक धार्मिक और आत्मविषयक ज्ञान की सभी धाराओं पर संशयवादी सवाल खड़े किये। उनके संशयवाद ने इन ज्ञान रूपों के अन्तर्निहित दोषों को उजागर किया जिससे निश्चितता लगभग असंभव हो गई। बेअल ने परम्परा से प्राप्त प्रज्ञान पर प्रबोधन काल के विचारकों द्वारा आक्रमण के लिए बौद्धिक हथियार प्रदान किये।

संशयवाद ने धर्म के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण दखलंदाजी की। स्पिनोजा (1596-1676) और रिचर्ड साइमन (1638-1712) ने बाइबिल के बारे में सवाल उठाए। धार्मिक लोगों ने अपनी तरफ से संशयवादियों पर नास्तिकता, लम्पटता और अनैतिकता के आरोप लगाए। हालांकि धार्मिक नेताओं और लेखकों द्वारा अपने विरोधियों को बदनाम करने के लिए अक्सर संशयवाद का इस्तेमाल किया जाता था। इस प्रकार ईसाईयों ने बुतपरस्त पंथों, प्रोटेस्टेंटों ने कैथोलिकों और उसके विपरीत कैथोलिकों ने भी, और यहाँ तक कि प्रोटेस्टेंटवाद के भीतर लूथरवादियों ने कैल्विनवादियों पर संदेह उठाए। संशयवादियों ने प्रतिद्वंद्वी संप्रदायों के ज्ञान की कमजोर नींव को इंगित किया। वास्तव में, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के दौरान, ईसाई दुनिया में प्रतिद्वन्द्वी सम्प्रदायों पर उग्र प्रश्न उठाना आम बात थी। प्रतिद्वन्द्वी धर्मों और सम्प्रदायों के प्रति संशयवाद धार्मिक व्यक्तियों के लिए काफी मुनासिब था और फ्रांस में ब्लेज पॉस्कल (1623-1662) इस हद तक आगे गए कि उन्होंने यह तर्क देते हुए संशयवाद का ईसाईकरण किया कि यह अगर ठीक से समझा जाए तो यह दृढ़ता से ईसाई धर्म का समर्थन कर सकता था।

इसलिए यह दिलचस्प है कि संशयवाद का उपयोग तर्कवादियों, अनुभववादियों और यहाँ तक कि तर्कशास्त्रियों द्वारा उन लोगों पर सवाल उठाने के लिए किया गया था जो उनके सिद्धान्तों के विरोध में थे।

4.4 तर्कवाद

तर्कवाद को आमतौर पर सोचने की पद्धति के रूप में माना जाता है जो इस बात पर बल देता है कि शुद्ध तर्क हमारे ज्ञान के एक स्रोत के रूप में हमारे ठोस अनुभवों द्वारा प्रतिबंधित हुए बिना कार्य कर सकता है। तर्कवाद 'मानव संज्ञानात्मक शक्तियों की कल्पना करता है जो शुद्ध प्रज्ञा, इन्द्रियों और कल्पना के रूप में प्रतिष्ठित की जा सकती हैं। शुद्ध प्रज्ञा वह शक्ति थी जिसने मानव को ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम बनाया। तर्कवाद को इस तरह के दृष्टिकोण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि वास्तविकता की प्रकृति के बारे में ज्ञान पुष्ट आधार पर प्राप्त सत्यकल्पना और इन्द्रियों से स्वतन्त्र संचालित शुद्ध प्रज्ञा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।' (न्यू डिक्शनरी ऑफ आइडिया, पृष्ठ 209)। तर्कवाद स्पष्ट रूप से या निस्संदेह यह मानता है कि सत्य और वास्तविकता के स्वरूप को *ए प्राइओरी* अर्थात् पूर्व सिद्ध तर्क के माध्यम से समझना संभव था। यह तर्क इन्द्रिय अनुभवों से स्वतंत्र था। महान यूनानी दार्शनिक प्लेटो को तर्कवाद का प्रवर्तक माना जाता है। बाद में, ईसाई दार्शनिक सेंट ऑगस्टीन ने प्लेटो को ईसाई सोच के साथ संश्लेशित किया। सत्रहवीं शताब्दी के दौरान तर्कवाद सबसे शक्तिशाली धाराओं में से एक के रूप में उभरा। आधुनिक समय में रेने देकार्त (1596-1650), जो एक फ्रांसीसी दार्शनिक थे, उन्होंने तर्कवाद के मुख्य विचारों को सूत्रबद्ध किया यद्यपि तर्कवाद बहुत पहले से मौजूद था और बाद में जारी रहा, परन्तु दर्शनशास्त्र में तर्कवादी धारा की अवधि आमतौर पर 1637 (देकार्त की रचना *डिस्कोर्स ऑन मैथड*) से 1716 (लेबनीज की मृत्यु तक) माना जाता है।

देकार्त को व्यापक रूप से प्रथम आधुनिक दार्शनिक के साथ-साथ दार्शनिक आदर्शवाद के सृजक के रूप में माना जाता हैः जो मानव बुद्धि को सर्वोच्च महत्व देते हैं और यह संकेत करते हैं कि मानव बुद्धि को किसी भी भौतिक वस्तु से पहले जाना गया था। सभी मौजूदा ज्ञान के प्रति पूरी तरह से संशयवाद की अभिव्यक्ति के साथ शुरू करते हुए, देकार्त ने प्रकृति और दुनिया की पारंपरिक अवधारणाओं की व्यवस्थित रूप से आलोचना की। इस मूलगामी अस्वीकृति के बाद, उन्होंने कुछ ऐसा खोजा जो निश्चित रूप से निश्चित था, जिस पर संदेह नहीं किया जा सकता था। यह उन्होंने अपने इस कथन में पाया 'मैं सोचता हूँ इसलिए मैं हूँ'। इसे उन्होंने निर्विवाद रूप से माना और इस अकाट्य नींव के साथ शुरू करके, देकार्त ने दर्शन में एक वस्तुनिष्ठ और तर्कसंगत विश्व के आधार को पुनर्स्थापित करने की चेष्टा की। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि हमें उस प्रथम सिद्धान्त से शुरू करना चाहिए जिसकी सत्यता संदेह से परे है और फिर निगमनात्मक पद्धति से संपूर्ण ज्ञान की प्रणाली का निर्माण किया जाना चाहिए। उनके ज्ञान के सिद्धान्त में अनुभव, अनुगमन, प्रयोग आदि सभी निरर्थक थे। ज्ञान के निर्माण बुद्धि के निगमनात्मक तर्क द्वारा किया जा सकता था।

देकार्त का दर्शन भौतिकवादी है क्योंकि यह सभी घटनाक्रम को गतिमय पदार्थ के संदर्भ में समझाने का प्रयास करता है। उन्होंने सोचा कि मानव शरीर सहित सभी वस्तुएँ अदृश्य रूप से छोटे कणों से बनी थी, विभिन्न तरीकों से जोड़ी गई और व्यवस्थित की गई थी। इन्हीं कणों के बीच गति और फलस्वरूप पुनः व्यवस्था के

कारण प्रकृति और समाज में सभी परिवर्तन हुए। हालांकि, ये परिवर्तन मनमाने नहीं थे परन्तु कुछ प्राकृतिक नियमों के अनुसार हुए। कणों के टकराव से गति एक कण से दूसरे में स्थानांतरित होती है और यह इसी तरह चलता है। देकार्त की प्रणाली इतनी भौतिकवादी है कि उसने कणों के बीच स्थान की अनुमति नहीं दी। इस प्रकार, देकार्त के अनुसार पूरा ब्रह्मांड बिना किसी खाली स्थान के कणों से भरा है।

देकार्त के अनुसार, सभी वस्तुओं में दो गुण होते हैं : विस्तार (जिसका अर्थ है उनकी लम्बाई, ऊँचाई और चौड़ाई के आयाम) और गति। इसके अलावा दुनिया को कम करके दो आवश्यक पदार्थों – बुद्धि या 'सोचने वाला पदार्थ' और पदार्थ या 'विस्तारित पदार्थ' के रूप में देखा जा सकता था। सभी वस्तुएँ ऐसे कणों से बनी थी जो असीम रूप से विभाज्य थे और कहीं कोई शून्यता नहीं थी क्योंकि 'सूक्ष्म पदार्थ' ने सभी स्थान भरे हुए थे। कणों की गति के कारण अन्तराल बनते थे, जो प्रकाश और उष्णता की अनुमति देते थे। देकार्त ने अपने गति के नियमों का प्रस्ताव भी रखा। प्रथम नियम ने यह निर्धारित किया कि वस्तुएँ अपनी वर्तमान स्थिति को बनाए रखती हैं जब तक कि कोई चीज उन्हें बदल ना दें। गति का दूसरा नियम यह था, कि प्रत्येक वस्तु एक सीधी रेखा में तब तक चलती है जब तक कि अन्य वस्तुओं के साथ भिड़ंत के कारण इसका मार्ग नहीं बदल जाता।

देकार्त ने यंत्रवादी दर्शन पर विश्वास किया जिसने प्रकृति और ईश्वर के बीच एक द्वैतवाद का प्रस्ताव रखा। इसने प्रकृति को एक यांत्रिक प्रतिरूप के रूप में प्रस्तुत किया जिसके मुख्य तत्व पदार्थ और गति थे। प्रकृति की पूर्व जड़ता और प्रकृति से पूरी तरह से ऊपर और अलग होने की ईश्वर की अवधारणा और बुद्धि और शरीर का एक मौलिक पृथक्कन इनके दर्शन की पहचान थे। उनका मानना था कि उनकी व्याख्यात्मक प्रणाली ब्रह्मांड में 'दृश्य या बोधगम्य' घटना की व्याख्या करने में सक्षम होगी। हालांकि, अनेक लोगों के लिए यह अटकलबाजी की तरह दिखाई दिया क्योंकि सभी स्पष्टीकरण अदृश्य कणों की अगोचर गति पर आधारित थे, जिनका परीक्षण नहीं किया जा सकता था।

बरुच स्पिनोज़ा (1632-1677), जो एक डच दार्शनिक और देकार्त के अनुयायी थे, ने दर्शन की एक प्रणाली विकसित की जिसे तर्कवाद का सबसे शुद्ध उदाहरण कहा जा सकता है। जबकि उनके समकालीन और पहले के तर्कवादी ईश्वर और धर्म में विश्वास करते रहे, स्पिनोजा पर नास्तिक होने का आरोप लगाया गया था, जिन्होंने सोचा था कि यह भगवान नहीं बल्कि मनुष्य थे जिनके कर्म समाज के लिए प्रासंगिक थे। अन्य तर्कवादियों की तरह, स्पिनोजा ने ब्रह्मांड की प्रकृति की एक समझ के लिए अनुभव के सभी संवेदी आँकड़ों को बेतरतीब और अप्रासंगिक के रूप में खारिज कर दिया। उनके अनुसार, केवल एक पदार्थ मौजूद था जिसे कोई ईश्वर या प्रकृति कहा जा सकता था। यह वह पदार्थ था जो दुनिया में मौजूद सभी वस्तुओं का आवश्यक हिस्सा बनाता था। उन्होंने विश्व के बारे में एक निर्धारणवादी दृष्टिकोण भी रखा। उनके अनुसार, सभी घटनाएँ और सभी वस्तुओं को बनाने की घटना ईश्वर द्वारा पूर्वनिर्धारित थी। वास्तव में, यहाँ तक कि निर्माता के रूप में भी ईश्वर के पास कोई स्वतंत्र इच्छा नहीं थी और उसे दुनिया में मौजूदा वस्तुएँ बनाने के लिए स्वयं अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य करना था।

गोटफ्रीट विलहेल्म फॉन लाइबनिज (1646-1716) एक जर्मन दार्शनिक और गणितज्ञ थे। लाइबनिज के अनुसार, ब्रह्मांड में एक तर्कसंगत व्यवस्था थी जिसको

मानव बुद्धि द्वारा समझना संभव था। दूसरे शब्दों में, सम्पूर्ण ब्रह्मांड मानव बुद्धि के लिए बोधगम्य था। उन्होंने अपनी पुस्तक *मानाडोलॉजी* में एक मूल पदार्थ के बारे में एक सिद्धान्त विकसित किया जिनको उसने मॉनाड कहा। उन्होंने सोचा कि मॉनाड दुनिया में एकमात्र वास्तविक पदार्थ थे। लाइबनिज नयूटन के इस विचार से असहमत थे कि ईश्वर कभी-कभी ब्रह्मांड को चलाने की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करता है। उनका विश्वास था कि ब्रह्मांड अंतरिक्ष और समय में भी अनन्त था। एक बार ईश्वर द्वारा गति प्रदान किये जाने के बाद जानवरों और मनुष्यों के शरीर घड़ियों की तरह और गणितीय नियमों के अनुसार गतिमान थे। ब्रह्मांड और पृथ्वी को कार्य करने के लिए और अधिक ईश्वरीय हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी।

देकार्त से लाइबनिज तक की तर्कवादी परम्परा ने स्पष्टतया या निस्संदेह रूप से सुझाया कि यद्यपि ईश्वर का अस्तित्व था, परन्तु मानवता ईश्वर के बिना कार्य कर सकती थी।

बोध प्रश्न 1

1) सत्रहवीं शताब्दी के दौरान संशयवाद इतना व्यापक क्यों था?

.....

.....

.....

.....

.....

2) देकार्त के तर्कवादी दर्शन की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4.5 अनुभववाद

देकार्त और उसके उत्तराधिकारियों के अव्यवहारिक तर्कवादी दर्शन को अनुभववादी और प्रयोगात्मक दर्शन से तीव्र चुनौती मिली, जो विशेष रूप से सत्रहवीं शताब्दी में इंग्लैंड में केन्द्रित था। यूरोप में तर्कवाद और अनुभववाद के मध्य एक परंपरागत पृथक्कन था। जबकि तर्कवाद ज्यादातर फ्रांस में पनपा, अनुभववाद ने अपनी जड़ें मुख्यतया ब्रिटेन में जमाई।

अनुभववाद अपने मूलरूप में दावा करता है कि विश्व के बारे में सभी ज्ञान इन्द्रिय संवेदनाओं से प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में, पाँच इन्द्रिय अंगों के माध्यम से हमारे आसपास के हमारे अनुभव ज्ञान के सभी रूपों के लिए आधार बनाते हैं। अनुभव सीमाएँ बनाते हैं जिनके आगे हमारा ज्ञान नहीं जा सकता। अकेले अनुभव ही दुनिया में सभी ज्ञान के प्रवर्तक और औचित्य हैं। रीति-रिवाज, परम्परा, रहस्योद्घाटन और

आत्मविषयक अटकलबाजी से प्राप्त ज्ञान सच्चे ज्ञान का आधार नहीं बन सकता है। अनुभववादियों ने उस ज्ञान को अस्वीकार कर दिया जो मानवीय इन्द्रिय अनुभवों से उत्पन्न नहीं है और जिसकी पुष्टि नहीं की जा सकती।

पश्चिम दर्शन में, यूनानी सोफिस्टों (मिथ्याहेतुवादी) को सबसे शुरुआती अनुभववादी माना जाता है। अरस्तू को उच्च दार्शनिक स्तर पर अनुभववाद का संस्थापक भी माना जाता है। मध्यकालीन यूरोप में, थॉमस एक्विनास को एक अनुभववादी माना जाता है क्योंकि वह ज्ञान के स्रोत के रूप में इन्द्रियों की प्रधानता में विश्वास करते थे और जिन्होंने कहा था कि 'बुद्धि में ऐसा कुछ भी नहीं है जो पहले इन्द्रियों में ना हो'। फ्रांसिस बेकन को आधुनिक काल में अनुभववाद का अग्रदूत माना जाता है। हालांकि, ब्रिटेन में जॉन लॉक (1632-1704), जार्ज बर्कले (1685-1753), डेविड हयूम (1711-1776) को आमतौर पर सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक माना जाता है। इस भाग में हम केवल बेकन, गासेन्डी और लॉक पर विचार करेंगे।

फ्रांसिस बेकन (1651-1626)

बेकन आधुनिक समय में उन दार्शनिकों में से थे, जिन्होंने पहली बार अनुभव और तर्क का संयोजन करके एक नया प्रयोगात्मक दर्शन प्रस्तुत किया। बेकन ने पारंपरिक तत्वमिमांसा दर्शन और विज्ञान पर आधारित तर्कों को खारिज कर दिया और 'विज्ञान कला और सभी मानव जन के सम्पूर्ण पुनर्निर्माण' का आह्वान किया। उन्होंने आगमनात्मक पद्धति पर जोर दिया जिसमें इन्द्रिय अनुभवों और प्रयोगों से सामान्यीकरण तक अग्रसर होना होता है। यद्यपि वह धर्म में विश्वास करते थे, फिर भी उन्होंने सोचा कि ब्रह्माण्ड का वास्तविक ज्ञान वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा एकत्र किया जायेगा ना कि धार्मिक रहस्योद्घाटन से। उनका यकीन था कि विज्ञान का क्षेत्र धर्म से अलग था।

बेकन के अनुसार सभी मानवीय ज्ञान मानव इन्द्रियों के अनुभव से प्राप्त होते हैं। उन्होंने मानव ज्ञान को तीन श्रेणियों में विभाजित कियाः भगवान का, प्रकृति का और मानव का ज्ञान। उनका मानना था कि अनुभवों के बिना ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं था और यह ज्ञान केवल बुद्धि की शक्ति द्वारा उत्पन्न नहीं किया जा सकता था। हालांकि, बेकन ने मानव तर्कशक्ति को यथोचित वजन और सत्ता दी। तर्कबुद्धि की तर्कशक्ति के बिना संवेदी अनुभवों से कोई सुसंगत ज्ञान नहीं बनता। इस प्रकार, विभिन्न अनुभवों को ज्ञान के रूप में बदलने के लिए एक तर्कसंगत बुद्धि महत्वपूर्ण थी। फिर भी अनुभव के अपर्याप्त आँकड़ों के आधार पर सामान्यीकरण और व्यवस्थीकरण सफल नहीं होगा और अटकलबाजी बनी रहेगी।

बेकन के पास प्राकृतिक विज्ञान के लिए एक नई पद्धति विकसित करने की महत्वकांक्षी योजना थी। इसे उन्होंने अपनी पुस्तक *न्यू ऑर्गनोन* में प्रस्तुत किया। इस पद्धति के दो भाग थे : एक भाग व्यवस्थित रूप से तथ्यों को एकत्रित करके आधारशिला रखना, और दूसरा आगमनात्मक विधि से ज्ञान का निर्माण करना। आगमनात्मक विधि प्रकृति की वैज्ञानिक समझ के लिए बेकन के प्रमुख योगदानों में से एक थी। ऐसा माना गया उनकी पद्धति मानव समाज के अध्ययन के लिए भी लागू होनी चाहिए थी। हालांकि, उन्होंने ईश्वर निर्मित ब्रह्मांड और इंद्रियों के अनुभव से प्राप्त ज्ञान के अध्ययन के बीच अन्तर किया। फिर भी, उन्होंने सोचा कि प्रकृति (ईश्वर की रचना) का अध्ययन धर्म के खिलाफ नहीं था क्योंकि यह वास्तव में प्रकृति की

पूजा नहीं थी और ना ही यह सत्ता या लाभ के लिए था। प्रकृति का अध्ययन और विज्ञान का लक्ष्य मूल रूप से मानवता की सेवा के लिए था।

पीयरे गॉसेन्डी (1592-1655)

गॉसेन्डी, एक फ्रांसीसी विचारक, सैद्धान्तिक अनुभववाद के दृष्टिकोण से तर्कवादी सिद्धान्तों पर देकार्त के साथ अपने कड़वे विवाद के लिए जाने जाते है। देकार्त के *मेडीटेशन्स* के प्रति उनके *आब्जेक्शनस* (1644) को उनके अनुभववाद पर कथन के रूप में माना जाता है। हालांकि गॉसेन्डी ने बुद्धि की भूमिका को अस्वीकार नहीं किया, उन्होंने इन्द्रिय अनुभवों को सत्य के माप के रूप में माना, भले ही वे घटनाओं या वस्तुओं की प्रकृति के कारणों की पूरी तरह से व्याख्या नहीं कर सके। रोजमर्रा के जीवन में बहुत सी चीजों को समझने के लिए इन्द्रियजनित अनुभवों से एकत्रित ज्ञान महत्वपूर्ण था। हो सकता है कि यह हमें प्रकृति या वस्तुओं के आन्तरिक अन्तर्भाग तक पहुँचने में सक्षम नहीं करता हो लेकिन यह निश्चित रूप से सत्य की कुछ झलक दे सकता था। सत्य आमतौर पर दिखावे के पीछे छिपा होता है, लेकिन व्यक्ति कुछ संकेतों के माध्यम से जिनको वह बाहरी रूप से अनुभव कर सकता है, इसे प्राप्त कर सकता है। उदाहरण के लिए, शरीर में छिद्र देखने में कठिन होते है, लेकिन पसीना हमारी त्वचा में उनकी उपस्थिति का संकेत देता है। एक और उदाहरण यह है कि सूरज की गर्मी मोम को पिघला देती है, जबकि यह मिट्टी को सख्त कर देती है क्योंकि इन दोनों की वास्तविक प्रकृति अलग-अलग होती है। हमारे इन्द्रियजनित अनुभव इन सांकेतिक चिह्नों को देखते हैं और उनके आधार पर हम सत्य तक पहुँच सकते हैं।

लॉक (1632-1704)

जॉन लॉक को आमतौर पर आधुनिक समय में पहला महत्वपूर्ण अनुभववादी दार्शनिक माना जाता है। वह सबसे महान् दार्शनिकों में से एक थे और दुनिया में सर्वश्रेष्ठ में से थे। उनके समय के दौरान, समाज और ब्रह्मांड के बारे में हमारे ज्ञान की वैधता के बारे में अक्सर सवाल पूछा जाता था। विभिन्न प्रकार के संशयवादी सभी प्रकार के ज्ञान पर संदेह उठा रहे थे और यह पूछा गया कि क्या ज्ञान, धर्म और नैतिकता के स्रोत के रूप में रहस्योद्घाटन पर भरोसा किया जा सकता था। यह एक चिन्ता का विषय बन गया कि ज्ञान को कैसे प्राप्त किया जाता है। लॉक ने प्रचलित बौद्धिक निराशावाद और उस व्यापक भावना का भी हवाला दिया जिसके अनुसार किसी भी प्रकार के ज्ञान की निश्चितता यदि असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य थी। यद्यपि लॉक एक पद्धति की खोज के माध्यम से ज्ञान के बारे में संशयवादी संदेहों पर काबू पाने की संभावना के बारे में बेकन की भाँति मुखर नहीं थे लेकिन वह निश्चित थे कि दुनिया के बारे में ज्ञान प्राप्त करना संभव था। साथ ही उन्होंने यह भी सोचा कि हमारी ज्ञान की सीमाएँ थी। इसलिए हालांकि अनेक चीजें थी जो जानी जा सकती थी वहीं अनेक ऐसी भी थी जिनके बारे में हमारा ज्ञान कभी भी पूर्ण या विश्वसनीय नहीं हो सकता था।

लॉक के निबन्ध *ऐस्से कंसर्निंग हूमन अंडरस्टेड़िंग* (1690) को अनुभववाद का एक मौलिक पाठ माना जाता है जिसने मानव ज्ञान के निर्माण में इन्द्रिय अनुभव और अन्तर्ज्ञान की भूमिका के पक्ष में तर्क दिया। उनके अनुसार यह अनुभव था जिस पर 'हमारे सभी ज्ञान आधारित हैं, और जिससे यह अन्ततः प्राप्त होता है'। लॉक ने

स्वीकार किया कि ज्ञान के सभी स्तरों को सीधे अनुभवों से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। लेकिन उन्होंने जोर देकर कहा कि सभी ज्ञान की शुरुआत अनुभवों में स्थित होती है, जो 'ज्ञान की सामग्री' प्रदान करते हैं। तब मानवीय तर्क उन पर कार्य करता है और उन्हें अंतिम रूपों में बदल देता है। इस प्रकार अनुभव जो उपलब्ध कराते हैं, वह स्वयं ज्ञान नहीं है बल्कि ज्ञान की सामग्री है। लॉक ने अपने अनुभववादी सिद्धान्त की योजना इस प्रकार बनाई:

1) विश्व में सभी चीजें ठोस और विशिष्ट हैं।

2) मानव इन्द्रियाँ सभी अनुभवों का आधार बनती हैं। इन वस्तुओं के इन अनुभवों से सभी सरल विचार उत्पन्न होते हैं।

3) मानव मस्तिष्क जन्म के समय एक कोरी स्लेट की तरह होता है।

4) उन्होंने दो प्रकार के इन्द्रिय अनुभवों के बीच अन्तर किया: प्राथमिक और द्वितीयक। प्राथमिक इन्द्रिय अनुभव वास्तविक दुनिया से सम्बन्धित अनुभवों जैसे संख्या, स्थान, स्थिति, गति और ठोसपन या घनत्व आदि के विचारों से सम्बन्धित हैं। द्वितीयक प्रकार के अनुभव अपेक्षाकृत गुणात्मक चीजों से सम्बन्धित थे जैसे कि वाणी या ध्वनि, स्वाद, रंग शक्ति आदि। ये वास्तविकता से सीधे और एकदम से मेल नहीं खाते बल्कि अपने मूल्यांकन और उन्हें निश्चित करने के लिए बुद्धि पर निर्भर थे।

5) जटिल विचारों को बनाने के लिए विभिन्न संयोजनों में मानव बुद्धि द्वारा सरल विचारों को एक साथ जोड़ा गया था। अन्त में, विचार और सिद्धांत इन विचारों पर निर्भर थे, जो बदले में अनुभवों पर निर्भर थे।

6) हालांकि सभी ज्ञान अन्ततः मानव अनुभवों की सीमाओं के भीतर ही सीमित थे। यहाँ तक कि संचारी भाषा भी उन अनुभवों से परे नहीं जा सकती है जो बुद्धि में विचारों को उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदार थे।

4.6 राजनैतिक सिद्धान्त

सत्रहवीं शताब्दी के दौरान, राज्य और समाज के नये सिद्धान्त सूत्रबद्ध किये गये थे जो पहले के सिद्धान्तों से काफी भिन्न थे। पूरे यूरोप में कई दार्शनिक थे जिन्होंने ऐसे राजनीतिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया। हालांकि, यहाँ हम केवल दो मुख्य राजनैतिक सिद्धान्तकारों – हॉब्स और लॉक की चर्चा करेंगे।

थॉमस हॉब्स (1588-1679)

थॉमस हॉब्स *डी सिव* (*ऑन द सिटीजन* 1842), *ऐलीमेन्टस ऑफ द लॉ* (1850) *लेवयाथन* (1851) के प्रकाशन से प्रसिद्ध हुए। उन्हें एक कट्टर राजनैतिक यर्थाथवादी माना जाता है। वह मनुष्यों के बारे में नैतिकतावादियों से अलग थे क्योंकि उनके अनुसार मनुष्य मूलरूप से हिंसा और चोरी के लिए प्रवृत्त थे। उनका सबसे प्रसिद्ध तर्क यह है कि मानव प्रकृति की स्थिति से सामाजिक संगठन के एक विकसित रूप में स्थानांतरित हो गये, जिसे नागरिकों पर सर्वोच्च शक्ति के साथ एक संप्रभु द्वारा नियंत्रित किया जाता था। प्रकृति की स्थिति एक आदिम स्थिति थी जहाँ जीवन 'एकान्त, निर्धन, गन्दा, क्रूर और छोटा' था। झगड़ा और युद्ध स्वाभाविक स्थिति की

चीजें थी। मनुष्यों की प्रतिस्पर्धी महत्वकाक्षांओं पर नियन्त्रण बनाए रखने के कोई संप्रभु शक्ति नहीं थी और उनके बीच लगातार झगड़े होते रहते थे। न्याय का कोई विचार नहीं था और मनुष्यों के बीच जंगल का न्याय प्रचलित था। इस तरह की एक-दूसरे के खिलाफ युद्ध की स्थिति में, मनुष्य भौतिक या सांस्कृतिक रूप से विकसित नहीं हो सकते थे। तनाव और युद्ध की इस निरंतर स्थिति से बचने के लिए, हॉब्स की राय में, मनुष्यों ने एक संप्रभु सत्ता को स्थापित करने के लिए एक अनुबंध किया जो युद्धों को रोकेगा या कम करेगा। एक बार एक शासक होने के बाद, समाज में व्यवस्था का आभास होगा।

हालांकि, इसका मतलब यह नहीं था कि राज्य अच्छा था। वास्तव में, हॉब्स का सोचना था कि सभी सरकारें खराब थी। संप्रभु भी अधिक से अधिक शक्ति की तलाश करेंगे। चूंकि सभी व्यक्तियों ने व्यक्तिगत स्वार्थ का अनुसरण किया और अपने लिए शक्ति तलाशी, इसलिए एक व्यक्ति का शासन बड़ी संख्या में लोगों के शासन से बेहतर था। इस प्रकार हॉब्स के अनुसार राजतंत्र लोकतंत्र की तुलना में बेहतर होगा क्योंकि पहले वाले में समाज को एक व्यक्ति के लालच और शक्ति का सामना करना होगा जबकि लोकतन्त्र के मामले में समाज को बड़ी संख्या में लालची व्यक्तियों के लिए मूल्य चुकाना होगा। यहाँ तक कि प्रजा-जन भी शासकों से बेहतर नहीं थे और वे जहाँ भी हो सके धोखाधड़ी करेंगे और कानूनों को तोड़ेंगे। हॉब्स ने कहा कि प्रजा-जन का इस तरह का व्यवहार बहुत बुरा था क्योंकि उन्हें यह एहसास होना चाहिए कि किसी भी प्रकार की संप्रभुता अराजकता की स्थिति से बेहतर थी जो कि शासकों के ना होने पर अपरिहार्य थी। हॉब्स ने अपेक्षा की कि केवल दो स्थितियों में शासकों का विरोध किया जा सकता था : एक जब उन्होंने शासित व्यक्तियों को मृत्यु दी हो और दूसरा जब वे अपने प्रजाजनों को सरंक्षण देने में विफल रहे हों। ऐसी स्थिति में शासित लोगों को किसी अन्य संप्रभु का दल चुनना चाहिए जो सुरक्षा के लिए निष्ठा में शामिल अनुबंध के अनुसार काम करेगा। हॉब्स ने तर्क दिया कि शासक और शासित के बीच पारस्परिक दायित्व एक 'प्रकृति का नियम' था, और यह लोगों का 'दायित्व' था कि वे उस प्रतिज्ञापत्र का सम्मान करें जिसके माध्यम से उनके प्राकृतिक अधिकारों का संरक्षण के बदले त्याग किया गया था। दूसरी ओर, शासक भी कुछ कर्त्तव्यों से बंधे थे, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण था अपने प्रजा-जनों की रक्षा करना।

राजनैतिक स्तर पर उन्होंने उस राजनैतिक व्यवस्था या राज्य से रहस्य का पर्दा पूरी तरह से हटा दिया जिसकी उन्होंने एक मानवीय रचना के रूप में कल्पना की जिसमें कोई दिव्यता नहीं थी। राज्य विशुद्ध रूप से एक मानव निर्मित और संचालित मशीन था। उन्होंने मानव व्यक्तित्व से भी पर्दा उठाया। उनके अनुसार मनुष्यों को अपरिपक्व आवेगों और इच्छाओं के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, जो कभी-कभी तर्क और आत्म संरक्षण की वृत्तियों द्वारा संचालित हो सकते थे। हालांकि किसी भी बिन्दु पर, मनुष्य नैतिक या आध्यात्मिक प्राणी के रूप में नहीं माने जाते थे, लेकिन वे विशुद्ध रूप से उपयोगितावादी प्राणी थे जो स्वार्थ और आत्मसंरक्षण द्वारा संचालित थे। इस प्रकार, यदि उन्हें स्वयं पर छोड़ दिया जाए, जैसा कि प्रकृति की स्थिति में था, तो मनुष्य निरंतर एक दूसरे से लड़ते रहेंगे। इसलिए सभी का सभी खिलाफ युद्ध की इस प्राकृतिक स्थिति बचने या कम करने के लिए एक मजबूत राज्य की आवश्यकता थी। शासन करने वाला संप्रभु सबसे ऊपर होना चाहिए और यह वह होगा जो सामाजिक, राजनैतिक, कानूनी या धार्मिक विवादों में अन्तिम मध्यस्थ हो। आध्यात्मिक और नैतिक कारणों का विचार शासक की शक्तियों को निर्धारित करने में कोई भूमिका नहीं

निभाएगा। हॉब्स की अवधारणा का शासक समाज का प्रशासन करने वाले कानूनों से ऊपर था। हॉब्स का मुख्य जोर विद्वानों और लोगों को मौजूदा शासक को चुनौती देने में निहित खतरों के बारे में चेतावनी देना था।

हॉब्स की सबसे बड़ी समस्या यह व्याख्यायित करने की थी कि कैसे वे लोग, जो पूरी तरह से स्वार्थपरक थे, उस कथित अनुबंध की पवित्रता को बनाए रखने में सक्षम होंगे जिसके द्वारा उन्होंने राज्य स्थापित करने और उसके साथ बने रहने की शपथ ली थी। उन्होंने इसका हल यह दावा करके किया कि यह 'प्रकृति का नियम' था।

जॉन लॉक

लॉक की रचना *ट्रीटीस ऑफ गवर्नमेन्ट* (1690) शासक के साथ लोगों के सम्बन्धों पर एक विमर्श था। लॉक का भी यह विश्वास था कि लोगों द्वारा प्रकृति की स्थिति से छुटकारा पाने के लिए, जिसमें वे जी रहे थे, सामाजिक अनुबन्ध के परिणामस्वरूप संप्रभुता का उदय हुआ। लेकिन, हॉब्स के विपरीत, लॉक ने सोचा था कि आदिम लोग रक्त-पिपासु असभ्य लोग नहीं थे, लेकिन ऐसे लोग थे जो विश्वास करते थे कि अन्य लोगों के जीवन, संपत्ति और स्वतंत्रता को कोई नुकसान नहीं होना चाहिए। लॉक के आदिम लोगों ने भी राज्य स्थापित करने के लिए एक अनुबंध किया, लेकिन उन्होंने एक ऐसी सरकार की स्थापना की जो उन्हें गुलाम नहीं बनाएगी बल्कि उनकी संपत्ति और स्वतंत्रता के संरक्षण और विनियमन के लिए काम करेगी। इसलिए, हॉब्स के विपरीत लॉक के आदिम मानव तर्कसंगत और नैतिक थे और जो राज्य उनके अनुबंध के माध्यम से उभरा, वह दमनात्मक नहीं बल्कि प्रतिनिधिक था। एक ऐसी सरकार जो लोकप्रिय सहमति पर आधारित है और जो मनमानी नहीं करेगी। हालांकि, न्याय बनाए रखने के लिए लॉक ने विधायी और कार्यकारी कार्यों और शक्तियों के पृथक्कन का सुझाव दिया। इस व्यवस्था में, कार्यपालिका पूरी तरह से सरकार के विधायी अंग के अधीन होगी।

लॉक का मानना था कि सरकार को मनमाना और सत्तावादी नहीं होना चाहिए और सरकार की अत्यधिक शक्ति और सत्ता अनैतिक थी। उनका यह भी विश्वास था कि सम्भाषण की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। शासकों को वैध सत्ता का प्रयोग करना चाहिए और उन्हें अपनी न्यायसंगत सत्ता की सीमा नहीं लांघनी चाहिए। शासक की ओर से ज्यादती के मामले में लोगों का विद्रोह करना सही होगा। लॉक ने दैवीय अधिकार राजतन्त्र को अस्वीकार कर दिया और एक संवैधानिक सरकार का समर्थन किया, जो उस समय इंग्लैंड में प्रचलित थी। उन्होंने व्यक्ति के अधिकारों पर जोर देकर उदारवादी विचार को जन्म दिया।

बोध प्रश्न 2

1) अनुभववाद के मुख्य सिद्धान्तों पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) थॉमस हॉब्स के राजनैतिक सिद्धान्त पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4.7 सारांश

सत्रहवीं शताब्दी संशयवाद का युग था। लगभग सभी विचारकों ने एक या दूसरे रूप में संशयवाद की अभिव्यक्ति की या उसका उपयोग किया। हालांकि, यह एक ऐसा दौर भी था जिसमें काफी हद तक संशयवाद को निर्वासित कर दिया गया था और निश्चितता को एक सिद्धान्त के रूप में स्थापित किया गया था। सार्वभौमिक व्यापक वृतान्त, स्वस्पष्ट मूलभूत सत्य, वैज्ञानिकता और वस्तुनिष्ठता घोषित बौद्धिक मूल्य बन गये थे। इस अवधि के दौरान, कम से कम बौद्धिक स्तर पर आधुनिकता भी स्थापित की गई थी। इसकी उत्पत्ति देकार्त के दर्शन, राज्य सत्ता पर हॉब्स के सिद्धान्त और न्यूटन के आधुनिक विज्ञान के संकलन में निहित देखा जा सकता है।

यद्यपि कुछ बौद्धिक हलचल आम लोगों के बीच दृष्टिगोचर था, लेकिन यह अधिकतर शिक्षित लोगों में था कि नई बौद्धिक धाराएँ पाई जा सकती थी। इन बौद्धिक प्रवृत्तियों में समाज और ब्रह्मांड की धारणा में स्पष्ट बदलाव शामिल थे। परंपरागत ज्ञान, जिसमें प्राचीन यूनानी और रोमन दार्शनिकों से प्राप्त ज्ञान शामिल था, उस पर सवाल उठाए गये थे और अनेक बार उसे अस्वीकार कर दिया गया था। ब्रह्मांड की व्याख्या और स्पष्टीकरण करने के चर्च के अधिकार की उपेक्षा करने की प्रवृत्ति भी बढ़ी थी। और यद्यपि इनमें से अधिकांश बुद्धिजीवियों को धर्म और ईश्वर में विश्वास था, लेकिन इनकी व्याख्या पारम्परिक धार्मिक मान्यताओं से स्पष्ट रूप से भिन्न थी। इस अवधि के दौरान प्रकृति, मानवता, समाज और सरकार के बारे में सोचने के नये तरीके उभरे जो पारंपरिक और धार्मिक धारणाओं से भिन्न थे।

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 4.3 देखें।

2) भाग 4.4 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 4.5 देखें।

2) भाग 4.6 देखें।

इकाई 5 कला, संस्कृति और समाज*

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 ऐतिहासिक संदर्भ और विविधता की परिस्थितियाँ

5.3 दरबारी समाज और पूंजीपति वर्ग : संस्कृति के पहलू

5.4 दृश्य कलाएँ : स्थापत्य कला, चित्रकला, मूर्तिकला

5.4.1 कलात्मक शैलियाँ

5.4.2 स्थापत्य कला

5.4.3 चित्रकला

5.5 संगीत

5.6 साहित्य

5.7 सामाजिक जीवन और विश्राम

5.8 लोकप्रिय-संस्कृति

5.9 सारांश

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको निम्नलिखित करने में सक्षम होना चाहिए:

- अध्ययन के तहत की अवधि के दौरान सांस्कृतिक उत्पादन में मुख्य तत्वों को पहचानना;
- इस अवधि के दौरान सांस्कृतिक उत्पादन को सामाजिक राजनैतिक परिवर्तनों से जोड़कर देखना और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के बीच निरंतरता और परिवर्तनों को देख पाना; और इन्होंने बाद के घटनाक्रमों का मार्ग कैसे प्रशस्त किया?;
- इस अवधि के दौरान कला, स्थापत्य कला, संगीत और साहित्य में महत्वपूर्ण हस्तियों से अवगत होना;
- पूरे यूरोप में सांस्कृतिक प्रवृत्तियों में विविधता का गुणग्राही होना;
- इस अवधि के दौरान बौद्धिक और सामाजिक परिवेश का एक व्यापक विचार समझ पाना; और
- इस अवधि के समाज और उसकी परिपाटी का कुछ विचार होना और यह समझ पाना कि क्यों बौद्धिक और सांस्कृतिक उत्पादन के कुछ क्षेत्रों का विस्तार हुआ, फिर भी कैसे इसने जनता के विशाल भागों को इनसे अलग रखा और कैसे इनमें वर्गों के अनुसार विविधता दिखाई पड़ती है।

* इकाई लेखक : डॉ. नलिनी तनेजा

5.1 प्रस्तावना

इतिहास की किसी विशेष अवधि में जीवन के सभी पहलू एक-दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। कला, संस्कृति और समाज के सम्बन्ध में, पुनर्जागरण काल की कला और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के अन्य रूप पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों के दौरान समाज में होने वाले परिवर्तनों में निहित थे। इस इकाई में हम इस समझ के साथ सत्रहवीं और प्रारम्भिक अठारहवीं शताब्दी के सामान्य ऐतिहासिक घटनाक्रम के बीच संबंधों, और इस अवधि के दौरान प्रचलित कला, साहित्य, संगीत और समाज का अध्ययन करेंगे। जब आप इस इकाई को पढ़ेंगे तो आप देखेंगे कि जब हम कला और संस्कृति में प्रचलित प्रमुख प्रवृत्तियों की बात करते हैं तो ये ज्यादातर कुलीन संस्कृति के रुझानों से सम्बन्धित होते हैं जो कि कला के इतिहास और संस्कृति के सामान्य अध्ययन का केन्द्र बिन्दु रहा है। हम इसकी व्यापकता की सीमाओं को इंगित करने का ध्यान रखेंगे और लोकप्रिय संस्कृति के क्षेत्र में क्या हो रहा था, उसके बारे में भी कुछ कहेंगे।

सोलहवीं शताब्दी के अंत में और सत्रहवीं शताब्दी में पश्चिम और पूर्वी यूरोप के सामाजिक और राजनैतिक विकासों के बीच एक व्यापक अन्तर था और मध्य यूरोप की विशेषताएँ भी, उदाहरण के लिए ऑस्ट्रिया, हंगरी और तुर्की में समान नहीं थी। इनका इन क्षेत्रों की कला, संस्कृति और समाज पर कुछ असर पड़ा। इंग्लैंड और महाद्वीप में भी जिस तरह का साहित्य और कला का उत्पादन हुआ, हम उनके कुछ सामान्य पहलुओं और अंतरों का उल्लेख करेंगे।

हालांकि यूरोप के अलावा अन्य महाद्वीपों का अध्ययन इस इकाई के दायरे से बाहर है, लेकिन हम आपको कम से कम इस बात का इशारा भी करेंगे कि विश्व के अन्य भाग कला, संस्कृति और सामाजिक परिवर्तनों से महरूम नहीं थे। हालांकि इतिहास लेखन में एक ऐसी प्रवृत्ति रही है जिसमें पश्चिम को मानव जाति की प्रगति का मार्गदर्शक के रूप में देखा जाता रहा है और जिसमें अन्य महाद्वीप न केवल अर्थव्यवस्था में बल्कि सभ्यता के अन्य तत्वों में भी पिछड़े हुए दिखाए जाते थे। हालांकि पश्चिम द्वारा उनके जीते हुए देशों को 'सभ्य बनाने' का विचार अब बदनाम हो चुका है लेकिन फिर भी पश्चिम को अग्रणी मानने का एक पूर्वाग्रह है, विशेषकर सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूपों में जिसकी हम यहाँ बात करने जा रहे हैं। हम आपको इनमें से कुछ पूर्वाग्रहों और पूर्वधारणाओं से मुक्ति दिलाने से कोशिश करेंगे।

इसके अलावा समाज और संस्कृति में परिवर्तन रातों-रात नहीं होते हैं। पुनर्जागरण के दौरान शुरू किए गए और फलने-फूलने वाले कुछ रुझान सत्रहवीं शताब्दी में जारी रहे जबकि कई नये पहलू जो अठारहवीं शताब्दी के अंत में फ्रांसीसी क्रांति और औद्योगिक क्रांति के युग में संस्कृति की पहचान बन गये। सत्रहवीं शताब्दी के अंत की और प्रारम्भिक अठारहवीं शताब्दी की कलात्मक अभिव्यक्तियों के द्वारा उनका पता लगाया जा सकता है।

दूसरे शब्दों में, इस अवधि के दौरान सांस्कृतिक और सामाजिक अभिव्यक्तियाँ वास्तविक जीवन की तरह ही जटिल और विविध थी। यह अवधि पुनर्जागरण काल और फ्रांसीसी क्रांति और औद्योगिक क्रांतियों द्वारा निर्मित आधुनिक दुनिया के बीच का एक संक्रमण काल है लेकिन यह अपने आप में भी महत्वपूर्ण है। हमने इंग्लैंड की क्रांति और सत्रहवीं शताब्दी की वैज्ञानिक क्रांतियों पर इकाइयों में इसके बारे में कुछ

पढ़ा है। आपने देखा होगा कि उनके द्वारा प्रतिनिधित्व की गई या पुनर्स्थापित निरंतरताओं के बावजूद उन्हें क्रांति का नाम दिया गया है।

चूंकि बौद्धिक और राजनैतिक विचार और वैज्ञानिक क्रांति और जनसांख्यिकीय परिवर्तनों, परिवार और वर्ग सम्बन्धों के बारे में पृथक इकाइयाँ मौजूद हैं। इसलिए यहाँ हम केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के औपचारिक पहलुओं पर चर्चा करेंगेः कला, साहित्य, संगीत और स्थापत्य कला। इनमें से भी हम चयनात्मक रहेंगे और प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए हम केवल कुछ महत्वपूर्ण हस्तियों और उनकी रचनाओं का उल्लेख करेंगे। हम एक यह दूसरे क्षेत्र में एक या दो कलारूपों पर ध्यान देते हुए अपने तर्कों को स्पष्ट करेंगे ना कि प्रत्येक देश के सांस्कृतिक उत्पादन के सभी पहलुओं का वर्णन करेंगे। इसका उद्देश्य आपको व्यापक और महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों से परिचित कराना है।

5.2 ऐतिहासिक संदर्भ और विविधता की परिस्थितियाँ

सत्रहवीं शताब्दी और अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के दौरान कला और संस्कृति के विकास यूरोप में पुनर्जागरण काल के सांस्कृतिक कलारूपों और इस अवधि के सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तनों से उत्पन्न हुए थे। इंग्लैंड में क्रांति और गृहयुद्ध के विक्षोभ और प्रतिवादों की समाप्ति पुनर्स्थापना के साथ हुई। इसने कुछ चीजों को बहाल किया और कुछ अन्य को प्रतिस्थापित किया या बदल दिया। इससे एक नयी स्थायी व्यवस्था निर्मित हुई जिसमें संसद सत्ता का मुख्य केन्द्र बनी और एक प्रबल नया कुलीन वर्ग और पूंजीपति वर्ग नियन्त्रण की स्थिति में आया। इसका प्रतिबिंब इस अवधि के साहित्य में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, शेक्सपियर एक भीमाकार की तरह इसकी पहचान बनते हैं और अंग्रेजी नाटक और कविता में अनेक अन्य के साथ बदलाव को दर्शाते हैं। ताज द्वारा संरक्षण के पतन, निजी उद्यम के विकास और धर्मसुधार ने सांस्कृतिक उत्पादन की परिस्थितियों को अपरिवर्तनीय रूप से बदल दिया।

फ्रांस में निरकुशतावाद की विजय और लुई XIV और लुई XV की दरबारी संस्कृति के तहत् और उनकी वाणिज्यवादी नीतियों ने ऐसी निर्णायक परिस्थितियाँ तैयार की जिनके तहत कलाकारों ने काम किया और वे अस्तित्व में रहे। फ्रांस, विशेष रूप से पेरिस और वर्साय, अनेक तरीके से यूरोप की सांस्कृतिक राजधानी बन गए और इसका सांस्कृतिक प्रभाव पूरे यूरोप में कलाकारों और बुद्धिजीवियों और अन्य शासकों के दरबारों में भी महसूस किया गया।

सोलहवीं शताब्दी के बाद स्पेन और इतालवी राज्यों के पतन और आर्थिक क्रियाकलाप के भू-मध्यसागर से अटलांटिक सागर की तरफ स्थान परिवर्तन ने इन देशों में साहित्य और कला के संरक्षण को प्रमुख रूप से प्रभावित किया। उदाहरण के लिए, इटली अब उतना जीवंत नहीं रहा जितना यह पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में था और वेनिस और रोम के विभिन्न राज्य विभिन्न सांस्कृतिक प्रभावों को दर्शाते हैं, जो इन राज्यों में सत्रहवीं शताब्दी की राजनैतिक और आर्थिक स्थिति पर आधारित थे।

डच व्यापार की समृद्धि, वस्त्र उत्पादन का विकास और हालैंड में धन का प्रवाह और फ्रांस से प्रताड़ित ह्यूनॉट्स का प्रवासन डच स्कूल ऑफ पेन्टिग के उदय में प्रमुख कारक थे, जिसे यूरोप में सत्रहवीं सदी के दौरान सबसे महत्वपूर्ण माना जाता था।

जिन क्षेत्रों को आज हम जर्मनी के रूप में जानते हैं वह अभी तक एक राष्ट्र-राज्य नहीं बने थे। यह राजकुमारों द्वारा शासित छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था जो बन्दरगाहों से दूर थे और मध्यम वर्ग जो इस अवधि में विकसित होने शुरू हुए वह राजकुमारों की सेवा में रत छोटे नौकरशाह थे या दुकानदार और स्कूलों के शिक्षक। कुलीन संस्कृति अभी भी इसलिए प्रमुख थी और भूमि या अफसरशाही पर आधारित उच्च भू-संपत्तिवान आभिजात्य वर्ग पर फ्रांसीसी दरबार और फ्रांसीसी विश्वविद्यालयों का प्रभाव व्याप्त था। जर्मन पुनर्जागरण के प्रारम्भिक संवेग, जो सोलहवीं शताब्दी के जर्मन राज्यों में महत्वपूर्ण थे, वह 30 साल के युद्ध और उसके परिणामों के कारण खो गए थे, जिसने इस क्षेत्र के लगभग प्रत्येक यूरोपीय देश को शामिल किया था।

ऑस्ट्रियाई साम्राज्य बहुराष्ट्रीय था, मध्य यूरोप में कृषि-दासता अभी भी समाप्त नहीं की गई थी और पूरे क्षेत्र में संस्कृति आभिजात्य वर्गीय थी और कुलीन और लोकप्रिय संस्कृति के बीच भारी अन्तर था। रूसी साम्राज्य में, जिस 'पश्चिमीकरण' को प्रोत्साहन दिया गया वह विचारों की बजाय विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में था। कृषि-दासता सामाजिक संरचना की मूल विशेषता थी और जार के पास यूरोप की तुलना में कहीं अधिक निरकुंश शक्तियाँ थी। तुर्की भी एक ऐसा ही अन्य क्षेत्र था। संक्षेप में सांमतवाद के पतन के साथ आने वाले आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तनों और पूरे पुनर्जागरण के प्रभाव को इन समाजों में अभी अनुभव नहीं किया गया था। इसलिए, पश्चिमी यूरोप में उभरते पूंजीवाद और पूंजीवादी मध्य वर्गीय विकास से उत्पन्न संस्कृति में हुए बदलावों का विस्तार मध्य और पूर्वी यूरोप तक नहीं हुआ था, जहाँ संस्कृति अधिक आभिजात्य वर्ग तक ही सीमित रही और जो पश्चिमी यूरोप के सांस्कृतिक केन्द्रों में शिक्षित और उनसे प्रभावित थे। जर्मनी का भी एक प्रभाव रहा लेकिन यह केवल उन्नीसवीं सदी से था। मध्य और पूर्वी यूरोप के सांस्कृतिक संसाधन इसलिए आंशिक रूप से देशी और स्वायत्त थे और आंशिक रूप से पश्चिमी यूरोप से प्राप्त हुए थे। लेकिन जिस अवधि को हम देख रहे हैं, सत्रहवीं शताब्दी और अठारहवीं शताब्दी जो फ्रांसीसी और औद्योगिक क्रांति से पहले की अवधि है, उसमें पश्चिमी यूरोप का प्रभाव न्यूनतम था, यहाँ तक कि उच्च भू-संपत्तिवान आभिजात्य वर्ग में भी।

यह सब देखते हुए, यह कहा जा सकता है कि शासक वर्गों, और शिक्षितों की संस्कृति और सोच में तथा मुख्य रूप से ग्रामीण लोकप्रिय संस्कृति में भारी अंतर था। यह अंतर इंग्लैंड में सबसे कम था और रूसी साम्राज्य के कुछ भागों में सबसे ज्यादा। इस अवधि की शुरुआत से लेकर फ्रांसीसी क्रांति के एक दशक पहले तक सांस्कृतिक उत्पादन की विषयवस्तु और नई शैलियों का विकास इसको चिह्नित करता है जैसा कि राजनीति और सामान्य रूप से समाज में परिवर्तनों को भी। दरबारी समाज बने रहे, लेकिन पूंजीपतियों जैसे नये सामाजिक वर्गों ने राजनीति के साथ-साथ कला और संस्कृति में भी अपनी उपस्थिति महसूस कराई।

5.3 दरबारी समाज और पूंजीपति वर्ग : संस्कृति के पहलू

यूरोपीय दरबारी समाज भौगोलिक और सामाजिक रूप से हमेशा बहु-केन्द्रित रहा था, लेकिन सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से इस पर वर्साय के फ्रांसीसी दरबार का सांस्कृतिक

प्रभुत्व स्पष्ट थाः इसके फैशन, फ्रांसीसी भाषा और चित्रकला और स्थापत्य शैली की नकल पूरे यूरोप के सभी दरबारों में की जाने लगी थी। यह एक जीवन शैली थी जिसने पारम्परिक कुलीन वर्ग की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के कई प्रारूपों को छोड़ दिया था और इस प्रक्रिया में कई नये तत्वों को अपनाया जो व्यापार और वाणिज्य और दुनिया के अन्य क्षेत्रों के ज्ञान के परिणामस्वरूप और साथ ही साथ धनी पूंजीपति वर्ग के कारण आए। यद्यपि यह पूंजीपति वर्ग था, जिसका उद्देश्य अभिजात्य वर्ग की जीवन शैली को अपनाना था, लेकिन इस प्रक्रिया में पूरे विशेषाधिकार वाले सामाजिक समूहों के सांस्कृतिक परिवेश और आकांक्षाएँ बदल जाती हैं। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में और अठारहवीं शताब्दी में कुलीन संस्कृति के इस परिवर्तन के प्रमुख कारक थेः परिवार की विरासत और खिताब और धन और संरक्षण इसको निर्मित करने वाली इकाइयाँ थीं। दरबारों के तौर तरीके और शिष्टाचार, पुरुषों के विग और उनकी शैलियाँ, तार का सहारा लेकर स्त्रियों की पोशाकों को भड़कीला आकार देना, संरक्षण के निजी सैलून आदर्श बन गए।

लेकिन सत्रहवीं शताब्दी की अपेक्षा अठारहवीं शताब्दी बहुत गहरे अर्थों में कला के धर्म-निरपेक्षीकरण का युग था। जब यूरोप के अनेक शहरों में कला चर्च और दरबार के क्षेत्रों से मुक्त होकर धर्म-निरपेक्ष स्वरूप और एक आधुनिक सांस्कृतिक क्षेत्र अपने लिए स्थापित करती है। चर्च के प्रभुत्व के बाहर, फलते-फूलते विश्वविद्यालय और शिक्षा का विस्तार इसमें एक महत्वपूर्ण कारक था। यह एक महान सामाजिक मंथन का युग था। रुडे इंगित करते हैं कि हालांकि ''अठारहवीं शताब्दी कला का एक स्वर्ण युग'' या ''इससे पहले की शताब्दी की तरह साहित्यिक दिग्गजों का युग नहीं था'' फिर भी ''यह असाधारण रूप से कलात्मक और साहित्यक गतिविधि के लिए उर्वरता का युग था जिसमें शायद पूर्वार्द्ध की बजाए इसका उत्तरार्द्ध अधिक उल्लेखनीय है''। (रुडे, पृष्ठ 139)। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में वर्साय के दरबार का सांस्कृतिक प्रभाव प्रधान था जबकि अठारहवीं शताब्दी पूंजीपति वर्ग की दुनिया पर अधिक केन्द्रित थी। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक सामान्य या साधारण लोगों को भी कला और साहित्य में स्थान मिलने लगा। लोकप्रिय संस्कृति ने अपने समय के प्रभावों को महसूस किया क्योंकि बाजार, व्यापार और वाणिज्य और नगरों के विकास के माध्यम से संचार प्रणालियों का प्रसार हुआ।

5.4 दृश्य कलाएँ : स्थापत्य कला, चित्रकला, मूर्तिकला

लुई XIV ने कला सरंक्षण और उद्देश्य और इसलिए इसके आधार के लिए पैमाने निर्धारित किए। सभी कलाओं का उपयोग ''फ्रांसीसी राजशाही के महिमामंडन के उद्देश्य से'' किया गया था। एक भव्य महल के साथ वर्साय में राजधानी बनाई गई थी और 1664 से वहाँ संगीत, नाटक और बेले नृत्य नाटकों के त्यौहार आयोजित किये जाते थे। महल की स्थापत्य कला ने और चित्रकला ने विशेषकर चित्रांकन में अपनी स्वयं की एक शैली निर्धारित की, जिसकी दूसरे दरबारों ने नकल की। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में इस महत्वपूर्ण प्रभाव ने अन्य प्रेरणाओं को जन्म दिया। कला और संगीत दोनों दरबारों और चर्च द्वारा प्रायोजित और संरक्षित किये जाते थे। अठारहवीं शताब्दी तक आते-आते फिलॉसफर (दार्शनिकों) के विचार संस्कृति की दुनिया में फैलने शुरू हो जाते हैं। कलाकारों और विचारों के लिए स्वतंत्रता का समर्थन करना कुछ लोगों ने शुरू कर दिया और एक कला और साहित्यक आलोचना की संस्कृति विकसित हुई जिसने कला और साहित्य में सार्वजनिक अभिरुचियों को आकार देने में

मदद की। संस्कृति के धर्म निरपेक्षीकरण की दिशा में एक प्रवृत्ति थी लेकिन चर्च अभी भी एक प्रमुख संरक्षक बना रहा।

5.4.1 कलात्मक शैलियाँ

इस लम्बी अवधि में सत्रहवीं सदी के मध्य से अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक कई कलात्मक शैलियाँ थीं, जो विभिन्न दृश्य कलाओं में परिलक्षित हुईं : रीतिवाद (मेनरिज्म), बरॉक-शास्त्रीय, रॉकोको और रोमांटिसिज्म। वे कुछ हद तक साहित्यक शैलियों में भी परिलक्षित होती हैं।

जैसा कि अरनोल्ड हाउसर हमें बताते हैं, ''रीतिवाद (मेनरिज्म) संकट की एक कलात्मक अभिव्यक्ति है, जो सोलहवीं शताब्दी में पूरे पश्चिम यूरोप को हिलाता है''। इटली के आक्रमणों के बाद, जिनके प्रभाव सत्रहवीं शताब्दी तक महसूस किये जाते रहे, पुनर्जागरण कला रूपान्तरित हो गई और पुनर्जागरण के कलाकारों के जीवन के आखिरी दौर के कलाकार्यों में यह संकट झलकता है : उदाहरण के लिए, माइकल एंजेलो और रफायल की कृतियों में। पुनर्जागरण काल की विशेषता अनुपात और स्थान के बोध द्वारा परिलक्षित होती है। रीतिवाद (मेनरिज्म) जो इतालवी शब्द शैली से उत्पन्न है, उसने इन तत्वों की अतिरंजना और विकृति को प्रतिबिंबित किया, विशेषकर कभी-कभी कला प्रवीण कलाकारों द्वारा परिष्कृत तरीके से सुन्दर कृतियाँ बनाई गई। लेकिन फिर भी, प्राकृतिक परिवेश के साथ अनुपात का अनुपालन (पुनर्जागरण कला और स्थापत्य कला की एक विशेषता) गड़बड़ा गया।

इसके बाद, विशेष रूप से सत्रहवीं शताब्दी के दरबारों के संरक्षण में दरबारी बरॉक शैली आई। इसकी विशेषताएँ थीः भव्यता, पैमाना, नाटकीयता, जीवंतता और गति और अतिरंजित भावनात्मक प्रचुरता, जो इस समय की सभी कलाओं में परिलक्षित हुई। इसमें विन्यास असाधारण है। रंग का नाटकीय उपयोग है और प्रकाश और छाया, प्रकाश और अंधेरे का उच्च अंतर है। विभिन्न कलारूपों के बीच विभेदों को मिटा देने की प्रवृत्ति भी है और सोलहवीं शताब्दी के मध्य से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक धार्मिक और सामाजिक कलह और युद्धों के अन्त के बाद कला और संगीत में सामंजस्य बनाने की प्रवृत्ति भी है। बरॉक कला के लिए प्रेरणा रोमन कैथोलिक चर्च और स्पेन और फ्रांस के राज्यों और रोमन कैथोलिक राज्यों और उनके संरक्षण के प्रभाव के कारण मिली ताकि प्रोटेस्टेंवाद का मुकाबला किया जा सके।

रोकोको शैली बरॉक से ही विकसित हुई और इसने डिजाइन के तत्वों को और अधिक सुसम्पन्न बनाया विशेषरूप से अत्यधिक सजावट और आंतरिक भागों के अलंकरण पर बल देकर सूखे रंगों का प्रयोग करके विषम प्रारूपों की तरफ दुबारा वापसी हुई। यह बरॉक से मुख्य रूप से हल्का, हवादार और सजावटी होने में भिन्न था और इसने कलाओं में धर्म-निरपेक्षीकरण को कुछ हद तक प्रतिबिंबित किया और बरॉक की भव्यता की तुलना में छोटे पैमानों को प्राथमिकता दी।

कलाओं में प्रकृतिवाद की वापसी रोमांटिसिज्म की विशेषता थी और यह अठारहवीं शताब्दी का विकास है। यह औद्योगीकरण और शहरीकरण की शुरुआत को चिह्नित करता है जिसमें तर्क और विज्ञान पर बल दिया गया और नये सामाजिक अन्तर्विरोध उभरे जिन्होंने उस अवधि के बुद्धिजीवियों के कुछ भागों में उसकी ललक या प्यार उभारा जो अतीत बन चुका था और जिन्होंने भावनाओं और आवेग को मानवीय उद्यम के प्रेरक के रूप में देखने की वकालत की।

5.4.2 स्थापत्य कला

बरॉक पहली बार रोम में सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में दिखाई दी जहाँ से यह जर्मनी, स्वीडन, पौलेंड, स्पेन, पुर्तगाल और स्पेन के प्रभुत्व में लेटिन अमेरिका तक फैल गई। इसके पीछे सौहार्द और टकरावों के सामंजस्य का विचार था, और इसलिए सत्तारूढ़ लोगों की भव्य प्रस्तुति की गई और जनता इसमें निमग्न हो गई। यह बहुत लोकप्रिय हो गई और इसने आश्चर्य और विस्मय पैदा किया। इसके भवनों में चर्च, महल, चौक और फव्वारे शामिल थे जो सभी दरबारी संस्कृति के लिए प्रमुख थे। पूरे यूरोप में अलंकृत ओपेरा हाउस भी निर्मित किए गये।

निरंकुशतावाद ने स्थापत्य कला और अन्य कलाओं में स्मारकवाद को प्रोत्साहन दिया। राजधानियों को राजशाही की सत्ता को दर्शाने के लिए और राज्य की प्रतीकात्मक शक्ति को दर्शाने के लिए डिजाइन किया गया था जहाँ शाही सेनाएँ परेड कर सकती थीं, और जिन पर सरकारी भवन और शाही निवास और शाही सेनाओं के लिए बैरक भी बने थे।

शैली के संदर्भ में बरॉक को संयमित क्लासिज्म के साथ जोड़ा गया था जो भव्यता के साथ परिष्करण को दर्शाता है। कला की रॉयल अकादमियाँ स्थापित की गई जिसके परिणामस्वरूप फ्रांस में शास्त्रीय नियमों को प्रभावित किया गया जिनसे मूर्तिकार और चित्रकार निर्देशित होते थे। ले ब्रुन, उस समय के एक कलाकार थे जिनको इसका प्रभारी बनाया गया, और जल्द ही अकादमियों में क्या पढ़ाना चाहिए था और किस प्रकार की शैलियों को प्रोत्साहन दिया जाना था इसके बारे में निर्देश जारी किए गए। जर्मन ऑस्ट्रियाई लोगों ने इसमें अपनी मूल विशेषताएँ जोड़ी। सेन्ट पीटर्सबर्ग इतालवी क्लासिसिज्म और रूसी सजावटी रूपाकंनों का मिश्रण था।

बरॉक और क्लासिज्म के इस संयोजन में, ''मूर्तिकार कलाकारों ने अपने भवनों की कल्पना कला की सम्पूर्ण कृति के रूप में की जिसमें तराशी गई मूर्तियाँ, विस्तृत दीवारें और छत की चित्रकारी केवल सजावट नहीं थी बल्कि एक उच्च स्तरीय जटिल कलात्मक अवधारणा का अभिन्न अंग थी।'' अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में वास्तुकार जे. बी. फिशर वॉन एरलाक (1656-1723) द्वारा निर्मित विएना का सेंट चार्ल्स बोरोमीयो का चर्च एक प्रमुख उदाहरण है। वास्तुकार और चित्रकारों ने ऐसे भवनों के निर्माण में परस्पर सहयोग किया। कई वास्तुकार मूर्तिकार भी थे। बर्नीनी स्थापत्य कला में एक महत्वपूर्ण हस्ती थे।

रोकोको शैली भी फ्रांस में लुई XV के शासन काल के दौरान उत्पन्न हुई और जर्मन और इतालवी राज्यों में फैल गई। इसका विशेष रूप से जर्मन मठों और चर्चों के पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान था। इनमें डिजाइन की समृद्धि रोकोको के अनुरूप थी और पूरे यूरोप में चर्च निर्माण शैली के रूप में व्यापक हो गई। इंग्लैंड एक अपवाद था जहाँ ग्रामीण आवास रोम या फ्रांस की शैली की बजाए वेनिश की भवन निर्माण शैलियों पर आधारित थे, जो कहीं अधिक साधारण थे। उनके शहर के चौक भी उतने बड़े और भव्य नहीं थे।

5.4.3 चित्रकला

चित्रकला और मूर्तिकला में भी, सत्रहवीं शताब्दी के दौरान कलाकार दरबार, कुलीन वर्ग और चर्च पर आश्रित थे। चित्रकला में निरकुंशतावाद का सबसे स्पष्ट चित्रण फ्रांस

में लुई XIV के प्रारूप का पालन करते हुए, सम्राटों को यशस्वी के रूप में दर्शाते चित्रों में परिलक्षित होता है। बरॉक भवनों में अधिकांश चित्रकारी दीवारों पर सजावट के रूप में या महलों और चर्चों की छतों पर की गई थी। अठारहवीं शताब्दी के चित्रकला के उपयोग के दायरे और प्रकारों को बदल दिया। कलाकार को अब अपने चित्र फलक के माध्यम से जाना जाता था, ना कि वास्तुशिल्प परिदृश्य के हिस्से के रूप में।

अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में, ग्रीक और धार्मिक विषयों को जोड़ा जाने लगा और फिर रोजमर्रा के जीवन से लिए गये नये रूपाकंनों और कुलीन वर्ग और धनी व्यक्तियों के छाया चित्रों ने इसका स्थान ले लिया। दरबार समाज और कुलीन वर्ग की जीवन शैली, राजशाही की भव्यता पर ध्यान केन्द्रित करने की जगह चित्रकला की नई विषयवस्तु बन गई। चित्रकलाओं का स्वरूप अधिक सामाजिक हो गया, जैसे ही व्यक्तियों और छायाचित्रों को चित्रित या रेखा चित्रित किया जाने लगा और उनके आकार भी छोटे हो गये। पोशाक, सांस्कृतिक कलाकृतियाँ और विन्यास जिस तरह से चित्रित किये गये वह हमें अठारहवीं शताब्दी के समाज के बारे में काफी कुछ बताते हैं। चित्रों को अब दीर्घाओं या घरों की दीवारों पर स्थापित किया जाता था, और पारम्परिक प्रारूप की बजाए इन्हें रंगों और कलाकार की व्यक्तिगत अभिरुचि के अनुसार अधिक स्वतंत्रता के साथ बनाया जाने लगा। छायाचित्र लोकप्रिय थे और लगभग सभी महत्वपूर्ण कलाकारों ने छायाचित्र बनाए। चित्रों की विषयवस्तु काफी विविध थी। शैलियों में, कलाकार परम्परा और स्वतंत्रता के बीच अनिश्चय की स्थिति में रहे। प्रतिकृतियाँ लोकप्रिय हुई और अनेक कलाकार इनके निर्माण में लगे हुए थे।

पहली सार्वजनिक कला प्रर्दशनी 1737 में पेरिस में आयोजित की गई थी। फ्रांसीसी चित्रकार जीन एंटोनी वाट्टेउ (1684-1721) अपनी कृतियों में इस प्रवृत्ति को प्रतिबिंबित करने वाले पहले व्यक्ति थे। वह न केवल विषयवस्तु बल्कि सजावट की दृष्टि से और छोटे पैमाने की रोकोको शैली के प्रतिनिधि थे। फ्रेंकोइस बाउचर ने कुछ कामुक चित्र बनाए, होनोर फ्रेगोनाई ने छायाचित्र और देहाती दृश्य चित्रित किए। जे. बी. ग्रीजे डच चित्रकारों से प्रभावित थे और उन्होंने घरेलू जीवन को चित्रित किया। जोसेफ वर्नेट ने समुद्री दृश्य और बन्दरगाहों और प्रकृति के नजारों को चित्रित किया। डेविड (1748-1825) एक महत्वपूर्ण चित्रकार थे जिन्होंने गणतन्त्रीय मूल्यों और आत्म-बलिदान का चित्रण किया। इंग्लैंड में हॉगर्थ (1657-1764) ने रोजमर्रा के जीवन को चित्रित किया और अपने चित्रण में हास्य और व्यंग्य को भी जोड़ा। गोया स्पेन में एक महत्वपूर्ण चित्रकार थे जिन्होंने भी कुछ व्यंग्यपूर्वक टकराव और सामाजिक जीवन को प्रदर्शित किया। वेनिश के कलाकार रंग और छाया का अद्‌भुत प्रयोग करते थे और वे हमें वेनिश के लेगून की अच्छी तस्वीरें देते हैं। जर्मन राज्यों में, एक प्रारम्भिक अवधि के बाद, कलाकार रोमांटिसिज्म की लहर से प्रभावित थे। रूस में रूसी परिदृश्यों और किसानों के जीवन के चित्रण के साथ, मुख्य रूप से फ्रांसीसी शैलियों का प्रभाव था। सामान्य तौर पर, कलाकार परम्परा और स्वतन्त्रता के बीच अनिश्चय की स्थिति में रहे।

नीदरलैंड (हालैंड) में प्रक्षेप वक्र कुछ अलग था। सत्रहवीं शताब्दी की डच समृद्धि जो इसके व्यापार और वाणिज्य से उत्पन्न हुई थी उसने एक ''डच स्कूल ऑफ पेन्टिग'' के उद्‌भव को देखा जिसमें डच मध्यम वर्गों की जीवन शैलियाँ और अभिरुचियाँ प्रतिबिंबित हुई। यहाँ कला के लिए एक बाजार उभरा, जिस पर एम्सटर्डम के

बन्दरगाह और उसके अमीर व्यापारियों का वर्चस्व था। चित्रकारों ने शहरी और ग्रामीण परिदृश्य, और रोजमर्रा के डच जीवन, घरों के भीतर मानवीय भावनाओं और घरेलू दृश्यों को चित्रित किया और प्रकाश छाया और रंग के मिश्रण का उत्कृष्ट उपयोग किया। छायाचित्र और स्थिर जीवन का चित्रण भी महत्वपूर्ण था। महत्वपूर्ण डच चित्रकार रेम्ब्रांट (1606-1669) थे जिन्होंने इनके अलावा धार्मिक और पौराणिक विषयों को भी चित्रित किया। वह एक चक्की वाले के बेटे और बेकरी वाले के पोते थे और मरने के बाद ही प्रसिद्ध हुए। उन्होंने अपने स्वयं के कई छायाचित्र भी बनाए।

5.5 संगीत

पूरी सत्रहवीं शताब्दी के दौरान ओपेरा संगीत का प्रमुख रूप था और इतावली संगीतकार यूरोप के सबसे प्रसिद्ध संगीतकार थे। पहला सार्वजनिक ओपेरा हाउस भी इतालवी शहर वेनिश में बनाया गया था और उसके बाद सभी राजधानी शहरों में फला-फूला। क्लाउडियो मान्टवर्डी इस शताब्दी के सबसे महानतम् रचयिता थे। ओपेरा, क्योंकि यह मौखिक संगीत था, इसलिए कविता और नाटक के समान था और सीधे भावनाओं को अपील करता था और इसलिए अलग-अलग बैठने की व्यवस्था के साथ, इसके आभिजात्य वर्ग और आम लोग दोनों ही दर्शक थे। यह इटली में विशाल दर्शकों के साथ बेहद लोकप्रिय था, लेकिन कुछ अन्य देशों के अलावा यह केवल आभिजात्य वर्ग के मनोरंजन का साधन रहा। यह कला और संगीत की बरॉक शैली के साथ मेल खाता था और अठारहवीं शताब्दी में भी जारी रहा।

हालांकि, अठारहवीं शताब्दी तक आते-आते, संगीत की अभिरुचि दरबारों, धार्मिक संस्थाओं और कुलीन संरक्षण की सीमाओं से परे चली गई'' (मेरीमेन, पृष्ठ, 356)। सत्रहवीं शताब्दी में ओपेरा मुख्य रूप थे, और उन्हें राजाओं द्वारा महलों या चर्चों के इर्द-गिर्द निर्मित ओपेरा हाउसिज में प्रदर्शित किया जाता था। एक दूसरा रूप चैम्बर संगीत था जो अमीर लोगों के सैलून में प्रदर्शित किया जाता था और इसमें अदाकारों की संख्या कम होती थी। यह अन्तरंग निजी सुनने के लिए संगीत था और धनाढ्य लोगों द्वारा संरक्षित था। सभी संगीत रचयिता शुरू में दरबार रचयिता थे। संगीत रचनाओं को चौरागा और कंसर्टो कहा जाता था। जोहान सेबेस्टियन बाख (1685-1750) एक जर्मन संगीत रचयिता और बरॉक काल के संगीतकार थे। वह बहुत ऊँची हस्ती थे, जिन्हें अपने ब्रेन्डनबर्ग कन्सर्टो और गोल्डबर्ग विविधताओं और उनके गायन संगीत के लिए भी याद किया जाता है। इतालवी बरॉक संगीत रचयिता एंटोनियो लुशियो विवाल्डी को अपनी रचना 'द फोर सीजन' और अपने वाइलिन पर वाद्य संगीत रचनाओं और कंसर्टो के लिए जाना जाता था।

सामान्य तौर पर अठारहवीं शताब्दी एक दिग्गजों की शताब्दी थीः बाख, हेन्डेल, मोजार्ट, हेडन और गलूख। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दो मुख्य रूप थे। सत्रहवीं शताब्दी से जारी रहा ओपेरा और धार्मिक संगीत जो *कन्टाटा* (कथा गायन) *ओरटोरियो* से मिलकर बना था। नये संगीत वाद्ययन्त्र भी विकसित हुए और उनका प्रसार हुआः 1711 में हार्पसिकोर्ड से पियानों, 1750 में बांसुरी और फिर शहनाई छोटे कंसर्टो का मंचन भी जारी रहा लेकिन अधिकाधिक वाद्य रचनाओं (सिम्फोनी) और अधिक उपकरणों के साथ बड़े व्यवसायिक आर्केस्ट्रा विकसित हुए और उच्च और मध्य वर्गों के दशकों की उपस्थिति के साथ कन्सर्ट आयोजित किये गये। संगीत चेम्बरों से निकलकर संगीत के विशाल कक्षों तक आ गया। उपरोक्त संगीत रचियताओं के

जीवनकाल में यह परिवर्तन हुए जिनका कार्य उनके संगीत पेशे में काफी विविध था। वे सभी आर्केस्ट्रा के लिए ओपेरा, चौरागा कन्सर्टो और वाद्यवृन्द रचनाएँ करते थे।

बोध प्रश्न 1

1) सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में कला में हुए परिवर्तन सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से कैसे सम्बन्धित थे?

.....

.....

.....

.....

.....

2) सत्रहवीं सदी के मध्य से अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक उभरने वाली मुख्य कलात्मक शैलियों का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

5.6 साहित्य

साहित्य के लिए पाठकगण पूरे यूरोप में साक्षरता और प्रिन्टिंग प्रेस के विकास और विस्तार के साथ बढ़े जबकि लिखित साहित्य साक्षर लोगों तक सीमित रहा। नाटकों के प्रदर्शन ने इन बाधाओं को पार कर लिया। लिखित साहित्य के भीतर विविध अभिरुचियों और बौद्धिक और सामाजिक परिपाटियों के अनुरूप विविधता थी। साहित्य के मौजूदा रूपों को सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और अठारहवीं शताब्दी में शैली और विषयवस्तु दोनों की दृष्टि से बदल दिया गया था, क्योंकि समाज और सांस्कृतिक रुचियाँ यूरोप के विस्तार, प्रबोधन काल के विचार और वैज्ञानिक क्रांति के अनुसार विकसित हो रहे थे और उनके उन लोगों के लिए भी महत्वपूर्ण एतिहासिक परिणाम निकले जो उनसे प्रत्यक्ष रूप में जुड़े हुए नहीं थे। मुद्रित सामग्री और अनुभवों की व्यापक उपलब्धता के क्रांतिकारी परिणाम हुए जिनके प्रभाव को विश्व में फ्रांसीसी क्रांति के दौरान और बाद में अनुभव किया जा सकता था। अधिकांश प्रमुख लेखकों ने लेखन के एक से अधिक रूपों को अपनाया। विशिष्ट राष्ट्रीय सन्दर्भ और विशेषताएँ पाई गई। ग्रामीण कविता और शौर्य के उपन्यासों के कई रूप थे, शहर और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच टकराव, और साहित्य के माध्यम से व्यक्त एक असहजता की भावना भी दिखाई पड़ती है।

इंग्लैंड ने लेखन का एक विस्फोट उत्पन्न किया जो बदली हुई भावना को दर्शाता था। शेक्सपियर का प्रदर्शन जारी रहा और उन्हें अलग नजर से देखा गया, उनके बाद के नाटक सत्रहवीं शताब्दी के बदलते परिवेश को प्रतिबिंबित कर रहे थे। जॉन

मिलटन, जॉन बन्यन और जॉन ड्राइडन सत्रहवीं शताब्दी के भव्यता के बरॉक साहित्य की बड़ी हस्तियाँ थे। जॉन बन्यन की *द पिलग्रिम्स प्रोगेस,* एक धार्मिक रूपक था जो 1678 और 1684 में दो भागों में प्रकाशित हुआ था और यह 'जीवन के माध्यम से एक नेक इंसान की तीर्थ यात्रा की प्रतीकात्मक दृष्टि' है। एक समय यह लोकप्रियता के मामले में बाइबिल के बाद दूसरे स्थान पर था। बन्यन को उनके विचारों के लिए राज्य द्वारा कैद किया गया था। पद्य में, मिल्टन के *ऑन हिज ब्लाइंडनेस* और *द पेराडाइज लॉस्ट* एक तरह के आधुनिक महाकाव्य थे जिन्होंने सत्रहवीं शताब्दी की राजनीति और धार्मिक युद्धों में फंसे लोगों के अनुभव को दर्शाया था। उस समय की विडम्बनाएँ लॉ फोन्टेन (1621-1695) की दन्त कथाओं में और जॉन ड्राइड़न की (1631-1700) रचनाओं में सार्वजनिक हस्तियों के भयानक रेखाचित्रों में व्यक्त की गई थी। इसके बाद एलेक्जेंडर पोप थे, जिनकी कविताएँ *एन एस्से ऑन क्रिटिसिज्म* (1711), द रेप ऑफ द लॉक (1712-14), *द दंसियाड* (1728) और *एन एस्से ऑन मैन* (1733-34) ने उन्हें इंग्लैंड में एक प्रमुख स्वर बना दिया।

जैसे-जैसे अठारहवीं शताब्दी आगे बढ़ी वैसे-वैसे चिन्तकों ने महसूस किया कि संस्थाओं और सोच के तरीकों में बहुत कुछ था जिसकी आलोचना की आवश्यकता थी। यह व्यंग्य के विस्फोट और लिखे गये उपन्यासों में परिलक्षित हुआ। जोनाथन स्विफ्ट के व्यंग्यात्मक उपन्यास *गुलिवर ट्रेवल्स* ने उभरते विज्ञान और तकनीकी के युग में समकालीन यूरोपीय पूर्वाग्रहों की आलोचना प्रस्तुत की, वैसा ही वाल्टेयर के *कान्डीड* ने किया था। स्विफ्ट एंग्लो-आयरिश मूल के व्यंग्यकार, निबन्धकार, राजनीतिक पत्रिका लिखने वाले और कवि थे। सेमवुल जॉनन्सन (1709-1784) अनेक प्रतिभाओं की एक और बहुत बड़ी हस्ती थेः कवि, नाटकार, निबन्धकार, नैतिकतावादी, साहित्यक आलोचक, जीवनी लेखक संपादक और शब्दकोष निर्माता। डायरी एक और लोकप्रिय साहित्यक रूप बन गई। एवलिन जॉन्स और सैमुवल पीप्स की डायरियाँ प्रसिद्ध हुई। एडवर्ड गिब्बन की रचना *राइज एंड फॉल ऑफ द रोमन एम्पायर* कई खंडों में एक मील का पत्थर थी। स्कॉटिश प्रबोधन के कारण साहित्य का विकास हुआ।

फ्रांस ने दो विरोधाभासी परन्तु सम्बंधित प्रवृत्तियों को जन्म दिया, जो प्रबोधन काल और रोमांटिसिज्म में परिलक्षित हुई, जिसने बहुत सारे राजनीतिक और दार्शनिक लेखन को जन्म दिया, जिसे विचारों के साहित्य के रूप में चिह्नित किया जा सकता है और जिसमें विभिन्न प्रकार की शैलियाँ शामिल थी। दिदरो का विश्व ज्ञानकोष इनमें सबसे प्रसिद्ध था, जैसा कि वॉल्तेयर और रूसो का लेखन भी था। उदाहरण के लिए 1748 में मॉन्तेस्क्यू द्वारा लिखित *स्पिरिट ऑफ द लॉ,* वाल्तेअर का *एस्से ऑन टॉलरेन्स,* 1762 में रूसो द्वारा *द सोशल कान्ट्रेक्ट,* दिदरो द्वारा *द सप्लीमेंट टू ए वॉएज ऑफ बूगेनविल,* ऐबे गियोम् थॉमस रेनाल द्वारा *द हिस्ट्री ऑफ द टू इंडियाज* महत्वपूर्ण निबन्ध थे। मॉन्तेस्क्यू ने पत्रों के रूप में फ्रांसीसी जीवन पर एक व्यंग्य भी लिखा, संभवतः दूसरे देश से। फिलॉसाफ (दार्शनिकों) की महत्वपूर्ण रचनाएँ विभिन्न शैलियों से सम्बन्धित थीं, जैसे कि एक विशेष दार्शनिक बिन्दु को चित्रित करने वाली कहानी; जाडिग (1747) या *कान्डीड* (1759), दोनों वाल्तेअर द्वारा रचित; या उनके निबन्ध। मारीवो और बेर्माशे की हास्य रचनाओं ने भी महान विचारों के बारे में और उनके प्रसार के बारे में वाद-विवाद में भाग लिया। इतिहास लेखन और पत्रकारिता पूरे यूरोप में सांस्कृतिक अभिव्यक्ति, पहचान के निर्माण, और ज्ञान की खोज के महत्वपूर्ण

रूप बन गये। कई दार्शनिकों ने कला आलोचना और सौन्दर्य शास्त्र और सौन्दर्य के दर्शन पर लिखा।

उपन्यास विभिन्न प्रकार के अनुभवों के अभिव्यक्त करने और उन्हें एक सामाजिक परिवेश में रखकर देखने के कारण एक अधिक लचीला रूप था। इसकी विषयवस्तु में अधिक रूपान्तरण हुआ ताकि यह अधिक तात्कालिक परिस्थितियों और परिवेश को प्रतिबिंबित कर सके, विशेष रूप से अनेक महिला पाठकों के विस्तार के साथ ऐसा हुआ। कई महिला लेखिकाएँ भी सामने आई। पात्रों और व्यक्तिगत सम्बंधों पर जोर दिया गया, जिसका एक उदाहरण मैडम लाफायेट का *द डचेज ऑफ क्लीव्स* (1678) था। वह उस समय के प्रसिद्ध पेरिस के सैलूनों में से एक की मेजबान थीं। साहसिक कार्यों और कल्पना के भी उपन्यास थे, जिसमें सबसे ज्यादा प्रसिद्ध डेनियल डेफो का *राबिन्सन क्रुसो* था। कुछ अन्य रचनाएँ ऐसी थी जो उस समय की महान दुविधाओं और टकरावों को प्रतिबिंबित करती हैं, उदाहरण के लिए, हेनरी फिल्डिंग, सैम्यूवल रिचर्डसन, लारेंस स्र्टन और टोबियास स्मॉलडिंग की रचनाएँ। अठारहवीं शताब्दी यथार्थवाद के युग और आधुनिक उपन्यास के जन्म को चिह्नित करती है जिसमें नायकों को 'छवि परिवर्तन और उनका मानवीयकरण' किया गया था (हाउजर, पृष्ठ 25) और एक मध्यमवर्गीय नैतिकता और कुछ यर्थाथवाद भी इनमें चरितार्थ किया गया।

फ्रांसीसी उपन्यासकारों ने अत्यधिक बहुमुखी प्रतिभा दिखाई, हालांकि अंग्रेजी उपन्यास का उन पर प्रभाव था; वाल्तेअर जैसे लोगों की दार्शनिक कथाएँ थी, रूसो द्वारा एक रोमांटिक भावुक रचना, मारिवो के सामाजिक यथार्थवाद और प्रेम पर आधारित उपन्यास, विभिन्न लेखकों द्वारा मनोवैज्ञानिक अन्वेषण और कल्पित परिदृश्य और आत्म-कथाएँ जो स्वयं की खोज के लिए एक प्रतिमान बन गई।

जर्मन साहित्य अंग्रेजी और फ्रांसीसी रचनाओं से प्रभावित था लेकिन इसने बाद में रोमांटिसिज्म की अपनी स्वयं की धारा विकसित की जिसमें भावनाओं और भावनात्मक भव्यता पर बल दिया गया, जिसे साहित्य के इतिहास में 'तूफान और तनाव' के रूप में उल्लेखित किया जाता है। अठारहवीं शताब्दी के जर्मन साहित्य की सबसे बड़ी हस्तियाँ गॉटथोल्ड एफ्राइम लेसिंग, योहान वुल्फगैंग फॉन गेटे, हर्डर और फ्रेडरिक शीलर थे। उनकी रचनाओं में लोकगीत, कविता, नाटक और साहित्यक आलोचना शामिल हैं। वास्तव में कला आलोचना की वृद्धि हुई और साहित्यक आलोचना इस अवधि के दौरान यूरोप भर में महत्वपूर्ण बनकर उभरी। व्यापक अनुवाद भी होने लगे और पूरे यूरोप में महत्वपूर्ण रचनाओं के पाठक थे।

पीटर महान द्वारा लाए गये पश्चिमीकरण से रूसी बुद्धिजीवी पश्चिमी यूरोप के साथ नियमित सम्पर्क में आए और अठारहवीं शताब्दी में पढ़ी गई अनेक रचनाएँ मुख्य रूप से अनुवाद थीं। रूसी भाषा में पहला आधुनिक लेखन राडिश्चेव का एक उपन्यास, *ए जर्नी फ्राम सेंट पीटर्सबर्ग टू मॉस्को* है, जिसमें रूसी समाज और राजनीतिक व्यवस्था की सजीव आलोचना है। एक अग्रणी राष्ट्रीय कवि और नाटककार लोमोनोसोव थे। हंगरी और पौलेंड में साहित्य स्वतन्त्रता और आत्म-अभिव्यक्ति के लिए पहचान और राष्ट्रीयता की खोज से जुड़ा हुआ था। ऑटोमन साम्राज्य के साहित्य में फारसी रूपों का प्रभाव था, यह अधिक विविध था जिसमें सूफी कविता और गजल और लोक-स्मृतियों से जुड़ी कहानियों का भी प्रभाव था। स्वीडन और डेनमार्क में नाटक और इतिहास और साहित्यक आलोचना की अनेक रचनाएँ रची गई।

साहित्य का जीवन, समाज के साथ अपने सम्बन्धों में, सबसे अधिक प्रत्यक्ष रूप से, लिखे गये नाटकों और उनके प्रदर्शन परिलक्षित हुआ। यहाँ, शिक्षित जिन्होंने नाटक लिखे और दर्शक जो उतने साक्षर नहीं थे, साहित्यक उत्पादन में एक नया आयाम जोड़ने के लिए एक साथ आए। चर्चों द्वारा धार्मिक युद्धों के दौरान लगाए गए अतीत के प्रतिबन्धों के बावजूद, थियेटर पूरे यूरोप में लोकप्रिय था। इंग्लैंड में नाटक की एक प्रवृत्ति उभरकर आई जिसे सामूहिक रूप से 'पुनर्स्थापना नाटक' के नाम से जाना जाता है, और जो शेक्सपीयर के उत्तर-पुनर्जागरण काल के उत्पादनों के बाद उभरी और इसने क्रोमवेल के शासन के दौरान थियेटर पर लगाए गए प्रतिबन्धों और असफलताओं पर काबू पा लिया जैसा कि सत्रहवीं शताब्दी के दौरान फ्रांस में कला और स्थापत्य कला के मामले में था, फ्रांसीसी दरबार ने थियेटर का इस्तेमाल अपनी महिमा बढ़ाने के लिए किया। महान नाटककार जाँ बेपतिस्त मलियर (1622-73) और जां रेसिन (1639-99) को दरबारी संरक्षण मिला लेकिन उन्होंने विविध दर्शकों के लिए लिखने की स्वतंत्रता हासिल की। दोनों में से मलियर के नाटक अधिक निडरता का परिचय देते थे और उनमें सामाजिक और धार्मिक व्यंग्य थे। जबकि रेसिन ने आधुनिक मनोवैज्ञानिक संवेदनशीलता को चित्रित करने के लिए पारम्परिक शास्त्रीय विषयों पर भरोसा करना जारी रखा, वह अधिक काव्यात्मक था और अपने जीवन के अन्त में उसने दरबार में एक पद स्वीकार कर लिया। अठारहवीं शताब्दी में फ्रांसीसी राजनीति की सजीवता और सैलून के जीवन के साथ, रंगमंच ने अपने समय के विचारों को व्यक्त करना शुरू कर दिया और वह दरबारी संस्कृति के मूल्यों से दूर हट गया। हमने मारिवो और बेमारशे को सुखान्त नाटकों का उल्लेख किया था जो उस समय के विचारों की बहस और उफान की महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति बन गये थे। जर्मनी में, लेसिंग सबसे महत्वपूर्ण हस्ती थे, जिन्होंने नयी मौलिक संवेदनशीलता के साथ हास्य नाटक और सामाजिक विषय पर आधारित नाटक लिखे। बोहिमिया में, चेक राष्ट्रीय रंगमंच 1737 में और पौलेंड में 1765 में खोला गया था।

5.7 सामाजिक जीवन और विश्राम

सत्रहवीं शताब्दी के अन्त और अठारहवीं शताब्दी में सामाजिक जीवन को उस समय की भौतिक परिस्थितियों ने आकार प्रदान किया। आमतौर पर लोगों के घरों में अधिक घरेलू सामान होते थे। हालांकि केवल वास्तविक आभिजात्य वर्ग का ही, बड़े घरों और बड़े स्थानों के साथ, जिसे हम उपभोक्ता संस्कृति कह सकते हैं, उससे परिचय हुआ था। संस्कृति और अवकाश के लिए संसाधन इसी वर्ग से आए। मनोरंजन उस समय के फैशन और उत्सव आभिजात्य वर्ग से, यूरोप भर में भू-संपत्तिवान वर्ग और पूंजीपति वर्ग से सम्बंधित थे। इसलिए संस्कृति और मनोरंजन में अंतर शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की बजाए वर्गों के अनुरूप था। फिर भी इस बात के बीच अंतर थे कि इन अवसरों के दौरान आभिजात्य वर्ग और मध्यम वर्ग कैसे मखमल और आभूषणों के साथ पोशाक पहनते थे जो उनकी शक्ति और दौलत का प्रतीक थी।

संचार और परिवहन में सुधार, साथ ही यात्रा और शिक्षा ने अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक कुलीन संस्कृति में कुछ हद तक समाभिरूपता ला दी थीं अठारहवीं शताब्दी में सैलून सांस्कृतिक जीवन के केन्द्र थे और इसने दरबारी संस्कृति के साथ एक वास्तविक अंतराल को चिह्नित किया। शहर अब दरबारों के सहायक नहीं थे और इन सैलूनों में सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए प्रेरणा पूंजीपति वर्ग से आई थी, भले ही उसमें आभिजात्य वर्ग ने भाग लिया हो। उन्होंने विचारों के सम्मिलन और वाद-विवाद

को सुविधाजनक बनाया। हाउजर इन सैलूनों को दरबार के ''सांस्कृतिक उत्तराधिकारी'' कहते हैं। अब मुख्य अंतर आम लोगों और उच्च वर्ग के लोगों के बीच था।

साक्षरता और पढ़ने वाली जनता के विस्तार का भी वैसा ही प्रभाव पड़ा। फ्रांसीसी शहरों में अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक, ''निम्न मध्यम वर्ग के 90 प्रतिशत तक लोग पढ़-लिख सकते थे, और लगभग 50 प्रतिशत बेहतर स्थिति वाले श्रमिक लोग और लगभग 20 प्रतिशत सबसे गरीब तबके के लोग पढ़-लिख सकते थे''। महिलाओं के लिए दरें बहुत कम थीं पर साक्षरता का प्रसार हो रहा था। पश्चिमी यूरोप के अन्य देश कम या ज्यादा तुलनीय हो सकते हैं, हालांकि अठारहवीं शताब्दी में पूर्व और मध्य यूरोप में साक्षरता उच्च वर्गों तक सीमित थी। प्रोटेस्टेंट देशों में पादरियों के घर अभी भी शिक्षा के प्रमुख केन्द्र था। बच्चों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक होने लगा। शिक्षा तक पहुँच के सन्दर्भ में वर्ग, लिंग, क्षेत्र और शहर और ग्रामीण अंचलों के बीच विविधता को देखते हुए, संस्कृति और राजनीति पर साक्षरता के विस्तार के प्रभाव के बारे में यह सामान्यीकरण सही है।

पूरे यूरोप में समाचार-पत्रों और विज्ञापनों का प्रसार शुरू हो गया। इंग्लैंड की क्रांति से काफी बड़े पैमाने पर मुद्रित सामग्री में एक उभार देखने को मिला था, और ''1702 में लंदन से पहले दैनिक समाचार-पत्र और प्रान्तीय समाचार-पत्र भी प्रकाशित होने शुरू हो गये थे''। निजी परिचालित पुस्तकालय भी थे। फ्रांसीसी क्रांति से दो दशक पहले से फ्रांस और पूरे यूरोप में इस तरह का उछाल देखा गया था। फिर छोटी चैप बुक भी थी जो शास्त्रीय या प्रसिद्ध उपन्यासों के संक्षिप्त संस्करण थे जिन्हें जनता बड़े पैमाने पर पढ़ती थी। महिलाएँ पाठकों के एक बड़े भाग का गठन करती थीं। इस अवधि के दौरान भू-संपत्तिवान आभिजात्य वर्ग जैसे पुराने वर्ग बदल रहे थे, जबकि पूंजीपति वर्ग और शहरी श्रमिक वर्ग जैसे नये वर्ग आधुनिक समाज बनाने के लिए उभरते हैं।

5.8 लोकप्रिय-संस्कृति

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी की लोकप्रिय संस्कृति एक अर्थ में कुलीन और शिक्षित लोगों की विशेषाधिकार वाली दुनिया से दूर थी। इसका एक बड़ा घटक किसान संस्कृति, इसके गीत, कहानियाँ और किसान और उसके कृषि चक्र के आसपास केन्द्रित लोक साहित्य था। जैसा रूडे बताते हैं, ''इसमें से कुछ परम्परागत था और किसी दृष्टि से अठारहवीं शताब्दी के लिए विलक्षण नहीं था। यह उन लोक गीतों और लोक-कथाओं की तरह था, जिनकी अतीत में गहरी जड़ें थी और जो मुख द्वारा कहे गये शब्दों द्वारा प्रेषित किया जाता था और केवल पेशेवर और शिक्षित लोगों द्वारा दर्ज किये जाने पर साहित्य के रूप में प्रकट होता था।''

हालांकि शताब्दियों से यह किसान जीवन और उसकी निरंतरता पर आधारित था और इसने किसानों की लोकप्रिय संस्कृति को विविध, क्षेत्रीय और एक हद तक स्वायत्त बना दिया था। लेकिन समय ने इसके प्रसारण में ऐसे पहलू जोड़े जो उस समय के लिए समकालीन थे, जिसमें ये लगातार प्रकट होते थे। बदलाव सिर्फ इसलिए हुए क्योंकि जीवन बदल गया और मन और ज्ञान बदल गये। इसके अलावा, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में आधुनिक दुनिया की सम्बन्धता ने इसकी स्वायत्तता को भंग कर दिया, चाहे इसकी विविधता को नहीं। 1500 और 1800 के बीच लोकप्रिय परम्पराएँ

सामाजिक स्तरीकरण और लोकप्रिय त्यौहारों में, उदारहण के लिए कार्निवाल, संतों के भोज और अपने-अपने क्षेत्रों में मई दिवस के उत्सवों में कुलीन वर्गों की भागीदारी के परिणामस्वरूप परिवर्तनों के अधीन थीं। वहीं दूसरी ओर शिल्पकारों और किसानों की मुद्रित पुस्तकों तक पहुँच, उदाहरण के लिए विद्धानों या अन्य शिक्षित कुलीन जनों द्वारा लिखे गये गाथा गीतों ने भी इन परम्पराओं को बदला। जैसा बर्क संकेत देते हैं कि मसखरे दरबारों के साथ-साथ मधुशालाओं में भी लोकप्रिय थे, अक्सर वही मसखरे, (बर्क, पृष्ठ, 24-25)। इतालवी ओपेरा के गीत नेपल के नाविकों वेनिसिया के माझियों और पेरिस के लोगों द्वारा सड़कों पर गाया जाता था (रूडे, पृष्ठ 151)।

विभिन्न विरोधीभासी तत्वों के संयोजन का मतलब था कि 'लोकप्रिय संस्कृति के विविध प्रकार थे' और 1800 तक कारीगरों और किसानों के पास अक्सर एक राष्ट्रीय चेतना की बजाए क्षेत्रीय चेतना थी। ऐसा इसलिए है क्योंकि 'कुलीन वर्ग ने लघु परम्परा में भाग लिया लेकिन आम लोगों ने कुलीन वर्ग की महान परंपरा में भाग नहीं लिया। उन्होंने अभी भी अपनी सामाजिक स्थिति से जुड़ी एक सामान्य दुनिया को बरकरार रखा था। शहर और शहरी गरीब और मेहनतकश लोगों ने लोकप्रिय संस्कृति में एक नया आयाम जोड़ा। बेशक फसलों के त्यौहार थे, लेकिन विभिन्न श्रेणियों के सदस्यों द्वारा अनुसरण किये जाने वाली परम्पराएँ भी थी जैसे कताई के गीत, बुनकरों के गीत, महिलाओं के गीत, नाविकों के गीत इत्यादि। शहरीकरण उत्पादन में बदले कार्य के प्रारूप और वाणिज्यिक क्रांति के साथ-साथ बाजार के लिए उत्पादन के कारण, अभिरुचियाँ कलाकृतियाँ, मकान बनाने के तरीके, उपभोग की वस्तुएँ और घरेलू सामान सभी कुछ बदलाव से गुजरते हैं। किसानों को भी बारोक और रोकोको शैलियों ने प्रभावित किया था जिनको उन्होंने अपने चित्रों में अपनी शैली और विषयवस्तु के अनुकूलित करके अपनाया।

समय बिताने के तरीकों में साक्षरता और पढ़ना एक महत्वपूर्ण कारक था, और घुड़दौड़ और मधुशालाओं में चर्चा और गाँव के चौक पर समय बिताना समय व्यतीत करने और मनोरंजन के नये तत्व थे। विशेष रूप से लोकप्रिय उपभोग के लिए सैंकड़ों लिखित सामग्रियाँ लाई गई। ऊपर बनाई गई चैप बुक की विषय सूची पढ़ने की वरीयताओं की बदलने की ओर इशारा करती है। इंग्लैंड की क्रांति के बाद और महाद्वीप में फ्रांसीसी क्रांति से दो दशक पहले की राजनीति ने संस्कृति के राजनैतिकरण, राजनीतिक चेतना और बैठकों में भागीदारी को जन्म दिया।

जबकि यह संस्कृति में एक समाभिरूपता को लेकर आया, लेकिन वैज्ञानिक क्रांति और प्रबोधन काल की सोच जो शिक्षित कुलीन वर्ग में सर्वव्यापी थी, उसने कुलीन और लोकप्रिय संस्कृति और सोचने के तरीकों के बीच अंतर को कई प्रकार से बढ़ा दिया। आम लोगों की सराय और मधुशाला की संस्कृति अठारहवीं शताब्दी के सैलूनों से अलग थी जबकि राजनीति उन पर हावी थी।

बोध प्रश्न 2

1) उदाहरणों के साथ यूरोप में सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में साहित्य के विकास की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) इस इकाई की अवधि के दौरान लोकप्रिय संस्कृति पर एक नोट लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

5.9 सारांश

इस इकाई में हमने देखा है कि सत्रहवीं शताब्दी के अन्त और अठारहवीं शताब्दी में औद्योगिक और फ्रांसीसी क्रांतियाँ अपने-आप में महत्वपूर्ण थीं और संस्कृति और समाज के विकास को केवल महान पुनर्जागरण और दो क्रांतियों द्वारा आधुनिक विश्व की शुरुआत के बीच केवल एक सेतु के रूप में नहीं देखा जा सकता है। इस अवधि का सांस्कृतिक परिवेश और सांस्कृतिक उत्पादन, जिसमें जीवन शैली और रोजमर्रा के जीवन के प्रारूप शामिल थे, उन्हें भौतिक परिस्थितियों परिवर्तन, विशेष रूप से बाजार के लिए उत्पादन और वाणिज्यिक क्रांति ने आकार दिया था जो हम अपने आधुनिक समाजों में देखते हैं, सामाजिक वर्ग उस रूप में आकार ले रहे थे। वैज्ञानिक क्रांति और प्रबोधन काल के विचार नये तरीके की सोच के विकास और अपने स्वयं के समाजों को देखने के लिए महत्वपूर्ण थे।

इस लम्बे कालानुक्रमिक काल में ना केवल विविधता और अंतर था, बल्कि इन्हीं वर्षों के दौरान यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों के बीच भी अंतर था। कुलीन संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति के बीच मिलान और टकराव के बिन्दु थे। इस अवधि के सांस्कृतिक विकास ने उन दो क्रांतियों की नींव रखी जिन्होंने, हम जिस दुनिया में रहते हैं, उसे आकार दिया और जिस तरह से हम आधुनिकता का अनुभव करते हैं, मानवीय प्रगति और हमारे इर्द-गिर्द की असमानताओं में वृद्धि भी इन्हीं का परिणाम है।

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 5.2 देखें।

2) उपभाग 5.4.1 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 5.6 देखें।

2) भाग 5.8 देखें।

इकाई 6 इंग्लैंड की क्रांति*

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 एक अवलोकन

6.3 इंग्लैंड की क्रान्ति के मुख्य मुद्दे

6.4 राजा और संसद के बीच टकराव, 1649 तक

6.5 ओलिवर क्रोमवेल और गणराज्य, 1649-53

6.6 पुनर्स्थापना (1660) और गौरवशाली क्रांति (1688)

6.7 धार्मिक टकराव और राजनीति

6.8 बौद्धिक प्रवृत्तियाँ

6.9 क्रान्ति और गृहयुद्ध के प्रश्न

6.10 सारांश

6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- इंग्लैंड की क्रांति की मुख्य घटनाओं और घटनाक्रम से परिचित होंगे;
- सत्रहवीं शताब्दी के दौरान इसकी घटनाओं को सामान्य घटनाओं से जोड़ने में सक्षम होंगे;
- इसके राजनैतिक, आर्थिक और साामाजिक पहलुओं के बीच कुछ संबंध स्थापित करने में सक्षम होंगे;
- विभिन्न विषय और रुझान जिन्होंने इंग्लैंड की क्रांति को गठित किया, उनको समझ पायेंगे;
- इसके बारे में इतिहास लेखन और बहस के बारे में कुछ विचार प्राप्त कर पायेंगे;
- जिसे इंग्लैंड की क्रांति और गौरवशाली क्रांति कहा गया है उनके बीच भेद को समझाने में सक्षम होंगे;
- गृह-युद्ध के नामकरण पर चर्चा करने और इंग्लैंड की क्रान्ति के संदर्भ में इसके मुख्य टकरावों और इसका क्या अर्थ था, के बारे में चर्चा करने में सक्षम होंगे; और
- इंग्लैंड की क्रान्ति के महत्व और आधुनिक यूरोप के इतिहास में इसके स्थान को समझने में सक्षम होंगे।

* इकाई लेखक : डॉ. नलिनी तनेजा

6.1 प्रस्तावना

इंग्लैंड की क्रांति सत्रहवीं शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक है और इसके दूरगामी परिणाम थे। इसे केवल सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक विकासों के संदर्भ में अच्छी तरह से समझा जा सकता है और इसकी विशिष्ट घटनाओं की जड़ें सत्रहवीं शताब्दी के संकट में भी हैं। यहाँ हम उनके सामाजिक, आर्थिक आयामों सहित इग्लैंड की क्रान्ति की मुख्य घटना और प्रवृत्तियों पर ध्यान केन्द्रित करेंगे। आर्थिक हित और सामाजिक आकाक्षाएँ अक्सर राजनैतिक टकराव और मुख्य राजनैतिक अभिनेताओं द्वारा दिए तर्कों से जुड़ी हुई थीं। क्रांति के राजनैतिक आयाम ने मुख्य रूप से राजा और संसद के बीच सत्ता के संघर्ष का रूप ले लिया।

सामन्ती व्यवस्था के पतन, सोलहवीं शताब्दी के अन्वेषणों और 'नई' भूमियों की खोज, अन्य समाजों के साथ पारस्परिक आदान-प्रदान, चर्च पर उठाए गए सवाल और धर्म सुधार, तथा मानव शरीर और ब्रह्मांड के बारे में लियोनार्डो दा विन्ची, कॉपरनिकस और गेलिलियो जैसे भूगोलविदों और दार्शनिक-वैज्ञानिकों के योगदान, और पुनर्जागरण और मानवतावाद के संपूर्ण अनुभव और इससे सम्बन्धित राजनैतिक विचार के बिना इग्लैंड की क्रान्ति नहीं हो सकती थी। इसलिए, हम इन पहलुओं पर भी संक्षेप में विचार करेंगे।

6.2 एक अवलोकन

1642 और 1660 के बीच की अवधि, जिसकी विशेषता इंग्लैंड में सशस्त्र टकराव और राजनैतिक उथल-पुथल थी, जिसको इस उथल-पुथल और टकराव का वर्णन करने के लिए विभिन्न इतिहासकारों द्वारा बताई गई विशेषताओं के आधार पर इंग्लैंड की क्रांति या गृह-युद्ध के नाम से जाना जाता है। इन घटनाओं में राजा और संसद के बीच टकरावों की एक श्रृंखला शामिल थी जिसके दौरान के मुख्य बिन्दु किंग चार्ल्स I के मुकदमें की सुनवाई और उनको प्राणदंड, कुछ वर्षों के लिए इंग्लैंड में कामनवेल्थ की स्थापना (1649-1653), और ओलिवर क्रामवेल का उत्थान था जो विशिष्ट सामाजिक हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले लगभग एक तानाशाह बन गये थे। यह कहा जाता है कि राजतंत्र की पुनर्स्थापना के साथ यह समाप्त हो गया जिसे विभिन्न इतिहासकारों द्वारा महत्व दी जाने वाली विशेषताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न तरीके से पुनर्स्थापना या गौरवशाली क्रांति के रूप में भी जाना जाता है।

यह अवधि राजनैतिक मुख्यधारा के भीतर और इसके बाहर की अभिव्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण समाज में सोच की कसौटी बन गई। स्वतंत्रता, समानता और आधुनिकता, जिनसे हमारा सामना बाद की क्रांतियों में होता है, के विचार इंग्लैंड में पहली राष्ट्र राज्य के बड़े संदर्भ में राजनैतिक संरचना में सुधार के प्रयासों के तहत यहाँ व्यक्त किये गए थे।

इंग्लैंड की क्रांति राजा और संसद के बीच इस बात को लेकर टकराव के रूप में शुरू हुई कि वास्तविक राजनैतिक सत्ता किसके पास थी। संसद की उत्पत्ति ग्यारहवीं शताब्दी के दौरान हेनरी I द्वारा बनाई गई एक परिषद में हुई थी, लेकिन इसे केवल तेरहवीं शताब्दी में संसद के नाम से जाना जाने लगा था और इस पर उच्च कुलीन

वर्ग और उच्च चर्च के अधिकारियों का वर्चस्व था। 1215 में संसद ने स्वयं के लिए इन वर्गों के हितों की रक्षा के लिए माँगों का एक चार्टर जीता, जिसे मेग्नाकार्टा के नाम से जाना जाता है, और इसने टकराव के लिए मिसाल कायम की जिससे इंग्लैंड के शासक वर्गों ने मौजूदा राष्ट्रीय राजतंत्र से अलग अपने अधिकारों और विशेषाधिकारों के लिए दृढ़ता से अपना दावा पेश किया। जैसे-जैसे इंग्लैंड सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों से गुजरा, व्यापारियों और उभरते मध्यम वर्गों ने अपने दावे पेश करना शुरू कर दिया। ट्यूडर शासन के दौरान राजा द्वारा प्रोत्साहित किये गये अन्वेषणों और परिणामस्वरूप उपनिवेशों के व्यापार में दिलचस्पी रखने वाले व्यापारियों ने राजा का समर्थन करना अपने हित में पाया। सत्रहवीं शताब्दी में स्टुअर्टस के समय तक, इन विकासों ने भूमि को विनिमय अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग बनाने में योगदान दिया यानि भूमि और भूमि के उत्पादों में बाजार का विकास हुआ। यहाँ तक कि जो पंरपरागत रूप से भूमि पर आधारित नहीं थे, वे अब जमीन खरीदना चाहते थे। चर्च की भूमि की जब्ती और बिक्री ने भी भूमि बाजार में योगदान दिया था।

उभरते हुए पूंजीवाद में भूमि के एक महत्वपूर्ण कारक बनने के साथ भूमि रखने और भूमि बाजार के विस्तार के इच्छुक लोगों की संरचना में बदलाव आया। भूमि से जुड़े शासक वर्ग भी परिणामस्वरूप विस्तारित हुए और पहले के भू-संपत्तिवान वर्गों की तुलना में भूमि में व्यापक रुचि रखने लगे। इस नये भूमि आधारित भद्र लोगों ने राजा और संसद के बीच के टकराव में नये आयाम जोड़े जिन्होंने धार्मिक टकराव और गृहयुद्ध का रूप ले लिया। अलग-अलग तरीके से इन आयामों में कराधान, विदेश नीति और युद्ध, संपत्ति के अधिकार, धार्मिक अधिकार और सबसे बढ़कर राजाओं के दिव्य अधिकार के सिद्धान्त पर प्रश्न चिह्न लगाना शामिल थे।

धर्म भी एक विभाजन करने वाला कारक बन गया। कुछ कारणों से जिनकी हम जाँच-पड़ताल करेंगे, अधिकांश कैथोलिक और अनेक रूढ़िवादी प्रोटेस्टेंट राजा का समर्थन करते रहे जबकि प्यूरिटन (पवित्रतावादी) कहे जाने वाले लोगों ने संसद का पक्ष लिया। इस प्रकार राजनैतिक टकराव ने एक धार्मिक रूप ग्रहण कर लिया, या कुछ अन्य लोगों के शब्दों में, धार्मिक विभाजन के परिणामस्वरूप राजनैतिक विरोध हुआ।

स्कॉटलैंड और आयरलैंड के क्षेत्रों में राजतंत्र के हितों के दाँव पर लगे होने का मतलब था कि टकराव न केवल इंग्लैंड के भीतर पनपा बल्कि उन सभी क्षेत्रों में भी जहाँ इसका शासन था और जिनमें स्टुअर्ट राजतन्त्र ने अपने हितों का दावा किया था और इसमें स्कॉटलैंड और आयरलैंड शामिल थे।

6.3 इंग्लैंड की क्रान्ति के मुख्य मुददे

अब हम उन प्रमुख मुद्दों पर बात करेंगे जो अंग्रेजी समाज में और ब्रिटिश राजनीति में इस बहुआयामी टकराव से उभरते हैं। टकराव के ये मुद्दे कैसे और क्यों उत्पन्न हुए और वे कब उत्पन्न हुए?

ट्यूडर राजतन्त्र ने सामाजिक शक्तियों के एक प्रकार के संतुलन को प्राप्त कर लिया था जिसकी झलक इसकी राजनैतिक व्यवस्था में भी दिखाई पड़ती थी। इसलिए, इंग्लैंड में राष्ट्रीय राज्य का उद्भव निरंकुश राज्य के उदय का पर्यायवाची था जिसमें कुलीन वर्ग, जिसने शासक वर्गों का निर्माण किया, की कुछ हद तक सहमति और अनुमोदन भी शामिल था। राष्ट्र-राज्य अभी नया-नया एक केन्द्रीकृत स्थायी सेना और

नौकरशाही को हासिल करने की शुरुआत ही कर रहा था और सामंती कुलीन वर्ग की शक्तियों पर अंकुश लगा दिया गया था। सामाजिक और आर्थिक मोर्चे पर, सामंती कुलीन वर्ग के पतन की वजह से भू-स्वामित्व पर आधारित एक नये कुलीन वर्ग का विकास और विस्तार हुआ जिसकी दिलचस्पी भू-स्वामित्व और कृषि उत्पादन के बाजारों में थी और दोनों ही एक ही प्रक्रिया का हिस्सा थे जो सांमती अर्थव्यवस्था के पतन और पूंजीवाद के उद्‌भव के बीच संक्रमण के दौरान पैदा हुई थी। एक ऐसा राजतंत्र जिसने खोजी यात्राओं और लम्बी दूरी के व्यापार का समर्थन किया था उसे व्यापारियों और नये भू-संपत्तिवान कुलीन वर्ग का समर्थन हासिल था क्योंकि यह पुराने सामंती कुलीन वर्ग की शक्ति को छिन्न कर रहा था। इन वर्गों को एक नए राजतन्त्र की उतनी ही आवश्यकता थी जितनी कि राजतन्त्र को उनके समर्थन की। सामंती अधिपतियों को वश में करने से राजतन्त्र ने व्यापारिक हितों और भू-संपत्ति के लिए सामाजिक क्षेत्र को सुरक्षित बना दिया क्योंकि इसने सामंती समाज में हर स्तर पर पदानुक्रम को वरीयता देने वाले सामंती कानून की स्वेच्छाचारिता और लूटमार के खिलाफ सुरक्षा प्रदान की।

सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में यह बदल गया क्योंकि नई सामाजिक और आर्थिक शक्तियाँ अधिक धनी, मजबूत और स्वतंत्र हो गयीं और अब वे ज्यादा स्वायत्तता और राजनैतिक मसलों में अधिक शक्ति चाहती थीं। क्रय के माध्यम से निजी संपत्ति के अधिग्रहण के लिए ऐसे कानूनों की जरूरत थी जिन्होंने निजी संपत्ति के अधिकार को पुख्ता किया, और जिनका सामन्ती विशेषाधिकार और ताज द्वारा अतिक्रमण नहीं किया जा सकता था। वे अपने पक्ष में ऐसे बदलाव लाना चाहते थे जिनको स्वीकार करने के लिए अनुक्रमिक राजा तैयार नहीं थे। राजतन्त्र अब उन्हें उनकी आगे की उन्नति में एक बाधा प्रतीत होने लगा और, जैसा कि ए. एल. मॉरटन बताते हैं, टकराव सत्रहवीं शताब्दी में सामाजिक और आर्थिक ताकतों के विकास में ही अन्तर्निहित था हालांकि यह उनके लिए इतना स्पष्ट नहीं हो सकता था क्योंकि वे विभिन्न मुद्‌दों पर जिनसे उनका सामना हुआ, राजा की शक्ति से लड़ते थे (मॉरटन, पृष्ठ 199)।

इन मुद्‌दों का सामना करने के परिणामस्वरूप अन्ततः एक नई प्रणाली अर्थात् संवैधानिक राजतन्त्र का उदय हुआ। यह तन्त्र, यूरोप में अनोखा था और इंग्लैंड के लिए खास था, क्योंकि इसने राजनैतिक संस्थाओं की कार्यप्रणाली को एक नया स्वरूप दिया।

फ्रांस में, सामंती भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग के लिए असली चुनौती अठारहवीं शताब्दी की फ्रांसीसी क्रांति के साथ ही आई। इससे पहले व्यापार और वाणिज्य की अध्यक्षता करने वाली, मध्यम वर्ग के विकास, भूमि की प्रथम बाढ़-बन्दी और पूंजीवादी विशेषताओं के उद्‌भव की अध्यक्षता करने वाले निरकुंश राजतन्त्र ने सांमती भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग के हितों को संरक्षण देना जारी रखा।

इसलिए हालांकि इंग्लैंड के राजा भी महाद्वीप के अपने समकक्षों की भाँति शक्ति का इस्तेमाल करना चाहते होंगे लेकिन इंग्लैंड के समाज और अर्थव्यवस्था के विकास ने उन परिवर्तनों का पक्ष लिया जो उनकी शक्तियों पर अंकुश लगाने में सक्षम थे। आप बाद में जानेंगे कि महाद्वीप के बजाए ब्रिटेन में जो पहली औद्योगिक क्रान्ति हुई वह इन विकासों से सम्बन्धित थी, जिसने ''औद्योगिक क्रांति के आवश्यक गुण'' कहे जाने वाले विकासों को अनुमति दी।

संसद राजनीति के क्षेत्र में इन परिवर्तनों का वाहन या साधन बन गई जबकि राजतंत्र अब सोलहवीं शताब्दी की राजनैतिक व्यवस्था में मजबूत स्थिति वाले लोगों पर निर्भर हो गई थी। सामंती वर्ग, जिन पर इसने नियन्त्रण स्थापित कर लिया था, जो अपना आर्थिक प्रभुत्व खो चुके थे, और अब दरबार के पदों पर निर्भर थे, उन्होंने इसलिए राजतंत्र का समर्थन करके राजनैतिक व्यवस्था में अपनी प्रमुखता को सुरक्षित रखने के लिए तैयार थे। वे सत्ता के इस पूरे तन्त्र की शक्ति के कम होने के विरोध में थे जिसने इस समझौते का निर्माण किया था। दूसरी तरफ वाणिज्यिक हितों के लिए अब पूरे राष्ट्रीय बाजार की जरूरत थी और गैर-कृषि गतिविधियों को प्रतिबंधित करने वाली श्रेणियों (गिल्ड) के विनाश की आवश्यकता थी। इनके अलावा, विशिष्ट कस्बों में भू-सपंत्तिवान कुलीन वर्ग, जिनकी रुचि ऊनी वस्त्र उत्पादन और चरागाह कृषि में थी, के लिए अब एक विकसित होता हुआ बाजार था। भूमि पर धनी समृद्ध किसानों और काश्तकारों के बीच हितों का टकराव अभी शुरू नहीं हुआ था और यह अभी भविष्य के गर्भ में था। इसी प्रकार गैर-कृषि उत्पादन में शामिल लोगों के बीच का अन्तर्विरोध भी था जिसमें नवोदित पूंजीपति वर्ग ओर नवोदित कामगार थे, जो उन लोगों द्वारा दिए गए काम पर निर्भर थे जो बाजार से जुड़े हुए थे और उन्हें कच्चा माल मुहैया करा सकते थे। शहर और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच विभाजन उभर चुका था और उसी प्रकार श्रम का विभाजन भी हो चुका था लेकिन यह उतना अधिक नहीं था कि पद-दलित लोग नये उभरते प्रभुत्वशाली वर्गों को चुनौती दे पाते।

इंग्लैंड की क्रांति इसलिए सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में स्टुअर्ट के शासन के दौरान हुई और यह इंग्लैंड के ग्रामीण समाज की संरचना में हुई परिवर्तन का एक नतीजा थीः इस समय की अस्थिर लेकिन नाजुक दौर के सामाजिक और राजनैतिक विकास में निहित समझौतों और अन्तर विरोधों से इसका जन्म हुआ।

क्रांति ने स्वयं को एक गृहयुद्ध के रूप में भी प्रस्तुत किया और कुछ समकालीनों और बाद के इतिहासकारों द्वारा इसे इसी तरह से पेश किया गया है। यह स्पष्ट रूप से संघर्ष के तीखेपन के कारण है और ऐसा प्रतीत होता है कि इसने मौजूदा सामाजिक ताने-बाने को नष्ट कर डाला था। यह पहला प्रमुख मन्थन था जिसने पूरे राष्ट्र-राज्य में मौजूदा राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था को चुनौती दी थी क्योंकि इंग्लैंड ने यूरोप की तुलना में 1789, 1830 या 1848 जैसी क्रांति का कभी अनुभव नहीं किया। बाद के इतिहासकारों के अनुसार, निरंतरताओं, असंतोष को पचा जाने की क्षमता, इसकी संस्थाओं में अनुकूलन की तत्परता और सुधारों के लिए पहल ने इसे अद्वितीय बनाया और 19वीं और 20वीं सदी के यूरोप की क्रांतिकारी प्रवृत्तियों से कुछ हद तक इसे प्रतिरक्षा प्रदान की। कुछ इतिहासकारों ने दरअसल यह सवाल भी उठाया है कि इंग्लैंड में क्या कोई क्रांति हुई थी।

दूसरी ओर इंग्लैंड की क्रांति के बाद गौरवशाली क्रांति के नाम से जाना जाने वाली एक पुनर्स्थापना हुई थी जिससे इंग्लैंड के लिए इस नामकरण के सवाल को और अधिक जटिल बना दिया है। विशेष रूप से राजा और संसद दोनों ही 20वीं सदी के दौरान ब्रिटिश इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे और राजतन्त्र और संसद के बीच टकराव विभिन्न रूपों में जारी रहा जो शासक वर्गों के भीतर संस्थाओं के अन्तर्गत शक्ति संतुलन में बदलावों के साथ और साथ ही साथ शासक वर्गों की शक्ति के परिरक्षण के रूप में समायोजन का प्रतिनिधित्व करता है।

6.4 राजा और संसद के बीच टकराव, 1649 तक

कहा जाता है कि इंग्लैंड की क्रांति को चार्ल्स प्रथम ने उकसाया था जब अगस्त 1642 में उन्होंने, संसद के माध्यम से यह कदम उठाये बिना, स्कॉटलैंड में विद्रोह से निपटने के लिए एक सेना जुटाने का फैसला किया था। संसद के अनेक सदस्यों ने इसमें ऐसा कदम देखा जिसमें राजा ने निरकुंश शासन के खिलाफ उनके संघर्ष में ब्रिटिश समाज द्वारा मुश्किल से जीते विशेष अधिकारों को हड़प लिया था।

राजतन्त्र और संसद के बीच टकराव के बीज हालांकि जेम्स I (1603-1625) के शासन काल के दौरान पहले बोये जा चुके थे क्योंकि ट्युड़र शासकों ने संसद से जो सहयोग प्राप्त किया था वे व्यवस्थित रूप से समाप्त हो रहे थे। जेम्स I राजा के दिव्य अधिकारों के प्रबल समर्थक थे और उसी के अनुसार शासन चलाना चाहते थे। इसके अतिरिक्त वह स्कॉटिश मूल के भी थे। उनके शासन काल के दौरान संसद के अधिकारों, विभिन्न धार्मिक समूहों के अधिकारों, कराधान और विदेशी नीति के मामलों में महत्वपूर्ण मसलों पर तीखे मतभेद पहले ही उभर चुके थे और परिणामस्वरूप राजतन्त्र के लिए भारी ऋण और ब्रिटिश राजनैतिक व्यवस्था के भीतर राजनैतिक संकट को जन्म दे चुके थे। संसद की मंजूरी प्राप्त के बिना प्रशासन, सेना और विदेश नीति की बढ़ती लागतों को पूरा करने के लिए राजतन्त्र को कर लगाने में अड़चन महसूस हो रही थी क्योंकि संसद इनकी मंजूरी न देने के लिए अडिग थी। इसलिए दोनों के बीच टकराव बढ़ गया।

अपने शासन काल के दौरान चार्ल्स I (1625-1649), जो जेम्स I के बाद सतारूढ़ हुए, ने चार साल में तीन बार संसद का सत्र बुलाया, लेकिन प्रत्येक बार जब वित्त के मामले पर ठनी तो इसे भंग कर दिया। 1628 में उन्हें अधिकार की याचिका स्वीकार करने के लिए मजबूर किया गया जिसमें उन्हें सहमत होना पड़ा कि भविष्य में वे संसदीय सहमति के बिना 'ऋण' या करों को लागू नहीं करेंगे, और ऐसे किसी व्यक्ति को दण्डित करने का प्रयास नहीं करेंगे, जो इस तरह के ऋण से इन्कार करता था। राजा द्वारा मनमानी गिरफ्तारी, मार्शल लॉ और ऐसे अन्य आक्रामक कदमों की भी निन्दा की गई। चार्ल्स ने 1629 में संसद को बर्खास्त करके इसका जवाब दिया। ग्यारह साल तक उन्होंने बिना संसद बुलाए, कठोर तरीके से शासन चलाया जब तक कि 1640 में उन्हें स्कॉटस को हराने के लिए आवश्यक युद्ध के भुगतान करने के लिए ऐसा करने के लिए मजबूर नहीं कर दिया गया था। संसद मुश्किल से दो महीने चल पाई और एक बार फिर गतिरोध उत्पन्न हो गया।

यह उनके शासन काल में और इंग्लैंड के सवैंधानिक इतिहास में एक बड़ा मोड़ था क्योंकि संसद ने राजा के विशेष अधिकारों को विनियमित करने और संसद के लिए शक्तियों के रूप में पर्याप्त रियायतें देने की माँग की। अब इस बात पर खींचतान थी कि इंग्लैंड का प्रशासन कैसे चलेगा। इसके बाद संसद ने 1915 में मेग्ना कार्टा के तहत परिषद को दिये गये अधिकारों को दुबारा लागू करने पर जोर दिया जिनको उन जागीरदारों द्वारा प्राप्त किया गया था, जो सर्वोच्च कुलीन वर्ग के थे और अत्यधिक शक्ति रखते थे। संसद ने वित्त, कराधान और विदेश नीति के सभी मामलों में संसद के अंतिम अधिकार पर जोर दिया और धार्मिक सुधार की भी माँग की। संसद ने राजा द्वारा स्थापित और राजकीय हितों और राजा के वफादारों का प्रतिनिधित्व करने वाली कुलीन वर्ग के वर्चस्व वाली राजकीय अदालतों के विरुद्ध स्थानीय संरचनाओं और

काउंटी स्तर के अधिकारियों के लिए अधिक निर्णय शक्ति और सत्ता की माँग की। इस प्रकार टकराव प्रशासन के मामलों में भी फैल गया। राजा को 1640 में फिर से संसद बुलाने के लिए मजबूर किया गया जिसे इतिहास में दीर्घकालीन संसद के रूप में जाना जाता है। इसके सदस्यों ने राजा और संसद की शक्तियों को पुनः परिभाषित करने पर जोर दिया जिसमें संसद को सर्वोच्च सत्ता होनी चाहिए थी। इसने उन सभी संस्थाओं और न्यायालयों को खत्म करने का फैसला किया जो शाही सत्ता को सुनिश्चित करते थे– द कोर्ट ऑफ स्टार चैम्बर, द कोर्ट ऑफ हाई कमीशन, काउंसिल ऑफ द नोर्थ और काउंसिल ऑफ वेल्स। इसने राजा की शक्ति का दृढ़तापूर्वक दावा करने वाले और संसद के वैध अधिकारों को कमजोर करने वाले महत्वपूर्ण अधिकारियों को कारावास में दण्डित करने का निर्णय लिया और इसमें विलियम लॉड और वेंटवर्थ भी थे। विलियम लॉड को 1633 में इंग्लैंड का रहनुमा (Primale) बनाया गया था और ऐसा माना गया कि वह राजा की ओर से अनुचित शक्ति का इस्तेमाल कर रहा था। संसद ने नाइट की पदवी को समाप्त कर दिया और जहाज के पैसे (Ship Money) के रूप में जाना जाने वाला भुगतान भी समाप्त कर दिया और यह आदेश जारी किया कि सभी अन्य करों के लिए संसद की मंजूरी जरूरी थी। त्रिवार्षिक अधीनियम द्वारा, यह सुनिश्चित करने की कोशिश की गई कि संसद को हर तीन साल में कम से कम एक बार बुलाया जाएगा।

इसी बीच 1641 में आयरिश विद्रोह हुआ जिसमें आयरिश विद्रोहियों को राजा के पक्षधर के रूप में देखा गया था। इसके प्रति प्रभाव तुरंत संसद में महसूस किये गये और उनके परिणामस्वरूप संसद में किंग्स पार्टी का गठन हुआ। अपनी ओर से संसद ने संसद के नेता पाइम द्वारा लिखित *द ग्रेड रेमॉन्सट्रेस* नामक एक दस्तावेज पेश किया जिसमें सत्ता का संतुलन संसद के पक्ष में करने का प्रयास था जो चार्ल्स I को स्वीकार्य नहीं था। यह केवल ग्यारह वोटों के बहुमत से पारित हो सका था जो इंग्लैंड के समाज और राजनीति में गहरी खाई की गवाही देता है।

इस महत्वपूर्ण मोड़ पर चार जनवरी 1642 को राजा ने संसद में विपक्ष के मुख्य नेताओं को गिरफ्तार करने की उम्मीद करते हुए 400 सैनिकों के अपने सशस्त्र बल के साथ संसद पर हमला करके जवाब देने का फैसला किया। अब सशस्त्र टकराव शुरू हुए जिन्होंने इस क्रान्ति को गृह युद्ध का नाम दिया और जो 1649 में चार्ल्स I को प्राणदंड देने और ओलिवर क्रोमवेल की अध्यक्षता में एक गणराज्य के गठन के साथ समाप्त हुए। इससे इंग्लैंड की क्रांति को गृह-युद्ध का नाम भी दिया जाता है। इसका अर्थ संसद की जीत था। जिन लोगों ने राजा का समर्थन किया और राजा के पक्ष से लड़े उन राजभक्तों को कैवलियर्स कहा जाता था क्योंकि वे सामन्ती युद्ध के सैनिकों की पुरानी परंपरा का प्रतिनिधित्व करते थे। जो संसद के पक्ष में थे उन्हें राडंड हेडस कहा जाता था और यह उनके द्वारा पहली जाने वाली टोपी से संबंधित था। कैवीलियर्स ने न केवल राजा बल्कि ईश्वर की तरफ से लड़ने का दावा किया और यह माना कि यह युद्ध सामाजिक सौहार्द बिगाड़ने वालों के खिलाफ और उनके खिलाफ था जो 'प्रजाजन को राजकुमार और राजकुमारों को गुलाम बनाना' चाहते थे, निष्ठाएँ जटिल थीं जिसमें केवल वर्ग के मुद्दे ही शामिल नहीं थे, हालांकि ये सर्वोपरि थे। जैसा पहले बताया गया है, धर्म और विदेश नीति और विद्रोहों की प्रकृति, जो स्काटलैंड और आयरलैंड को भी तस्वीर में शामिल करती हैं, ने भी इन निष्ठाओं को निर्धारित किया और सशस्त्र युद्ध के स्थानों से परे अधिक बड़े क्षेत्र में जीवन प्रभावित हुआ और यह टकराव के कारण पैदा माँगों, लूटपाट और कठिनाइयों के कारण था।

संसदीय विपक्षी शक्तियों के भीतर भी राजा का विरोध करने के तरीके और इस बात को लेकर कि वे परिवर्तन के लिए किस हद तक जा सकते थे, अलग-अलग समूह और भेद थे। मुख्य रूप से ये दो थे, प्रेसीबिटेरियन और इन्डीपेन्डेंट, दोनों का धार्मिक सम्बन्ध प्यूरिटन्स से था। इनमें प्रेसीबिटेरियन ज्यादा नरमपंथी थे जबकि इन्डीपेन्डेन्टस उग्र परिणामों पर जोर देते थे। ओलिवर क्रामवेल एक इन्डीपेन्डेंट थे जिन्होंने राजा के खिलाफ लड़ाई लड़ने के लिए एक आदर्श सेना का गठन किया और इस क्रिया में उन्होंने नागरिक सेना या मिलिशिया का स्वरूप उदारवादी तत्वों को बाहर निकालकर बदल दिया। यह नयी आदर्श सेना वह शक्ति थी जिसने जून 1645 में राजा की सेनाओं को पराजित किया था और जब स्कॉटस ने, जिन पर चार्ल्स भरोसा कर रहे थे, उन्हें इस संसद के प्रति निष्ठा रखने वाली सेना का सामना करने के लिए अकेला छोड़ दिया। 1644-45 गृहयुद्ध की सबसे बड़ी लड़ाई के वर्ष थे।

इस अवस्था में क्रामवेल के प्रति निष्ठावान सदस्यों की एक 'अवशेष संसद' बुलाई गई थी और उसने निर्णय लिया था कि राजा को प्राणदंड देकर राजतन्त्र का स्थान एक गणराज्य लेगा लेकिन इससे पहले बहुत से इन्डीपेन्डेंटस को, जिन्हें अत्यधिक उग्र समझा जाता था, संसद के एक बहुमत द्वारा उन्हें बर्खास्त कर दिया गया था। उग्रपंथी प्रभाव लेवलर्स और डिगर्स का था जिनके बारे में हम बाद में बात करेंगे जब हम गणराज्य को नेतृत्व करने वालों को रेखांकित कर लेंगे। 'रम्प पार्लियामेन्ट' या अवशेष संसद इसको इसलिए कहा गया था क्योंकि यह गृह-युद्ध से पहले के सत्र से चली आ रही दीर्घकालीन संसद की एक निरंतरता थी और संसद द्वारा आधिकारिक तौर पर इसे भंग नहीं किया गया था, जिसने राजा के विशेष अधिकार स्वयं ले लिया था। अब, संसद के भीतर उपर्युक्त मतभेदों के साथ, सत्र के लिए बुलाए गए केवल 150 सदस्यों ने राजा को प्राणदंड देने और गणराज्य स्थापित करने का निर्णायक फैसला पारित किया। यह प्राणदंड 30 जनवरी 1649 को दिया गया।

इस पूरी अवधि के दौरान ब्रिटिश संसद दो सदनों – हाउस ऑफ लॉर्डस और हाउस ऑफ कामन्स – से मिलकर बनी थी। दोनों में भू-संपत्तिवान कुलीन वर्ग के प्रतिनिधियों का प्रभुत्व था, हालांकि उच्च सदन मुख्य रूप से उपाधि वाले कुलीन वर्ग का था और हाउस ऑफ कामन्स में वे सदस्य थे जो सोलहवीं शताब्दी के अन्त और सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में भूमि के अधिग्रहण के कारण अभिजात्य वर्ग में शामिल हुए थे और इसका विस्तार किया था और इसमें वाणिज्य और भूमि दोनों में बड़ी हिस्सेदारी रखने वाले व्यापारी भी थे। ये राजतन्त्र के विशेष अधिकारों और निरंकुशता पर प्रतिबंध लगाने की माँग कर रहे थे। इनके पास 'मध्यम प्रकार के लोगों' और समृद्ध किसानों और कारीगरों का समर्थन भी था जिनमें से कुछ ने उग्र पंथी रुझानों का प्रदर्शन किया था। यह सवैंधानिकता के प्रयासों सहित प्रचन्ड गतिविधि और प्रयोग का दौर भी था।

बोध प्रश्न 1

1) इंग्लैंड की क्रांति के दौरान विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच टकराव की प्रकृति की चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) 1649 तक इंग्लैंड में राजा और संसद के बीच टकराव की प्रकृति का संक्षिप्त वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

6.5 ओलिवर क्रोमवेल और गणराज्य, 1649-53

सभी व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए गृह-युद्ध कॉमनवेल्थ के गठन के साथ समाप्त नहीं हुआ। क्रोमवेल को पहले से चले आ रहे मसलों से निपटना पड़ा और यद्यपि राजा को हटा दिया गया था लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि राजभक्तों की चुनौती खत्म हो गयी थी, जैसा कि घटनाएँ दिखलाएँगी। उनका व्यक्तित्व निश्चित रूप से उस अवधि में हावी रहा, जितना कि पहले चरण में राजा का रहा था। एक सामान्य जन और कृषक वर्ग का होने से उनकी सहानुभूति उन लक्ष्यों के प्रति थी जो संसद ने अपने लिए निर्धारित किए थे। उन्होंने जो समझौते किए वे शक्तियों के संतुलन द्वारा निर्धारित किए गए थे, ना कि उनके अपने स्वयं के झुकाव से। इस अर्थ में वह अपने लिए निरकुंश शक्ति के समर्थक नहीं थे जैसा उनसे पहले के राजा रहे थे। भले ही उन्होंने एक तानाशाह की तरह शासन किया, लेकिन उन्हें अपने शासन के लिए दिव्य मंजूरी या उससे जुड़े अनुष्ठानों और उपाधियों का उपयोग करने से परहेज था।

ओलिवर क्रोमवेल ने संसदीय मंजूरी की परवाह किए बिना शासन किया लेकिन उन्होंने राजतन्त्र की अनेक नीतियों को उलट दिया और नये कुलीन वर्ग और मध्यम वर्गों के हितों का ध्यान रखा। 1649 में उन्होंने आयरिश विद्रोह को कुचल दिया और 1650-51 में स्कॉटलैंड को जीत लिया और इस प्रकार राजतन्त्र का समर्थक मानी जाने वाली शक्तियों को पराजित कर दिया और इसके बाद उसने डच गणराज्य और स्पेन के साथ युद्ध किया।

विद्रोह के दौरान धार्मिक नीति और वित्त के मामलों पर मतभेदों के कारण क्रोमवेल ने 1653 में अवशेष संसद को भंग कर दिया। उन्होंने अपनी पसंद के 140 लोगों के साथ एक नयी संसद का निर्माण किया लेकिन जल्द ही उसे भी भंग कर दिया और राजा के पद से अंतर करते हुए स्वयं को 'लार्ड प्रोटक्टर' की उपाधि से नवाजा। प्रोटेक्टोरेट के पास एक संविधान था जिसे इन्सट्रूमेन्ट ऑफ गवर्नमेन्ट कहा जाता था और लार्ड प्रोटेक्टर और काउंसिल ऑफ स्टेट की शक्ति में सहभागिता थी। इसके द्वारा बनाई गई संसद में इंग्लैंड के अलावा स्काटलैंड और आयरलैंड के प्रतिनिधि शामिल थे। वे निजी संपत्ति के आधार पर एक बहुत ही प्रतिबन्धित मताधिकार द्वारा चुने गये थे। उस समय इसका अर्थ अनिवार्य रूप से यह था कि प्रतिनिधि नये अभिजात्य वर्ग सहित भू-अभिजात्य वर्ग से ही होंगे। संसद अब संवैधानिक रूप से कानून बना सकती थी और कर लगा सकती थी। इसने इंग्लैड में पहला लिखित

संविधान माना जाने वाला संविधान बनाया। नये अभिजात्य वर्ग और निजी संपत्ति के विशेषाधिकार को सुदृढ करते हुए वे चर्च, राजभक्तों और राजा के अधिकारियों की भूमियों की बहुत सी बिक्री हुई। 1651 के नौ-परिवहन अधिनियमों ने वाणिज्यिक पूंजी और औपनिवेशिक हितों को बढ़ावा देने में मदद की।

कॉमनवेल्थ के दौरान गृह-युद्ध समाप्त नहीं हुआ था। नई आदर्श सेना और इसके वर्चस्व ने इसके शुद्धिकरण और संरचना में बदलाव के बावजूद, कॉमनवेल्थ के दौरान इसे एक महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्ति बना दिया था। इसने आयरिश और स्कॉटस के विद्रोह को कुचलने में मदद की थी, और इसने संसद के पक्ष से राजभक्त सेनाओं से लड़ाई लड़ी थी। धर्म के संदर्भ में, क्रोमवेल ने प्यूरिटन्स का पक्ष लिया था क्योंकि कैथोलिकों को चार्ल्स I और जेम्स I का पक्षधर माना गया था और इसी तरह एंगलीकन चर्च को सोलहवीं सदी में राजतन्त्रीय राष्ट्र-राज्य के ट्यूडर्स द्वारा सुदृढ़ीकरण और सामाजिक-धार्मिक ऐसे गठबंधन, जो भू-संपत्तिवान और दरबार की महत्वपूर्ण पदवियों पर आधारित था और सत्रहवीं सदी तक चलता रहा, का समर्थक माना गया था।

क्रोमवेल की मृत्यु हो गयी और उसके बेटे रिचर्ड उनके उत्तराधिकारी बने लेकिन वे नियन्त्रण स्थापित करने में नाकामयाब रहे और इसने पूर्व राजा चार्ल्स के बेटे को आमंत्रित करने का अवसर प्रदान किया और जो समझौते वाले तेवर दिखाते हुए चार्ल्स II के रूप में सिहांसन पर वापिस आ गये। इस प्रकार पुनर्स्थापना के साथ कॉमनवेल्थ का प्रयोग समाप्त हो गया।

6.6 पुनर्स्थापना (1660) और गौरवशाली क्रांति (1688)

यदि कॉमनवेल्थ संसद के साथ स्थायित्व और सहयोग बनाने में असफल रहा तो गृह-युद्ध की आधिकारिक समाप्ति के बावजूद कॉमनवेल्थ के बाद राजतन्त्र की पुनर्स्थापना भी इसमें नाकामयाब रही। राज्य व्यवस्था में अन्तर्विरोध इस तथ्य में निहित था कि एक राजतन्त्र को अब एक विजयी संसद द्वारा पुनर्स्थापित किया गया था। हाउस ऑफ लार्डस को भी बहाल किया गया था, जिससे राजा के मनोनीत सदस्यों का बोलबाला था। लेकिन हाउस ऑफ कामन्स भी, जिसमें निर्वाचित घटक महत्वपूर्ण थे, महत्वपूर्ण हो गया।

इसका नतीजा यह हुआ कि राजतन्त्र के पक्षधर और सर्वोच्च सत्ता के रूप में संसद का पक्ष लेने वाले दोनों को अपनी लड़ाई, सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से हल करने की बजाए, संसद में अपनी लड़ाई आगे बढ़ानी थी। जो लोग 'दरबार' के पक्षधर थे (जो अदालत की नियुक्तियों और पदों पर आश्रित थे और उपाधि वाले कुलीन वर्ग से संबंधित थे और राजाओं के दिव्य अधिकार के प्रति सहानुभूति रखते थे), उन्हें टोरी के रूप में जाना जाने लगा। जो लोग आलोचनात्मक थे (और जिनका सामाजिक आधार नये अभिजात्य वर्ग में था या नये भू-संपत्तिवान कुलीन वर्ग में और जो सत्ता के विकेन्द्रीकरण के पक्षधर थे), उन्हें व्हिग्स् कहा गया। उनका आधार ग्रामीण क्षेत्रों में था जहाँ भूमि के स्वामित्व ने उन्हें शक्तिशाली और समृद्ध बना दिया था, और उन लोगों के बीच जिन्होंने नौ-परिवहन अधिनियमों के बाद वाणिज्यिक पूंजीवाद से नयी दौलत हासिल की थी और व्यापार में एकाधिकार के माध्यम से वैध व्यापार और वाणिज्य का विस्तार किया था।

ये सामाजिक और राजनैतिक टकराव धार्मिक मतभेदों पर भी लागू होते हैं। कैथोलिक धर्म के लिए चार्ल्स II और उसके बाद जेम्स II की पसंद को देशविरोधी समझा गया और स्पेन के साथ उसकी पहचान की गई। इसके अलावा इसने प्रशासनिक ढाँचे के अन्तर्गत अन्य धार्मिक पंथों के अवसरों का उल्लंघन भी किया। हालांकि कॉमनवेल्थ के दौरान भंग की गई कोर्ट ऑफ स्टार चेम्बर और ऐसी अन्य अदालतों को राजशाही के साथ पुनर्स्थापित नहीं किया गया था। फिर भी कैथोलिकों और उनकी नियुक्तियों के लिए वरीयता उन लोगों के हाथों में सत्ता लाने के लिए थी जिन्होंने राजतन्त्र का समर्थन किया था और इसलिए प्रशासन में केन्द्र का नियन्त्रण स्थापित करने का भी समर्थन किया।

1670 के दशक तक, टोरी और व्हिग संसद के भीतर अच्छी तरह से परिभाषित राजनीतिक समूह थे। 1679 में व्हिग्स ने हेबियस कॉर्पस अधिनियम को पारित करवाया जिसने निजी संपत्ति के अधिकारों और संरक्षण को संस्थागत बना दिया और अभियुक्तों के लिए मुकदमें, सजा और कानूनी अधिकारों की प्रक्रिया निर्धारित कर दी ताकि राजा की मनमानी शक्ति से सुरक्षा मिल सके। इस संदर्भ में, जब राजा और संसद की शक्तियाँ एक विवादास्पद सवैंधानिक मुद्दा था और जेम्स II ने अपने विशेष अधिकारों का कड़ाई से उपयोग किया तब व्हिग्स के बहुमत वाली संसद ने हालैंड में विलियम और मेरी ऑफ आरेंज को सिहांसन स्वीकार करने के लिए और प्रोटेस्टेन्टवाद को बहाल करने के लिए आमंत्रित किया। इस प्रकार जिस बंदोबस्त का आगमन हुआ उसे 'गौरवशाली क्रांति'' के नाम से जाना गया। व्हिग्स के साथ जुड़े इतिहासकारों द्वारा इसे 'गौरवशाली क्रांति' के रूप में प्रस्तुत किया क्योंकि इसने संसद के अधिकारों को एक मजबूत आधार दिया जिससे संसद इंग्लैंड की राज्य व्यवस्था का एक संरचनात्मक घटक बन गई। 1689 में पारित अधिकारों के विधेयक (बिल ऑफ राइट्स) ने संसद के अधिकारों की फिर से घोषणा करके इस संरचना को संस्थागत बना दिया। इसने संसद के दो सदनों के साथ संवैधानिक संसदीय प्रतिनिधि प्रणाली की उत्पत्ति को चिह्नित किया जो दुनिया के अनेक राज्यों के लिए एक खाका बन गया है।

वर्ग की दृष्टि से इसने भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग के सामाजिक और राजनैतिक प्रभुत्व को स्थापित किया जो पूरी अठारहवीं शताब्दी में बना रहा। संसद के चुनाव, हमें याद रखना चाहिए, सम्पत्ति की योग्यता पर आधारित थे जिन्होंने मताधिकार को प्रतिबंधित कर दिया था। इन चुनावों ने ना केवल संसदीय विधि निर्माण में आभिजात्य वर्ग के व्यापक प्रभाव को सुनिश्चित किया लेकिन यह भी सुनिश्चित किया कि संसद की सामाजिक संरचना ऐसी हो जिसके अधिकांश सदस्य इसी वर्ग के रहें। एंग्लीकनवाद राज्य धर्म बना रहा और प्यूरिटिनिज्म जिसके मध्यम वर्ग के बीच में अनुपालन करने वाले काफी लोग थे, वह राजनैतिक मामलों में बेअसर रहा। यहाँ आर्थिक विकास की प्रकृत्ति को देखते हुए अभिजात्य वर्ग नये लोगों के प्रवेश के लिए कहीं अधिक खुला था और यह व्यापारिक और बाद में औद्योगिक हितों के प्रति ज्यादा अनुग्राही था। इसने यूरोप की तुलना में, इंग्लैंड की राज्य व्यवस्था को एक सुधारवादी सवैंधानिकता प्रदान की। दूसरी ओर यूरोप में अठारहवीं शताब्दी में एक तरफ निरंकुशता और उपाधिधारक कुलीन वर्ग और दूसरी तरफ इसका विरोध करने वाली शक्तियाँ, जिन्होंने क्रांतिकारी रूप लिया, के बीच एक मुकाबला देखने को मिला।

6.7 धार्मिक टकराव और राजनीति

धार्मिक टकराव उस समय की राजनीति के साथ एक दूसरे से लिपटे हुए थे क्योंकि न केवल धार्मिक विश्वास सर्वव्यापी थे बल्कि इसलिए भी कि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में गहन धार्मिक युद्ध हुए। टयूडर राजाओं और स्टुअर्ट शासकों के अपने स्वयं के व्यक्तिगत झुकाव थे और साथ ही साथ एक संस्था के रूप में राजशाही के समर्थन के भी आधार थे, जबकि निरंकुशता का विरोध करने वालों के लिए जरूरी नहीं था कि वे उसी धर्म से सहमत होते।

सोलहवीं शताब्दी में, धार्मिक सम्बन्धता के सवाल पर, संसद ने कैथोलिक चर्च और उसके अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार क्षेत्र के खिलाफ टयूडर शासकों का समर्थन किया था। इंग्लैंड धीरे-धीरे पवित्र रोमन साम्राज्य से स्वतंत्र हो गया था, उसने कैथोलिक स्पेनिश साम्राज्य को समुद में चुनौती दी और उसकी अपनी नौ-परिवहन योजनाएँ और यात्राएँ थी। धर्म सुधार और मठों की भूमि की जब्ती और उनकी बिक्री (1536 से 1540) ने एक भूमि बाजार निर्मित किया और भूमि को बाजार में खरीदी और बेचे जाने वाली वस्तु बना दिया। इसका मतलब यह है कि अब इसे गैर-कुलीन वर्गों या कुलीन वर्ग के उन लोगों द्वारा खरीदा जा सकता था जिनके पास भूमि सामन्ती स्वामित्व के रूप में नहीं थी और जो सामन्तों के मातहत थे। इस प्रकार चर्च और राज्य के बीच टकराव नई अर्थव्यवस्था के उदय और इससे लाभान्वित होने वाले सामाजिक वर्गों के लिए स्वाभाविक था और यह भी स्वाभाविक था कि इन हितों के प्रभुत्व वाली संसद को अब इस धार्मिक टकराव में नये राजतन्त्र का समर्थन करना था।

सत्रहवीं शताब्दी में, धर्म सामाजिक जीवन को नियमित और प्रभावित करता रहा। यह बपतिस्मा (Baptism) से लेकर दफन तक किसी व्यक्ति के जीवन के सभी चरणों में मौजूद था। यह गाँव, बस्ती और कस्बों के स्तर तक शिक्षा और समाजीकरण का मुख्य साधन था। इसने मौजूदा सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था का बचाव किया, ठीक उसी तरह जैसे इसने मध्ययुग में सामन्तवाद का बचाव किया था। सामाजिक टकराव ने इसलिए, सत्रहवीं शताब्दी में भी, अनिवार्य रूप से एक धार्मिक रूप ग्रहण कर लिया और विरोधाभासी विचारों को अक्सर धार्मिक रूप में जामा पहना कर पेश किया जाता था। इस प्रकार धार्मिक पुस्तिकाओं ने इंग्लैंड की क्रांति के दौरान दोनों पक्षों की बहस में बड़ी तादाद में गणतन्त्रवाद को स्वीकारने में उनके समर्थकों द्वारा अपने विचारों को धार्मिक तर्कों के माध्यम से व्यक्त किया गया था।

जब जेम्स सिहांसन पर आरूढ़ हुए तो केल्विनवादी और कैथोलिक पादरियों ने उन्हें अलग-अलग दिशाओं में खींचने की कोशिश की और प्यूरियन पादरियों ने उनसे अपेक्षा की कि वे चर्च के उपयोग के मामलों पर ध्यान देगें। चार्ल्स II ने कैथोलिकों का पक्ष लिया और उसके बाद जैम्स II ने भी वैसा ही किया था और यह अनेक सांसदों को देशविरोधी लग रहा था और धार्मिक सहिष्णुता पर एक सीधा हमला और इंग्लैंड में कैथोलिक धर्म की बहाली करने की एक साजिश मानी गई जिसमें चर्च की भूमियों की वापसी भी शामिल था क्योंकि कैथोलिक धर्म की पहचान स्पेन या डच राज्य के साथ की गई थी। चार्ल्स के मुख्यमंत्री विलियम लॉड एक आर्मेनियन थे और यह सोचा गया कि धर्म सुधार और संसदीय विशेष अधिकारों के सभी लाभ चार्ल्स के तहत पूरी तरह से मिट जायेंगे। क्रोमवेल और गणतंत्र, जिसमें प्यूरिटन हावी रहे, इन शंकाओं के प्रति एक प्रतिक्रिया थी। इन विरोधात्मक दृष्टिकोणों के साथ शासन और

प्रशासन में केन्द्रीयकरण और विकेन्द्रीयकरण पर टकराव धार्मिक मुद्दों के साथ परस्पर जुड़ गये थे।

अधिकांश बार राजा और संसद के बीच टकरावों का तात्कालिक कारण विद्रोहियों पर अंकुश लगाने के लिए वित्त की जरूरतों को लेकर हुआ। स्टुअर्ट शासन के दौरान स्काट्स और आयरिश लोगों ने बार-बार विद्रोह किये और इनसे निपटने के लिए राजा को अपनी स्थाई सेनाओं को वित्तीय आधार देने के लिए करों की माँग करनी पड़ी। और यह कर मुख्य रूप से कृषि के वाणिज्यीकरण का लाभ प्राप्त करने वाले कुलीन जन पर या व्यापार के एकाधिकार से लाभान्वित व्यापारियों पर पड़ा ना कि उपाधिधारक कुलीन वर्ग पर जिनको राजतन्त्र के समर्थन के बदले में कराधान के सम्बन्ध में कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे। इन विद्रोहों में धार्मिक टकराव अपरिहार्य हो गया क्योंकि स्कॉट्स और आयरिश ने इन्हें इंग्लैंड के एंग्लीकन चर्च को लादने के प्रयास के रूप में देखा और आयरिश के मामले में बहुसंख्यक कैथोलिक किसानों पर प्रोटेस्टेन्ट जमींदारों को लादने के रूप में। डच और फ्रांसीसियों के साथ भी व्यापार की प्रतिद्वन्द्विता अलग-अलग राज्यधर्मों के कारण और अधिक जटिल हो गयी थी। राजतन्त्र और संसद के अलग-अलग विरोधी परिप्रेक्ष्य के कारण, न केवल देश-भक्ति के मुद्दे पर बल्कि धर्म के बारे में भी, संसद ने अन्ततः विलियम और मेरी ऑफ आरेंज को सिहांसन पर आरूढ़ होने के लिए आमंत्रित किया जिसने गौरवशाली क्रांति, जिसकी ऊपर चर्चा की गयी है, का रूप धारण किया।

6.8 बौद्धिक प्रवृत्तियाँ

इंग्लैंड की क्रांति से जुड़ी बौद्धिक परम्पराएँ समृद्ध और विविधतापूर्ण हैं, जो कि राजतन्त्रवादी – रूढ़िवादी से लेकर प्रारंभिक काल्पनिक समाजवादी तक हैं। पुनर्जागरण, धर्म-सुधार, प्रतिधर्म-सुधार और ब्रह्मांड से सम्बन्धित नये आविष्कारों और वैज्ञानिक खोजों और इसमें पृथ्वी के स्थान से जुड़े विचार एक समृद्ध विरासत को सामने लाए जिनका इंग्लैंड की क्रांति के दौरान विभिन्न समूहों द्वारा किसी ना किसी रूप में प्रतिनिधित्व किया गया था। राजनैतिक क्रियाकलापों में उनका प्रतिनिधित्व राजतन्त्रवादी, फिफ्थ मोनार्की, प्यूरिटन, लेवलर और ड़िगर्स, क्वेकरर्स और अन्य, जिन्होंने बपतिस्मा और विवाह के रीति-रिवाज पर सवाल उठाए और जिन्होंने स्वर्ग और नरक के विचार पर सवाल उठाए, द्वारा किया गया। उस समय के सामाजिक-राजनैतिक वातावरण में प्यूरिटनवाद ने एक महत्वपूर्ण विचारधारा के रूप में योगदान दिया। इसने न केवल धार्मिक जीवन में बल्कि राजनैतिक सम्बन्धों में भी एक विभाजन पैदा किया जिसे राजा और संसद के बीच टकराव में और गृहयुद्ध में देखा जा सकता है जिसका अंग्रेजी समाज में एक मजबूत सामाजिक आधार था। इसने संसद के राजनैतिक प्रभाव को वजन प्रदान किया। लैवलर्स मुख्य रूप से लंदन के आसपास केन्द्रित छोटे सम्पत्तिवान वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला एक उग्र राजनैतिक आन्दोलन था जो धनी कुलीन वर्ग द्वारा भूमियों की बाड-बन्दी, जो छोटे किसानों को भूमि-हीन बना देती थी, का विरोधी था। उन्हें लेवलर्स इसलिए कहा जाता था कि उन्होंने साझा जमीनों पर कब्जे का विरोध किया था जिसके उपयोग का अधिकार सभी को था। उनके महत्वपूर्ण नेता जॉन लिलबोर्न और जॉन वाइल्डमैन थे जिन्होंने उनका लोकतान्त्रिक कार्यक्रम तैयार किया जिसमें मताधिकार में वृद्धि शामिल थी (हालांकि हर वयस्क पुरुष शामिल नहीं था और निश्चित रूप से महिलाएँ तो बिल्कुल नहीं) और इसमें अन्य राजनीतिक सुधार भी थे जो समृद्ध भू-संपत्तिवान कुलीन वर्ग की

शक्ति पर अंकुश लगा सकते थे। वे व्यापार के एकाधिकार और उद्योग निगमों के विशेषाधिकारों के भी विरोधी थी, और वे 'छोटे' लोगों की सुरक्षा के लिए नये कानूनों की माँग कर रहे थे। सबसे उग्र विचार के डिगर्स थे जिन्होंने स्वयं को 'ट्रू लेवलर्स' कहा था, क्योंकि वे वास्तव में एक जमींदार के खेत को खोदते थे और उन्होंने उपज पर सभी के अधिकार का दावा किया और पूरी तरह से निजी संपत्ति और वर्ग-भेद के विचार का विरोध किया। संसद की उच्च वर्गीय संरचना को देखते हुए, उन्होंने संसद के द्वारा सभी लोगों के लिए आवाज उठाने के अधिकार पर सवाल उठाये। वे समतावाद, न्याय और स्वतंत्रता के विचारों से प्रेरित थे, हालांकि उनके पास कोई ठोस कार्यक्रम नहीं था और बाद के इतिहासकारों ने उनके नजरिये को काल्पनिक और अपने समय से बहुत आगे का करार दिया। उनके मुख्य नेता विन्सटैनली थे और उन्होंने एक आदर्श समुदाय स्थापित करने की कोशिश की लेकिन असफल रहे। लेवलर्स और डिगर्स गणतन्त्र के लिए भी स्वीकार्य नहीं थे।

6.9 क्रांति और गृह-युद्ध के प्रश्न

इतिहासकारों में इस बात पर बहस चल रही है कि विचाराधीन अवधि को क्रांति या गृह-युद्ध की संज्ञा दी जानी चाहिए। जो वर्ग विश्लेषण या घटनाओं के सामाजिक विश्लेषण की दिशा में झुकाव प्रदर्शित करते हैं वह इसे क्रांति की संज्ञा देते हैं। इस अवधि के दौरान इंग्लैंड ने दोनों सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के कारण और एक सवैंधानिक प्रणाली के विकास में ऐसे मौलिक परिवर्तन के कारण, देखा जो एक आधुनिक पूंजीवादी समाज के लिए स्वाभाविक थे। इस अर्थ में इसे एक क्रांति करार दिया गया है, हालांकि इसमें आधुनिक दुनिया में बाद में होने वाली क्रांतियों की अनेक विशेषताएँ नहीं पाई जाती जिन्होंने नये राजनैतिक शासन पद्धति और वर्गशक्तियों के संतुलन में एक गुणात्मक परिवर्तन लाया था। यह सर्वसम्मति है भले ही विप्लवकारी क्रांतियों के नये अध्ययन अब उपेक्षित निरंतरताओं के अध्ययन की राह पर चल रहे हैं।

दूसरी तरफ, अन्य इतिहासकारों ने अपनी व्याख्या में इन परिवर्तनों को इतना मौलिक नहीं माना है। विशेषकर क्योंकि कामनवेल्थ के छोटे अन्तराल के बाद राजतन्त्र की पुनर्स्थापना हुई जो इंग्लैंड की संरचना में एक महत्वपूर्ण शक्ति नहीं तो भी एक महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराती है। संवैधानिक राजतन्त्र का होना क्रांति के ना होने के रूप में देखा जाता है और केवल दो राजनैतिक संस्थाओं के बीच संघर्ष के रूप में जिसने अनिवार्य रूप से गृह-युद्ध का स्वरूप ले लिया था और इसलिए यह नामकरण है।

घटनाओं के हमारे सर्वेक्षण और इन वर्षों के दौरान टकराव के स्वरूप से हमने देखा है कि सशस्त्र संघर्ष लगभग पूरी अवधि के दौरान चले, स्टुअर्टस के उत्तराधिकार से लेकर पुनर्स्थापना तक और जो 1688 के बंदोबस्त के साथ ही अन्ततः खत्म होते हैं। हालांकि हम कह सकते है कि यह केवल एक गृह-युद्ध से अधिक क्रांति का गुणसूचक नाम ज्यादा उचित है। इस अर्थ में कि इसमें सामाजिक और राजनैतिक प्रगति (यदि रूपान्तरण नहीं) हुई। ये प्रकाशन उन मुद्दों की और भी इशारा करते हैं जो इसके बाद से आधुनिक समाज के सरोकार बने रहेंगेः स्वतंत्रता, प्रतिनिधित्व और सम्प्रभुता, व्यक्तिगत धार्मिक स्वतंत्रता, भाषण और संघ की स्वतन्त्रता, और सबसे बढ़कर, निजी संपत्ति का अधिकार, जो बुर्जुआ पूंजीवादी समाज की कसौटी है। एक तरह से यह

राजा और संसद के बीच यह संघर्ष सामन्तवाद की विरासत की समाप्ति के रुझान और उत्पादक शक्तियों और उत्पादक सम्बन्धों के स्वतंत्र विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करने की तैयारी, और परिवर्तन को अवरुद्ध करने वाली धार्मिक और बौद्धिक जंजीरों के विलुप्त होने को प्रकट करता है।

दूसरी तरफ यह स्पष्ट था कि राजा पुराने तरीकों को जारी नहीं रख सकते थे जिसमें महाद्वीप के निरकुंश शासकों जैसी आकांक्षाएँ निहित थीं। व्यक्तिगत राजाओं की सत्ता की आकांक्षाओं और विशेष धार्मिक पंथों या धार्मिक समूहों के लिए तरजीह देने से रोकने वाला कोई नहीं था। इसमें भविष्य के संघर्ष के बीज निहित थे जो इस अवधि में पुनर्स्थापना लक्षणों को दर्शाते हैं और जो गौरवशाली क्रांति के बन्दोबस्त से आगे जाते हैं यह बंदोबस्त राजनैतिक दलों के गठन के साथ अठारहवीं शताब्दी में जारी रहे और जिसमें राजा एक महत्वपूर्ण कारक था।

बोध प्रश्न-2

1) कॉमनवेल्थ में ओलिवर क्रोमवेल की भूमिका का संक्षेप में वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) इंग्लैंड की क्रांति के दौरान प्रमुख बौद्धिक रुझानों की चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

6.10 सारांश

इंग्लैंड की क्रांति और आगामी पुनर्स्थापना और 'गौरवशाली क्रांति' का निर्माण करने वाली घटनाओं के हमारे सर्वेक्षण और विश्लेषण से आपको अंदाजा हो गया होगा कि यह इंग्लैंड के इतिहास का एक बहुत महत्वपूर्ण दौर था। इसने भविष्य की ब्रिटिश राजनैतिक प्रणाली जिसको सवैंधानिक राजतंत्र के रूप में चिह्नित किया गया, उसके आधार का निर्माण किया था। इसने ब्रिटेन और यूरोपीय महाद्वीप के बीच समानता और अन्तर के बीज बोये जो आज तक कायम हैं।

हमने सत्रहवीं शताब्दी इंग्लैंड की क्रांति की व्याख्या यूरोप के व्यापक संदर्भ में करने की कोशिश की है। इस अवधि के सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक विकासों ने राजनैतिक टकरावों के लिए आधार तैयार किया, विशेष रूप से राजा और संसद के बीच सत्ता के लिए प्रतिस्पर्धा क्योंकि यह अंग्रेजी राजनैतिक व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण

संस्था बन गयी। इस अवधि में उच्च वर्गों के बीच भविष्य के समायोजन और वर्ग गठबंधनों के बीज भी मौजूद थे जो ब्रिटिश इतिहास को चिह्नित करते रहे।

हालांकि इस अवधि में विरोधी शक्तियों के बीच सशस्त्र टकराव भी शामिल था, लेकिन इंग्लैंड की क्रांति के मूलभूत मुद्दे उन सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों के निर्माण के इर्द-गिर्द केन्द्रित थे जिन्होंने सामन्ती समाज के पतन के बाद पूंजीवाद और आधुनिकता के विकास की राह को प्रशस्त किया। इसने क्रांति का जो रूप लिया वह यूरोप की बाद की क्रांतियों की तुलना में इतना अधिक अलग और सीमित था, और ऐसा यह आंशिक रूप से अंग्रेजी समाज की विशिष्ट संरचना और इंग्लैंड में राजतन्त्र के कारण था। यह आंशिक रूप से इस तथ्य के कारण भी था कि यहाँ सामन्तवाद का पतन हो गया था और सामन्तवाद के पतन और पूंजीवाद के विकास के बीच एक लम्बी अवधि थी जो महाद्वीप की तुलना में अधिक लम्बी थी। इसने राजनैतिक विकास क्रम को लम्बी अवधि में विप्लवकारी होने की बजाए निरन्तर सुधारात्मक होने की गुजाइंश पैदा की। इंग्लैंड की क्रांति इसका पहला प्रमाण थी, और पुनर्स्थापना इंग्लैंड की क्रांति का उतना ही हिस्सा थी जितना कि गणतन्त्र था।

6.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) भाग 6.3 देखें।
2) भाग 6.4 देखें।

बोध प्रश्न-2

1) भाग 6.5 देखें।
2) भाग 6.8 देखें।

इकाई 7 आधुनिक विज्ञान*

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 आधुनिक विज्ञान और ज्ञान-प्रणाली की प्रकृति

7.3 सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में विज्ञान के विकास में कुछ प्रमुख योगदान

7.3.1 खगोल विज्ञान और भौतिकी में विकास

7.3.2 एक उपकरण के रूप में गणित

7.3.3 गैर-परिमाणात्मक क्षेत्रों में विकास

7.3.4 रस-विद्या से रसायन-शास्त्र तक

7.4 सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के वैज्ञानिक विकास की व्याख्या

7.5 महिलाएँ और आधुनिक विज्ञान

7.6 सारांश

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में विज्ञान के विकास के बारे में निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे :

- आधुनिक विज्ञान की प्रकृति विशेषकर इसकी प्रायोगिक प्रकृति;
- विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रमुख विकास;
- इतिहासकारों द्वारा वैज्ञानिक विकास की विभिन्न व्याख्याएँ; और
- विज्ञान के विकास में महिलाओं की भूमिका।

7.1 प्रस्तावना

विज्ञान को अक्सर प्राकृतिक घटना के व्यवस्थित अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसके मौलिक मानव उपकरण अवलोकन और प्रयोग हैं। विज्ञान यह समझने का ठोस मानवीय प्रयास है या बेहतर तरीके से समझने का प्रयास है कि प्राकृतिक विश्व कैसे काम करता है या प्राकृतिक विश्व का इतिहास क्या है और इस समझ का आधार अवलोकन योग्य भौतिक साक्ष्य होता है। इस तरीके से परिभाषित वैज्ञानिक प्रगति, जो आधुनिकता के उदय के लिए प्रेरक शक्ति है, के लिए इस तरह की आलोचनात्मक मानसिकता की जरूरत होती है जो पूर्वाग्रह से मुक्त हो और नये तरीके से सोचने के लिए तैयार हो। वर्तमान में विज्ञान का उपयोग एक संकीर्ण तकनीकी-तंत्र पर आधारित सामाजिक दुनिया में किया जा रहा है। उससे यह समझ पैदा हो रही है कि जो कुछ भी तकनीकी रूप से व्यवहार में लाया जा सकता है या

* इकाई लेखक : प्रो. श्रीकृष्ण

प्राप्य है, वह हमें मानवीय और पर्यावरणीय परिणामों की परवाह किये बिना, प्राप्त कर लेना चाहिए। हालांकि, सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में आधुनिक विज्ञान एक लम्बी और धीमी प्रकिया के द्वारा एक तटस्थ और मूल्य-मुक्त विषय के रूप में उभरा था। यह कुछ शताब्दियों के बाद हुआ कि विज्ञान शासकीय अल्पतंत्रों के अधीन आ गया जिन्होंने पृथ्वी के पर्यावरण को नष्ट करने और ऐसे सामूहिक विनाश के हथियार बनाने के लिए वैज्ञानिक ज्ञान का दुरुप्रयोग किया जो पूरी मानव सभ्यता को मिटा देने की क्षमता रखते हैं। अपने प्रारंभिक चरण में भी आधुनिक विज्ञान एक खतरनाक व्यवसाय था क्योंकि इसका विकास यूरोप में चर्च की स्थापित सत्ता के साथ संघर्ष और टकराव के साथ हुआ था। 1600 सी. ई. में, इतालवी भिक्षु जियोर्दानो ब्रुनो को वैज्ञानिक शोध और दर्शन में स्वतंत्र सोच और विचारों के लिए चर्च ने मौत की सजा देकर जिंदा जला दिया था। प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलीलियो गैलिली इस नियति से मुश्किल से बच पाये लेकिन इसके लिए उन्हें सार्वजनिक रूप से कोपरनिकस की धारणा का परित्याग करना पड़ा जिसके तहत सूर्य केन्द्रित ब्रह्मांड में पृथ्वी सहित सभी ग्रह सूर्य के चारों तरफ घूमते हैं।

इस इकाई में हम यूरोप में आधुनिक विज्ञान के सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में विकास की कहानी की चर्चा करेंगे। साथ ही साथ हम इस विकास के कारणों और इन विकासों की व्याख्या भी करेंगे। इस विकास के संदर्भ और समाज और संस्कृति पर इनके प्रभाव भी इसमें शामिल होंगे।

7.2 आधुनिक विज्ञान और ज्ञान-प्रणाली की प्रकृति

आधुनिक विज्ञान यह समझने और समझाने का प्रयास करता है कि प्रकृति कैसे काम काम करती है और चीजें हमें वैसी क्यों दिखती हैं जैसी वे मौजूद हैं? यहाँ "प्राकृतिक" का तात्पर्य आनुभविक और अनुभव-जन्य ज्ञान से है जिसका पता हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा या ऐसे उपकरणों के द्वारा जो हमारी ज्ञानेन्द्रियों का विस्तार हैं, लगा सकते हैं। इसमें ऐसी व्याख्याएँ शामिल हैं जो सतर्कतापूर्वक और सटीक हों तथा जिनसे आगे होने वाली घटनाओं का पूर्वानुमान लगाया जा सके। वैज्ञानिक ज्ञान चूँकि प्राकृतिक विश्व का ही अध्ययन करता है इसलिए यह स्वभाविक रूप से कुछ हद तक सीमित ही होता है और यह स्वाभाविक रूप से अलग-अलग हद तक अनिश्चित होता है। यह कभी पूर्ण, शास्वत, निश्चित, अचूक या स्थायी सत्य का दावा नहीं करता है। यह भौतिक ब्रह्मांड की यथार्थवादी धारणा, जो हमारी संवेदनाओं से स्वतंत्र अस्तित्व में है, उस पर आधारित है। इसमें यह भी माना गया है कि मनुष्य में विश्व और इसकी कार्यप्रणाली को समझने बूझने की क्षमता है। अनुभव द्वारा अर्जित प्रक्रियाएँ प्राकृतिक घटनाओं को समझने और उनकी व्याख्या करने के लिए पर्याप्त हैं। वैज्ञानिक यह भी मानते हैं कि प्रकृति समय और स्थान के विस्तार में समान रूप से कार्य करती है (जब तक की हमारे पास इसके विपरीत साक्ष्य न हों)। चूँकि हमारा वैज्ञानिक ज्ञान केवल प्राकृतिक विश्व की मानवीय संवेदनाओं और अनुभवों पर आधारित है, यह सीमाओं के अधीन है। उदाहरण के लिए, हम अवरक्त या परा-बैंगनी प्रकाश किरणों को नहीं देख सकते और न ही बहुत उच्च या निम्न आवृत्ति की ध्वनियों को सुन सकते हैं। लेकिन हम ऐसे उपकरण बना सकते हैं जो हमारी ज्ञानेन्द्रियों की क्षमता में वृद्धि कर सकते हैं। लेकिन मनुष्यों द्वारा निर्मित उपकरणों की सटीकता की भी सीमा है। बहुधा विश्व को हम अपनी पूर्व की धारणाओं के आधार पर देखते हैं जैसा कि कहावत है कि हम

दुनिया को अपने दिमाग से देखते हैं, आँखों से नहीं। वैज्ञानिक ज्ञान, इसलिए आवश्यक रूप से प्रासंगिक और पराश्रित ज्ञान है, यह अनिश्चित होता है, अचूक और निरपेक्ष नहीं, आध्यात्मिक और आत्म-विधा सम्बंधी ज्ञान की तरह नहीं (जो 100 प्रतिशत निश्चित और अचूक है। वैज्ञानिक ज्ञान सदैव नये साक्ष्यों और सोच-समझ के नये तरीकों के अधीन होता है। इसलिए उपलब्ध आँकड़ों और साक्ष्य के मूल्यांकन पर निर्भर होने के कारण इसमें तब़दीली आ सकती है। ज्ञान में संशोधन हो सकता है। फिर भी यह समझना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि वैज्ञानिक व्याख्याओं की अंतर्निहित अनिश्चिताओं के बावजूद वैज्ञानिक ज्ञान अभी भी विश्व में भौतिक ब्रह्मांड और उसकी कार्यप्रणाली का सबसे विश्वसनीय स्पष्टीकरण है। वैज्ञानिक स्पष्टीकरण की निरपेक्ष और पूर्ण सत्यता के अभाव में, वैज्ञानिक यह निर्धारित करने के लिए कौन सा स्पष्टीकरण अलग-अलग विकल्पों में ज्यादा बेहतर होगा, तुलनात्मक आलोचनात्मक सोच का उपयोग करते हैं। क्योंकि यह मानना भी दोषपूर्ण होगा कि कोई भी या सभी स्पष्टीकरण समान रूप से मान्य हैं और सत्य केवल अपनी-अपनी राय का मसला है।

7.3 सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में विज्ञान के विकास में कुछ प्रमुख योगदान

इस भाग में हम आधुनिक विज्ञान के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर चर्चा करेंगे और यह भी देखेंगे कि वे पूर्व आधुनिक यूरोप में कैसे विकसित हुए।

7.3.1 खगोल विज्ञान और भौतिकी में विकास

निकॉलस कोपरनिकस (1473-1543) ने अरस्तु और टॉलमी के विचारों को ध्वस्त कर दिया। अपनी पुस्तक *ऑन द रिवोन्यूशन ऑफ द हेवनली सफीयर्स* (साथी खगोलविदों के द्वारा अपमान की आशंका के कारण 1543 में मरणोपरांत प्रकाशित) में, कोपरनिकस ने सुझाव दिया कि सूर्य ब्रह्मांड का केन्द्र था अैर पृथ्वी तथा अन्य ग्रह इसके चारों ओर गोलाकार कक्षाओं में घूमते थे। इस "सूर्य-केन्द्रित" अवधारणा में कहा गया था कि पृथ्वी नहीं बल्कि सूर्य ब्रह्मांड का केन्द्र है। यह उस समय की प्रमुख सोच के विपरीत था और इस विचार ने इस विषय पर सैकड़ों वर्षों की पारम्परिक शिक्षाओं को चुनौती दी। कोपरनिकस की पुस्तक के बड़े वैज्ञानिक और धार्मिक परिणाम हुए। जब उन्होंने पृथ्वी को सिर्फ एक अन्य ग्रह के रूप में माना तो यह धारणा नष्ट हुई कि सांसारिक दुनिया स्वर्गीय दुनिया से अलग थी। कोपरनिकस के विचारों ने विज्ञान के क्षेत्र में दूसरे वैज्ञानिकों को भी प्रभावित किया। एक डेनिश खगोल-शास्त्री, टाइको ब्राहे (1546-1601) ने एक वेधशाला का निर्माण किया और तारों और ग्रहों की स्थिति पर लगातार बीस वर्षों तक आँकड़ें इकट्ठा करके आधुनिक खगोल विज्ञान के अध्ययन के लिए मंच तैयार किया। उनका सबसे बड़ा योगदान भारी मात्रा में आँकड़ों का संग्रह था, फिर भी उनके गणित के सीमित ज्ञान ने ब्राहे को आँकड़ों को सूझ-बूझ से इस्तेमाल करने से रोका। बाद में जोहान्स केपलर (1571-1630), जो एक जर्मन खगोल शास्त्री और ब्राहे के सहायक थे, के द्वारा इन आँकड़ों का उपयोग कोपरनिकस के विचार का समर्थन करने के लिए किया गया और उन्होंने यह स्थापित किया कि ग्रह सूर्य के चारों तरफ अण्डाकार कक्षाओं में घूमते हैं, न कि गोलाकार कक्षाओं में। केपलर के ग्रहों की गति के तीन नियम गणितीय गणनाओं पर आधारित थे और उन्होंने सूर्य केन्द्रित ब्रह्मांड में ग्रहों की चाल की सटीक भविष्यवाणी की थी। उनके

कार्य ने अरस्तु और टॉलेमी की पुरानी मान्यताओं और व्यवस्थाओं को ध्वस्त कर दिया।

वैज्ञानिक शब्द 1840 में गढ़ा गया था हालांकि सत्रहवीं सदी की प्रतिष्ठा महान वैज्ञानिक विकास के युग के रूप में है। यह गैलीलियो, केपलर, बेकन, पास्कल, देकार्त और न्यूटन की शताब्दी थी। लेकिन ये लोग स्वयं को प्राकृतिक दार्शनिक कहते थे। जोहान्स केपलर (1571-1630) ऐसे समय में रहे जब खगोल-विज्ञान और ज्योतिष को संयुक्त रूप से ही देखा जाता था। जर्मनी में पैदा हुए जोहान्स केपलर एक धर्मनिष्ठ ईसाई (एक भावुक लूथरन) थे, जिनको उनके अपने धार्मिक विश्वास ने विज्ञान का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया था। उनका यकीन था कि ईश्वर ने एक बुद्धिमान योजना के तहत दुनिया का निर्माण किया था और ईश्वर द्वारा प्रदत बुद्धि या तर्कशक्ति के माध्यम से यह ईश्वर की योजना मनुष्यों को सुलभ थी, प्राप्य थी। केपलर का मानना था कि यह दुनिया एक निर्माता द्वारा बनाई गई थी जिसने व्यवस्था और स्वर-संगति (संगीत स्वर का मेल की भाँति) और ज्यामितिय प्रारूप का उपयोग किया था। उनकी सोच थी कि उनकी आकाशीय भौतिकी ने केवल ब्रह्मांड के लिए ईश्वर की ज्यामितिय योजना को ही उजागर किया था। इसी तरह गैलीलियो गैलिली (1564-1642) भी विज्ञान के कई अलग-अलग क्षेत्रों से परिचित थे। उन्होंने सिर्फ एक ही विशिष्ट पेशे को नहीं चुना। वह तम्बूरा या वीणा और ऑर्गन बजा सकते थे और चित्रकारी भी अच्छी कर सकते थे। उन्होंने चिकित्सा का अध्ययन किया, गणित को खंगाला और ज्यामिती की प्रशंसा की। उनकी धर्मशास्त्र में भी रुचि थी।

1608 में यूरोप में कम शक्तिशाली टेलीस्कोप प्रयोग में थे जिन्हें स्पाईग्लास के नाम से जाना जाता था। इनके आविष्कार का श्रेय हालैंड के एक निवासी हैंस लिपरशी को दिया जाता है। इन प्रांरभिक दूरबीनों की आवर्धन शक्ति बहुत सीमित थी। लेकिन इनके वश में एक बाजार था। गैलीलियो एक नये ऑप्टिकल उपकरण के रूप में इस आविष्कार के बारे में जानते थे। उन्होंने ज्यादा आवर्धन शक्ति वाली बेहतर दूरबीनों का निर्माण शुरू किया। उनकी पहली दूरबीन ने केवल आठ गुना आवर्धन शक्ति तक का सुधार किया लेकिन उनकी दूरबीन में लगातार सुधार हुआ। गैलीलियों की दूरबीन अब सामान्य दृष्टि से लगभग दस गुणा आवर्धन करने में सक्षम थी हालांकि इसमें दृश्य का क्षेत्र सीमित ही था। गैलीलियो द्वारा इस उपकरण की सहायता से किये गये पर्यवेक्षणों से ही चन्द्रमा के पर्वतों और खड्डों और बृहस्पति के चन्द्रमाओं की खोज हुई। ब्रह्मांड के सूर्य केन्द्रित होने को सिद्ध करने वाले शुक्र ग्रह के चरणों का वर्णन और सौर कलंक के चित्र भी इन पर्यवेक्षणों का ही परिणाम थे।

गैलीलियों के समय में तोपखाने में सीसा, लोहा या अन्य सामग्रियों से बने तोप के गोलों का इस्तेमाल किया जाता था। इनका व्यास एक ही होता था लेकिन इनका वजन अलग-अलग होता था। नतीजतन, गोलों की भार की सीमा को मानकीकृत करने के लिए तोप चलाने वाले को विस्फोटक सामग्री को गोले के साथ समायोजित करना पड़ता था। अधिक बारूद के वजन के अनुपात में बारूद की मात्रा भी अधिक रखी जाती थी। गैलीलियो के कम्पास को तोप चलाने वालों के द्वारा एक अन्दाजा लगाने वाले यंत्र के रूप में उपयोग किया जाता था, क्योंकि यह विभिन्न बारूद सामग्रियों के वजन और मात्रा के बीच एक सम्बन्ध स्थापित करता था। गैलीलियो ने अटकलबाजी के स्थान पर अपने विचार अवलोकन के आधार पर प्रतिस्थापित किये

जैसे गिरने वाले निकायों की गति के नियम। इस प्रकार गैलीलियो ने प्रयोग करने को आधुनिक विज्ञान की आधारशिला के रूप में स्थापित किया।

उन्होंने अपनी प्रयोगात्मक पद्धति का उपयोग अपने नये अविष्कार किये गए टेलीस्कोप का इस्तेमाल करके खगोल विद्या में किया। उनके बृहस्पति के चार चन्द्रमाओं और चन्द्रमा की पहाड़ी सतह के इस उपकरण द्वारा अवलोकन ने इस पूर्व धारणा को नष्ट कर दिया कि ग्रह एक प्रकार के स्फटिक गोले थे। इसने उस धारणा को ध्वस्त कर दिया कि पृथ्वी ब्रह्मांड का केन्द्र है और इसके चारों और चन्द्रमा, सूर्य, पाँच ग्रह और अचल तारे, अलग-अलग पारदर्शी स्फटिक गोले घूमते हैं। गैलीलियो के साक्ष्यों ने कोपरनिकस के विचारों को पुष्ट किया। 1632 में अपनी पुस्तक *डायलॉग कन्सरिंग द टू चीफ वर्ल्ड सिस्टम* के प्रकाशन के बाद, जिसमें उन्होंने अरस्तु और टॉलेमी के कार्यों की खुले तौर पर आलोचना की थी, गेलीलियो को चर्च की धर्म न्यायाधिकरण संस्था द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया और जेल में डाल दिया गया। उन पर विधर्म (ईसाई विश्वासों और रूढिवादी धार्मिक मान्यताओं के विपरीत सोचने) का आरोप लगाया गया और धर्म-न्यायाधिकरण (विधर्मी को दबाने वाली मध्यकालीन ईसाई संस्था) ने उन्हें अपने विचारों को सार्वजनिक रूप से परित्याग करने के लिए मजबूर किया। आधुनिक समय में गैलीलियो का मुकदमा धार्मिक विश्वासों और वैज्ञानिक ज्ञान के बीच संघर्ष का प्रतीक है।

गैलीलियो जैसे वैज्ञानिक कार्यों के लिए सामाजिक और संस्थागत समर्थन था। गैलीलियो एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर्कल के प्रमुख सदस्य थे, जिसे *द पिनेली सर्कल* कहा जाता था। उन दिनों काफी जाने-माने लोग जियोबानी विन्सेन्जियों पिनेली के घर एकत्र होते थे, जहाँ स्वयं गैलिली भी रहते थे। पिनेली स्वंय पदुआ में एक मानवतावादी थे जो ज्ञान के कई क्षेत्रों में रुचि रखते थे। 1603 में, प्रिंस फेडरिको सेसी ने भी *एकेडिमिया डी लिन्सी* (द एकेडमी ऑफ लिंक्सेस) नाम की बौद्धिक कार्यशाला की स्थापना की। यह दर्शाता है कि अमीर और शक्तिशाली लोगों के संरक्षण ने वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल और एक ऐसी संस्कृति, जो इस जाँच-पड़ताल की समर्थक थी, के प्रसार में मदद की।

सदी के सबसे बड़े व्यक्ति शायद सर आइजैक न्यूटन 1642-1727 थे जो एक अंग्रेज थे। अपनी पुस्तक *प्रिंसिपिया मैथेमेटिका* (1687) में उन्होंने कोपरनिकस, कैपलर और गैलीलियो के विचारों को गणितीय नियमों की एक प्रणाली में संगठित किया और निकायों की गति के तीन नियम और सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण के नियम से जोड़ा। गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के अनुसार, ब्रह्मांड की हर वस्तु दूसरी वस्तु से आकर्षित होती है और इसको सटीक गणितीय सम्बंध से दर्शाया जा सकता है। इस आकर्षण का सटीक बल निकायों के द्रव्यमान और उनके बीच की दूरी पर निर्भर करता है। न्यूटन के नियम ने गणितीय रूप से साबित कर दिया कि सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, ग्रह और अन्य सभी पिंड गुरुत्वाकर्षण के भौतिक बल के अनुसार गतिशील हैं। इस तरह के प्रमाण से पता चला कि ब्रह्मांड नियमों के अनुसार संचालित होता है जिसे गणित की भाषा में समझाया जा सकता है। न्यूटन के व्याख्याकारों द्वारा सामन्यतया न्यूटन के रस-विद्या और धर्म-शास्त्र के क्षेत्र के कामों को या तो पूरी तरह अनदेखा किया गया है या उन्हें एक तरह का विचलन माना है जो उनके प्रमुख वैज्ञानिक कार्यों के लिए अप्रासंगिक थे। इस तरह के विचार का कोई मतलब नहीं है क्योंकि न्यूटन के लेखन से पता चलता है कि उनकी दोनों विषयों में गहरी रुचि थी। यह महत्वपूर्ण रूप

से उनके यांत्रिकी और प्रकाशिकी के कार्य से जुड़ा हुआ था। दरअसल, वे अपने रस-विद्या सम्बंधी अनुसंधान में आंशिक रूप से उन अंतर्निहित स्पष्टीकरण या सिद्धातों की तलाश में थे जो प्रकाशिकी और यांत्रिकी में उनकी खोजों पर रोशनी डाल सकते थे। उनका धर्म-शास्त्र सम्बंधी कार्य सामान्य दार्शनिक सिद्धान्तों के लिए उनकी तलाश का अहम हिस्सा था। इसलिए उनकी धार्मिक मसलों में रुचि एक विचित्र आदमी की असामान्यता नहीं थी बल्कि स्वाभाविक रूप से चीजों की तह तक पहुँचने की उनकी इच्छा थी, जिसके तहत वह ब्रह्मांड के बारे में बुनियादी सच्चाई का पता लगाना चाहते थे। कुछ इतिहासकारों ने यह तर्क भी दिया है कि धार्मिक मसलों में उनकी रुचि ट्रिनिटी कॉलेज के एक फैलो की अपने रूठिवादी धार्मिक विश्वास की पुष्टि द्वारा एंग्लिकन चर्च में विधिवत प्रवेश के लिए आवश्यक थी। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या यह केवल न्यूटन के धर्मशास्त्र में रुचि तत्काल भौतिक लाभ के लिए था? हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि न्यूटन भी अपने समकालीन यूरोपीय समाज में ही जी रहे थे जिस पर एक हजार साल के ईसाई धर्म का प्रभाव था।

7.3.2 एक उपकरण के रूप में गणित

सत्रहवीं सदी की शुरुआत में जॉन नेपियर द्वारा लघुगणक के आविष्कार ने कुछ कठिन गणनाओं को अपेक्षाकृत आसान बनाकर विज्ञान, खगोल विज्ञान और गणित की प्रगति में योगदान दिया। इसमें बाद में नेपियर और हेनरी ब्रिग्स द्वारा सुधार किया गया। यह इस युग के सबसे महत्वपूर्ण विकासों में से एक था और इसके बिना केपलर और न्यूटन जैसे सत्रहवीं सदी के भौतिकविद अपने कार्यों के लिए आवश्यक गणनाएँ कभी नहीं कर सकते थे। फ्रांसीसी खगोलशास्त्री और गणितज्ञ पियरे साइमन लाप्लॉस ने इसके बारे में लगभग दो सदियों बाद कहा था कि नेपियर ने खगोलविदों की मेहनत को आधा करके उनके जीवनकाल को दुगना कर दिया था। फ्रांसीसी रेने देकार्त (1596-1650) ने सत्रहवीं सदी के मध्य में विश्लेषणात्मक ज्यामितीय और कार्तेसियन निर्देशांक विकसित किए। इनकी मद्द से ग्रहों की कक्षाएँ ग्राफ पर प्रदर्शित की जा सकती थी। इसने बाद में परिकलन (कैल्कुलस) की नींव रखी। न्यूटन और स्वतंत्र रूप से जर्मन दार्शनिक और गणितज्ञ गोटफ्रेड लीबनिज (1646-1716) ने दो कार्यवाहियों द्वारा-अवकलन और समाकलन द्वारा – अति-सूक्ष्म परिकलन का विकास करके गणित के क्षेत्र में क्रांति ला दी। इसके विकास के दावे को लेकर विवाद हुआ। न्यूटन ने सम्भवतः लीबनिज से पहले गणित की इस विधि का विकास किया लेकिन लीबनिज ने अपना कार्य पहले प्रकाशित कराया जिससे उनके बीच एक लम्बा और कड़वा झगड़ा हुआ। विभिन्न दावों के पीछे जो भी सच्चाई हो, लेकिन लीबनिज की परिकलन की धारणा का ही उपयोग आजकल होता है। इस परिकलन की विधि का उपयोग ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे इंजीनियरिंग, अर्थशास्त्र, चिकित्सा और खगोल-शास्त्र में होता है। न्यूटन और लीबनिज दोनों ने गणित के अन्य क्षेत्रों में भी बहुत योगदान दिया। इसमें न्यूटन का सामान्यीकृत द्विपद प्रमेय का योगदान, परिमित अंतर का सिद्धांत और अनंत घातांक श्रृंखला का उपयोग और लीबनिज का कम्प्यूटर के एक प्रकार के यांत्रिक अग्रदूत का विकास और रैखिक समीकरणों को हल करने के लिए मैट्रिसेस का उपयोग शामिल हैं। अठारहवीं सदी में बाद में बर्नाली ब्रदर्स-जैकब और जोहान ब्रर्नाली – जो स्विटरजरलैंड में बेसेल के रहने वाले थे, ने लीबनीज के अति-सूक्ष्म परिकलन को आगे और भी विकसित किया।

7.3.3 गैर-परिमाणात्मक क्षेत्रों में विकास

विलियम गिल्बर्ट (1544-1603) ने 1600 में एक पुस्तक प्रकाशित की थी, *ऑन द मेग्नेट*, जो पूरे यूरोप में विद्युत और चुम्बकीय घटनाओं पर एक मानक कार्य बन गयी। इसमें गिल्बर्ट ने चुम्बकत्व और स्थिर विद्युत (जिसे एम्बर प्रभाव के रूप में जाना जाता हैं) के बीच विभेद किया। उन्होंने चुम्बक की ध्रुवीयता की तुलना पृथ्वी की ध्रुवीयता से की, और इस सादृश्यता पर अपना सम्पूर्ण चुम्बकीय दर्शन विकसित किया। गिल्बर्ट के निष्कर्षों ने सुझाया कि चुम्बकता पृथ्वी की आत्मा है और यह कि एक पूरी तरह से गोलाकार चुम्बकीय पत्थर-लॉडस्टोन – जब उसको पृथ्वी के ध्रुवों की सीध में रखा जाता है तो वह भी अपनी धुरी पर घूमता है जैसे कि पृथ्वी 24 घंटे की अवधि में अपनी धुरी पर घूमती है। गिल्बर्ट वास्तव में पारम्परिक ब्रह्मांड वैज्ञानिकों के इस विश्वास की आलोचना कर रहे थे कि पृथ्वी ब्रह्मांड के केन्द्र में स्थित है और उन्होंने गैलीलियो के इस विचार को पोषित किया और इस प्रस्ताव के रूप में सामने आया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक अशुद्धियों और लोक कथाओं के ढेर में डूबी हुई दो प्रतिबंधित घटनाओं की जाँच की अर्थात लॉडस्टोन चुम्बकीय पत्थर के टुकड़े और एम्बर के टुकड़ों का गूढ़ व्यवहार-जिनकी जाँच-पड़ताल से अलग-अलग शाखाएँ चुम्बकत्व और विद्युत पनपती हैं। गिल्बर्ट ने अन्य लोगों द्वारा एकत्रित किये गये, जाँचे गये और किये गये अनुभव से प्राप्त जानकारियों को क्रमबद्ध तरीके से रिकॉर्ड किया और स्वयं के प्रयोगों के माध्यम से विद्युत और चुम्बकीय पदार्थों के अनुभवजन्य गुणों को भी स्थापित किया।

विलियम हार्वे (1578-1657) एक अंग्रेजी चिकित्सक थे, जिन्होंने पादुआ विश्वविद्यालय में अध्ययन किया था। हार्वे ने अपने शोध को जानवरों के विच्छेदन के द्वारा आगे बढ़ाया था। उन्होंने पहली बार 1616 में कॉलेज ऑफ फिजिशियन में अपने निष्कर्षों का खुलासा किया और 1628 में अपने सिद्धातों को एक पुस्तक में प्रकाशित किया जिसका शीर्षक था : *एन एनाटोमिकल स्टड़ी ऑफ द मॉशन ऑफ हार्ट एंड द ब्लड इन एनिमल्स*। इसमें उन्होंने बताया कि कैसे हृदय शरीर रक्त में चक्राकार मार्ग से प्रवाहित करता है। हार्वे ने यह भी सुझाव दिया था कि मानव एवं अन्य स्तनधारी प्राणी शुक्राणु द्वारा एक अंडे के निशेचन के माध्यम से प्रजनन करते हैं। बाद में एक स्तनधारी प्राणी के अंडे को देखने में दो शताब्दियों का समय लगा, लेकिन फिर भी हार्वे के सिद्धांत ने उनके अपने जीवनकाल में ही विश्वसनीयता हासिल कर ली थी।

7.3.4 रस-विद्या से रसायन-शास्त्र तक

ऐतिहासिक रूप से रस विद्या का जिक्र दोनों प्रकृति की खोज और ऐसे प्रारंभिक दार्शनिक और आध्यात्मिक विषय से था जिसमें धातुकर्म और रसायन शास्त्र जुड़े हुए थे। रस-विद्या के लक्ष्य नाना प्रकार के थे। रस-विद्या से संम्बधित लोगों का मकसद जीवन के अमृत (जादुई गुणों वाला एक ऐसा पदार्थ, जो धन, स्वास्थ और अमरता ला सकता था) को खोजना था। वे एक ऐसा दार्शनिक पत्थर नाम का एक पदार्थ खोजना या बनाना चाहते थे जो गरम करने पर हीन धातुओं के साथ मिलकर ताँबे और लोहे जैसी गैर-कीमती धातुओं को रूपान्तरण द्वारा उन्हें सोने में बदल देता। उन्होंने ब्रह्मांड के साथ मनुष्यों के सम्बंधों पर खोज करके और उस ज्ञान का उपयोग करके मानव की आत्मा को बेहतर बनाने की इच्छा भी जाहिर की। इस प्रकार रस-विद्या में वैज्ञानिक तथा रहस्यवादी तत्वों का विलय था। आधुनिक विज्ञान के उदय के साथ, रसायनविदों को अक्सर ढोंगी और कपटी लोगों के रूप में पेश किया गया। लेकिन

कई रसायनविद् वास्तव में गम्भीर दिमाग वाले और पेशेवर लोग थे जिनके काम ने आधुनिक रसायन विज्ञान और चिकित्सा के लिए आधार तैयार करने में मद्द की। रसायनविदों का योगदान इन रासायनिक उद्योगों में नहीं नकारा जा सकता जैसे बुनियादी धातु-विज्ञान, धातुकर्म, स्याही, रंजक, पेंट और सौंदर्य प्रसाधन, अर्क और शराब निर्माण, और चर्म शोधन की प्रकिया। एक सत्रहवीं सदी के जर्मन रसायनविद् ने फास्फोरस को अलग किया था। और इसी समय एक अन्य रसायनविद् ने चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने की सामग्री विकसित की थी जिसने दुनिया में सबसे महंगी वस्तुओं में से एक पर चीन के सदियों पुराने एकाधिकार को तोड़ दिया था। 1662 में, रॉबर्ट बॉयल (1627-1691) ने बॉयल नियम को स्पष्ट किया जिसमें कहा गया था कि किसी गैस के आयतन का उस पर पड़ने वाले दबाव के साथ सह-सम्बंध होता है। इस वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल और अन्य योगदानों के कारण बॉयल को कभी-कभी आधुनिक रसायन विज्ञान का पिता कहा जाता है। लेकिन अपने अन्य समकालीन लोगों की तरह ही उन्होंने स्वयं को एक प्राकृतिक दार्शनिक कहा। बॉयल ने तत्वों के रूपान्तरण पर दो लेख लिखे, जिनमें यह दावा किया गया कि क्विकसिल्वर के द्वारा पारा सोने में बदला जा सकता है। लेकिन उन्होंने इस पदार्थ के घटकों का खुलासा नहीं किया। इस प्रकार वह रस-विद्या की जड़ों से ही जुड़े हुए थे।

एंटोनी लॉरेंट लावोइशियर एक अग्रणी थे जिन्होंने प्रयोग और अवलोकन के आधार पर एक नये रसायन-शास्त्र की खोज की और अपने निष्कर्षों का एक व्यवस्थित विश्लेषण किया। रसायन-शास्त्र उस समय भी रस-विद्या की विरासत से लथपथ था, जैसा कि हमने बॉयल के उदाहरण से देखा है। यहाँ तक कि अठारहवीं सदी की शुरुआत में हवा में किसी पदार्थ के प्रज्वलन या दहन की सरल प्रक्रिया भी स्पष्ट नहीं थी। अठारहवीं सदी के शुरुआती दिनों में जर्मन वैज्ञानिक जॉर्ज एन्सर्ट स्टाहल का मानना था कि जो कुछ जलता है उसमें अग्नि का एक सार्वभौमिक तत्व होता है। उन्होंने इस तत्व का नाम एक ग्रीक भाषा से निकले शब्द पर फ्लोजिस्टोन नाम दिया जो ज्वलनशील पदार्थ के लिए होता है। चूँकि स्टाहल के प्रयोग में पाया गया कि जलाए जाने से लकड़ी का कोयला वजन में कम हो जाता है, स्टाहल को विश्वास था जलने पर किसी भी पदार्थ का वजन कम होता है और यह इस बात का प्रमाण था कि अपने फ्लोजिस्टोन घटक के हवा में खो जाने से कोई पदार्थ अपना वजन खो देता है। किसी अन्य विश्वसनीय स्पष्टीकरण के अभाव में लोगों ने इसे स्वीकार कर लिया। लावोइसियर ने फॉस्फोरस और सल्फर के साथ प्रयोग किए जो दोनों जलने में आसान हैं और उन्होंने पाया कि उनके हवा में जलने से उनका वजन बढ़ा। यह जलने या प्रज्वलन पर स्टाहल की परिकल्पना के विपरीत था। अपने प्रयोगों के लिए लेड केल्क्स का उपयोग करके (रयासन-शास्त्र की आधुनिक भाषा में किसी धातु के गर्म होने पर अयस्क या खनिज से बनने वाला पदार्थ) वह यह दिखाने में सक्षम रहे कि इसने जलने पर वजन बढ़ाया, शायद इसलिए कि यह हवा के साथ संयुक्त हुआ और जब केलक्स या लेड ऑक्साइड को गरम किया गया तब वही हवा मुक्त हो गई। इससे लाबोइसियर को फ्लोजिस्टोन के अस्तित्व पर संदेह हुआ। हालांकि अब लावोइसियर ने महसूस किया कि प्रज्वलन प्रक्रिया में वायु सम्मिलित थी, भले ही वायु की सटीक संरचना के बारे में वह अभी भी अनभिज्ञ थे। अगस्त 1774 में प्रख्यात अंग्रेज प्राकृतिक दार्शनिक जोसेफ प्रिस्टले ने पेरिस में लावोइसियर के साथ मुलाकात की। उन्होंने मरकरी केल्क्स को गर्म करने के अपने अनुभव को साझा किया जिसमें एक गैस प्राप्त हुई जिसमें मोमबती अधिक आसानी से जली। प्रिस्टले का मानना था

कि उनकी 'नई गैस' ने जलाने में मदद की और मोमबतियों को लम्बे समय तक जला दिया क्योंकि यह फ्लोजिस्टोन से मुक्त थी। इस कारण से उन्होंने मरकरी केल्कस से प्राप्त गैस को 'डीफ्लोजिस्टिकेटेड' गैस का नाम दिया।

पेरिस में जिज्ञासु लावोइसियर ने पारे तथा अन्य धातु के ऑक्साइडों के साथ प्रिस्टले के प्रयोग को दोहराया। उनका निष्कर्ष था कि वायु कई तत्वों या गैसों का एक यौगिक पदार्थ थी। उन्होंने तर्क दिया कि इसके कम से कम दो घटक थे – एक जो धातु के साथ प्रतिक्रिया करता था और जलने की प्रक्रिया में मदद करता था और दूसरा जो ज्वलन प्रक्रिया में बाधा पहुंचाता था । 1777 तक, लावोइसियर ने प्रज्वलन या दहन के एक नये सिद्धांत का प्रस्ताव दिया जिसने स्टाहल की फ्लोजिस्टोन की अवधारणा को खारिज कर दिया। प्रज्वलन या दहन को वायु के उस भाग के साथ एक धातु या एक कार्बनिक पदार्थ की रासायनिक प्रतिक्रिया के रूप में स्पष्ट किया गया जो जलने की प्रक्रिया में मदद करता था। 1779 में, उन्होंने पेरिस में रॉयल एकेडमी ऑफ सांइसेज में घोषणा की कि उन्होंने अपने प्रयोगों में पाया था कि अधिकांश अम्लों में यह हवा होती है। लावोइसियर ने इसे ऑक्सीजन नाम दिया। इसलिए स्टाहल की फ्लोजिस्टोन काल्पनिक धारणा थी। प्रज्वलन के उनके सिद्धांत में अब ऑक्सीजन ने केन्द्रीय भूमिका निभाई।

1766 में अंग्रेज हेनरी केवेंडिश के एक गैस प्राप्त की जो आसानी से जल गई। प्रिस्टले ने कहा कि उन्होंने अपने द्वारा प्राप्त गैस को और सामान्य वायु को एक बंद बर्तन में चिंगारी के साथ जलाया तब कॉंच के बर्तन की दीवारों पर एक ओस जैसा पदार्थ पाया गया था। जब कैवेंडिश ने प्रयोग को दोहराया तो पाया कि यह ओस जैसा पदार्थ वास्तव में पानी था। कैवेंडिश ने प्रयोगों की व्याख्या अभी भी फ्लोजिस्टॉन के संदर्भ में की और सोचा कि जलने की प्रक्रिया से पहले प्रत्येक दोनों गैसों में पानी मौजूद था। लावोइसियर ने स्पष्ट किया कि जलने की प्रक्रिया या दहन में ऑक्सीजन के साथ रासायनिक प्रक्रिया शामिल थी लेकिन जब तक वह कैवेंडिश द्वारा प्राप्त नयी गैस के दहन की व्याख्या नहीं करता तब तक कुछ लोग नये रसायन शास्त्र पर संदेह व्यक्त करते। जून, 1783 में लावोइसियर ने ऑक्सीजन को कैवेंडिश की नयी गैस के साथ संयोजित करके पानी प्राप्त किया। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि पानी एक तत्व नहीं था बल्कि ऑक्सीजन और कैवेंडिश की 'नयी गैस' का एक यौगिक पदार्थ था जिसको अब हम हाइड्रोजन के नाम से जानते हैं। अपने दावे के समर्थन में, लावोइसियर ने पानी को ऑक्सीजन और हाइड्रोजन में विघटित कर दिया। अब पानी की रासायनिक संरचना ज्ञात हो चुकी थी और फ्लोजिस्टोन की अवधारणा को लेकर अंतिम संदेह भी दूर हो गया था। लावोइसियर ने एक सदी से ज्यादा पहले रॉबर्ट वॉयल द्वारा प्रस्तावित तत्व के बारे में उपेक्षित विचार को अपनाया। उन्होंने कई सरल पदार्थों या तत्वों के नामों को बनाए रखा। लेकिन अब जब एक तत्व दूसरे तत्व के साथ संयुक्त होता है तो यौगिक का नाम इसकी रासायनिक संरचना के बारे में कुछ दर्शाता है। लावोइसियर के नये रसायन विज्ञान में, उनकी *ऐलीमेन्टस ऑफ कैमेस्ट्री* (1789) में कई नये पहलुओं को उजागर करके शामिल किया गया जैसे वास्तविक रासायनिक प्रतिक्रियाओं पर उष्णता का प्रभाव, गैसों की सटीक प्रकृति, लवण बनाने में अम्ल और क्षारों की विभिन्न प्रतिक्रियाएँ और रासायनिक प्रयोगों में प्रयुक्त उपकरणों का वर्णन। पहली बार, द्रव्यमान के संरक्षण के नियम को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया: ''प्रत्येक रासायनिक क्रिया के पहले और बाद में पदार्थ की मात्रा या द्रव्यमान समान रहता है।'' उन्होंने तत्कालीन ज्ञात तत्वों को भी सूचीबद्ध किया।

बोध प्रश्न 1

1) सत्रहवीं शताब्दी में प्राकृतिक दार्शनिकों के खगोल-शास्त्र और भौतिकी के विकास में योगदान का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में गैर-परिमाणात्मक क्षेत्रों में विज्ञान के विकास की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

7.4 सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के वैज्ञानिक विकास की व्याख्या

सत्रहवीं और अठारहवीं सदी के वैज्ञानिक विकास की व्याख्या विद्वानों द्वारा कई तरह से की गई है। 1943 में फ्रांसीसी इतिहासकार अलेक्जेंड्रे कोयरे ने सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों की वैज्ञानिक प्रगति को मानव सोच के अतीत के प्रारूप में मात्रात्मक उछाल या गुणात्मक बदलाव के रूप में वर्णित किया। उनके लिए यह मानव सोच में सबसे महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि देने वाला विकास था और यूनानी पुरातन समय के बाद मानव दिमाग की सबसे महत्वपूर्ण क्रांति। इसने मानव संस्कृति और जीवन शैली में मूलभूत परिवर्तन किये और मानव मन पर एक स्थायी छाप छोडी। बाद में, अंग्रेजी इतिहासकार हर्बर्ट बटरफील्ड ने भी इसे एक महान क्रांति करार दिया जो ईसाई धर्म के उदय के बाद एक असाधारण चीज थी। उनके अनुसार, इस महान युग परिवर्तन की तुलना में पुनर्जागरण और धर्म सुधार मात्र सरल प्रकरण थे। उन्होंने जोर देकर कहा कि यह वैज्ञानिक क्रांति आधुनिक विश्व की वास्तविक उत्पत्ति थी। इस प्रकार प्रारंम्भिक इतिहासकारों ने इसे एक सुसंगत, अभूतपूर्व घटना के रूप में चित्रित किया है जिसने गहनता से, स्थायी तौर पर उन तरीके और साधनों को बदल दिया जिनके द्वारा मानव ब्रह्मांड की अनुभूति करते हैं और प्रकृति और वातावरण के साथ पारस्परिक सम्बंध बनाते हैं। यह वह क्षण था जिसने विश्व को अचानक आधुनिक बना दिया था। यह एक अच्छी बात थी जिसने अंधविश्वास और तर्कहीन सोच को दूर कर दिया।

हमने पहले उल्लेख किया है कि हालांकि कई सत्रहवीं शताब्दी के लोग जो वैज्ञानिक पेशे में थे, उन्होंने एक मौलिक बौद्धिक परिवर्तन लाने का अपना इरादा जताया था लेकिन वे जो कुछ कर रहे थे उसके लिए उन्होंने विज्ञान या क्रांति जैसे शब्दों का

उपयोग नही किया था। वे स्वयं को प्राकृतिक दार्शनिक कहते थे और उनमें से कई धर्मशास्त्र के मुद्दों में रुचि रखते थे। कुछ रस-विद्या की प्रथाओं में डूबे हुए थे। इसलिए बहुत से इतिहासकारों को वैज्ञानिक क्रांति का विचार असहज लगता है। कई इतिहासकार अब इस पर सवाल उठाते हैं और आलोचना करते हैं कि पश्चिमी यूरोप में कोई ऐसा विलक्षण और असतत परिवर्तन हुआ जिसे वैज्ञानिक क्रांति के रूप में देखा जाए और जो सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी की समय अवधि में निश्चित थी। ऐसे इतिहासकार अब इस पर संदेह करते हैं कि कोई एक सुसंगत सांस्कृतिक व्यवहार था, जो सत्रहवीं सदी में विज्ञान के अनूठे तरीके से प्रकट हुआ। अब विद्वानों का तर्क है कि विज्ञान सांस्कृतिक व्यवहारों में शामिल था जिसकी एक विविधता वाली श्रृंखला थीं और कई तरीके और विधियाँ हो सकती थी, जिनके माध्यम से मनुष्य प्रकृति और वातावरण को समझने, समझाने ओर नियंत्रित करने का लक्ष्य रख सकता था।

प्रत्येक विधि एक विशेष सांस्कृतिक वातावरण में उभर सकती है और इसकी अपनी विशेषताएँ हो सकती हैं और मानव सोच और अनुभूति में एक अलग तरह के परिवर्तन का सूत्रपात कर सकती है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक अनोखी और एकल विधि नहीं हो सकती है जो हर समय और स्थान पर सार्वभौमिक और शाश्वत हो। तथाकथित वैज्ञानिक विधि, जिसके माध्यम से एक सुसंगत, सार्वभौमिक और कुशल तरीके से ज्ञान के निर्माण को सत्रहवीं शताब्दी से पता लगाया जा सकता है, वह एक सांस्कृतिक विशिष्ट उत्पाद है, यह उनका तर्क है। सत्रहवीं शताब्दी की ज्ञान प्रणाली केवल मध्यकालीन ज्ञान प्रणालियों का एक सिलसिला था। यह निर्वात में नहीं उभरा। हम निश्चिता के साथ यह दावा नहीं कर सकते कि इस विशिष्ट बिंदु या इस विशेष समय अवधि से मध्ययुगीन दुनिया का अस्तित्व खत्म हो गया था और आधुनिक सोच का तरीका मानवीय चेतना और अनुभूति का प्रतीक बन गया था। सत्रहवीं शताब्दी के वैज्ञानिक व्यवसायों ने कुछ सांस्कृतिक व्यवहारों में विश्वास किया और कुछ व्यवहार में लाया जिन्हें हम 'मध्यकालीन' या 'आधुनिक' के रूप में देख सकते हैं।

कुछ इतिहासकारों का तर्क है कि वैज्ञानिक विकास के विचार को सत्रहवीं और अठारहवीं सदी के व्यापक सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भ में रख कर देखा जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, उन्हें लगता है कि सत्रहवीं शताब्दी के वैज्ञानिक परिवर्तनों की व्याख्या सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों या सोच के प्रारूपों में परिवर्तन के संदर्भ की जानी चाहिए। अधिक महत्वपूर्ण यह है कि अब कुछ इतिहासकार उस समय की ठोस ऐतिहासिक परिस्थितियों में वैज्ञानिक प्रयासों को समझना चाहते हैं। जिस समय विज्ञान की एक विधा जन्म ले रही थी, उस समय क्या हुआ था और उस समय का सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश क्या था? संस्थाओं ने वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने में मदद की और समय के साथ इस आधार का विस्तार कैसे हुआ? ये विज्ञान के इतिहासकारों के महत्वपूर्ण सरोकार थे। कुछ इतिहासकार उन लोगों की वास्तविक कहानियों का विश्लेषण करते हैं जो इन बदलावों को लेकर आए। हमने देखा है कि सत्रहवीं शताब्दी में कैसे अमीर और शक्तिशाली लोगों ने कुछ प्रमुख वैज्ञानिक परिमण्डलों को संरक्षण प्रदान किया था और बाद में विभिन्न अकादमियों आदि के रूप में वैज्ञानिक प्रयासों का संस्थागतकरण किया गया था। यह देखना महत्वपूर्ण है कि विज्ञान एक ऐसे समय में उभरता है जब मध्ययुगीन संस्थाओं जैसे चर्च और विश्वविद्यालयों का और स्थापित व्यवसायों जैसे न्यायशास्त्र, धर्मशास्त्र और चिकित्सा का पतन हो रहा था लेकिन जब आधुनिक समाज की सामाजिक और

राजनैतिक व्यवस्था पूरी तरह सुदृढ़ नहीं बन पायी थी। इस उथल-पुथल और संक्रमण के दौर में ही आधुनिक विज्ञान उभरता है। हालांकि, सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप के कुछ देशों में शक्तिशाली सम्राटों के उभरने के साथ उन्होंने इसे अपने उद्देश्य के लिए इस्तेमाल करने का प्रयास किया। 1660 के दशक में इंग्लैड में पुनर्स्थापित सरकार में सुधारे हुए विश्वविद्यालय को नये प्रयोगात्मक प्राकृतिक दर्शन के अनुयायिओं के प्रभाव से मुक्त किया गया और चर्च और राज्य की सत्ता को पुनर्स्थापित किया गया। यह अवधि निरकुंश राज्य के संरक्षण के तहत विज्ञान के संस्थागतकरण की भी अवधि थी। यह काल 1662 में लंदन मे रॉयल सोसायटी की चार्ल्स द्वितीय द्वारा नींव रखने और 1666 में लुई XIV द्वारा पेरिस में एकेडिमिक डेस सांइसेज और बर्लिन में 1700 में अकादमी डेस विशेनसाप्स्टेन की नींव रखने के कारण उल्लेखनीय था। शाही आज्ञा-पत्रों द्वारा विज्ञान का राज्य के साथ समाकलन होने से विज्ञान को उग्र सुधारवादी कार्य से समझौता करना पड़ा।

अमेरिकी समाजशास्त्री राबर्ट मर्टन विज्ञान के समाजशास्त्र के मुख्य अग्रदूत हैं। उनका अध्ययन वैज्ञानिक उद्यम के समाजशास्त्रीय पहलुओं पर केन्द्रित था। उनकी थीसिस, *साइंस, टेक्नोलॉजी एंड सोसायटी इन सैवेन्टीन्थ सेन्चुरी इंग्लैण्ड* में यह दर्शाया गया कि किस तरह से परिशुद्धतावाद (प्यूकीटनीज्म) ने अनायास ही सत्रहवीं सदी इंग्लैण्ड में उभर रहे विज्ञान के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक समर्थन प्रदान किया। उन्होंने अपने सावधानीपूर्वक तैयार किए निष्कर्षों का समर्थन करने के लिए बड़े पैमाने पर सांख्यकीय और ऐतिहासिक आँकड़ों का उपयोग करके दिखाया कि कैसे परिशुद्धतावाद ने मूल्यों और विश्वासों की एक ऐसी प्रणाली प्रदान की जिसने सत्रहवीं शताब्दी के अंग्रेजी विज्ञान के विकास को बढावा दिया। एक ऑस्ट्रियाई दार्शनिक वैज्ञानिक एडगर जिलसेल ने अपने शोधों में अधिक उदार आर्थिक-निर्धारक दृष्टिकोण अपनाया। वह इस विचार का प्रचार करता है कि प्रारंभिक पूँजीवादी समाज ने शिल्पकार से विद्धान को अलग करने वाले प्राचीन अवरोधों को तोड़ दिया था। जॉर्ज बसला (1986) के शब्दों में, इसने औपचारिक ज्ञान वाले व्यक्ति और व्यवहारिक ज्ञान वाले व्यक्ति का वह भेद मिटा दिया। प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक दार्शनिक और पुजारी वर्ग धातुकर्मी, कुम्हार, जहाज बनाने वाले या अन्य शिल्पकारों से सामाजिक रूप से श्रेष्ठ थे। अलग-अलग छोरों पर जहाँ विद्धान तर्क, गणित और चिंतनशीलता में और शिल्पकार भौतिक वस्तुओं के विशेष ज्ञान में उत्कृष्ठ थे। इसलिए, सदियों तक सिद्धांत और व्यवहार को एक दूसरे से अलग कर दिया गया था जब तक की एक उभरते हुए पूंजीवादी समाज की आवश्यकताओं ने आधुनिक विज्ञान को विकसित करने के लिए उन्हें दुबारा जोड़ नहीं दिया।

कभी-कभी सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में विज्ञान के विकास का पारम्परिक लेखा-जोखा महान पुरुषों की (नारी नही!) वीरता-पूर्ण उपलब्धियाँ रहीं। यह आधुनिकता का निर्माण करने वाले उत्सव की तरह प्रतीत होता है। तो छोटे प्रतिभागियों और कभी-कभी जन साधारण की आवाजें इसमें कहाँ हैं? उनकी प्रतिक्रियाएँ क्या थीं? क्या वे केवल निष्क्रिय दर्शक थे? यहाँ यह भी विचारणीय है कि कैसे संस्कृति के वे प्रारूप जिन्हें पारम्परिक रूप से उचित विज्ञान के बाहर या गौण समझा जाता था, वह वैज्ञानिक परिमंडलों में प्रचलित सोच की नई विधा पर प्रतिक्रिया देते हैं या उसको अपनाते हैं। इन प्रश्नों से और इनके परिणामस्वरूप, उन लोगों और विषयों को भी मुख्यकथा में शामिल किया गया है जिनको पहले पूरी तरह या आंशिक रूप से हासिए पर छोड़ दिया गया था। उदाहरण के तौर पर इसके उदाहरण चुम्बकत्व और बीमारी

जैसे गैर-गणितीय वर्णनात्मक विषय, या ऐसे विषय जो शायद व्यवहार में ही नहीं हैं जैसे संगीत विज्ञान या रस विद्या जैसे विषय जिनको काफी संदेह से देखा जाता रहा और पहले से उपेक्षित योगदान देने वाले जो पहले या दूसरे दर्जे में भी नहीं आते थे जैसे प्रयोगकर्ता जेसुइट मिशनरी। कुछ लोगों का तर्क है कि परिमाणात्मक तरीकों और गणित का उपयोग सत्रहवीं शताब्दी में वास्तव में नया और महत्वपूर्ण था। इसने ब्रह्मांड और प्रकृति के बारे में सदियों पुरानी अरस्तुवादी धारणाओं को नष्ट कर दिया। अगर हम इस दृष्टिकोण से सहमत हैं तो स्वाभाविक रूप से गैलीलियो, देकार्त, हयूजेंस और न्यूटन जैसे व्यक्ति बेहद महत्वपूर्ण हैं। वैज्ञानिक विकास के प्रति पारम्परिक दृष्टिकोण गणितीय भौतिकी और खगोल विज्ञान पर जोर देता है। यह सच है कि कुछ महत्वपूर्ण विकास खगोल विज्ञान और भौतिकी के क्षेत्रों में हुए, लेकिन यह पूरी तरह से वैज्ञानिक क्रांति का गठन नहीं था। हालांकि सभी विज्ञान को केवल उसके ऐतिहासिक संदर्भ में समझा जा सकता है और सत्रहवीं शताब्दी के प्राकृतिक दर्शन यांत्रिक या प्रायोगिक नहीं थे। फिर भी, प्रकृति के बारे में जानने में यांत्रिकी की भूमिका निश्चित रूप से बढ़ गई और ज्ञान प्राप्त करने में यांत्रिक और प्रायोगिक तरीकों के उपकरणों की सटीकता के बारे में वैज्ञानिक विवाद थे। ये कुछ हद तक इस अवधि में सांस्कृतिक परिवर्तन के बारे में समझने में मूल्यवान हैं।

हम वैज्ञानिक कार्यों को केवल उस सांस्कृतिक संदर्भ में समझ सकते हैं जिनमें उनका निर्माण होता है। इतिहासकारों ने एक लम्बे समय से विज्ञान की एक विशेष शाखा के विकास की प्रक्रिया के जानने में ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भों की भूमिका के बारे में तर्क दिया है। निसंदेह, इसके विकास को ऐसे संदर्भ से अलग करने की कल्पना नहीं की जा सकती है।

सत्रहवीं और अठाहरवीं शताब्दी में विज्ञान सामूहिक रूप से प्रचलित, ऐतिहासिक रूप से प्रचलित घटना थी। इसलिए अब समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक संदर्भ को विद्वानों ने स्वीकार किया है। वे अब विचारों, अवधारणाओं, विधियों, साक्ष्य आदि के बौद्धिक इतिहास पर कम ध्यान देकर ऐसे सामाजिक कारकों पर अधिक जोर देते हैं जैसे संगठन के स्वरूप, विज्ञान के राजनैतिक और आर्थिक प्रभाव, सामाजिक उपयोग और विज्ञान के सामाजिक परिणाम। कहानी में आकस्मिकता के लिए भी जगह है जो कुछ हुआ वह सब होने के लिए बाध्यता नहीं थी या इसी तरह होने के लिए बाध्य नहीं था। विज्ञान के इतिहासकार इस बात से अवगत हो गये हैं कि आधुनिक विज्ञान के विकास के और समकालीन विज्ञान बनने की प्रक्रिया के रूप में जन्मजात पिछड़ापन और अंधविश्वास से भी ज्यादा महत्वपूर्ण कारण इसके विकास के थे। इसलिए हमें लगता है कि कई कहानियाँ सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के वैज्ञानिक विकास के बारे में बताई जा सकती हैं।

7.5 महिलाएँ और आधुनिक विज्ञान

यह हम विज्ञान की राज्य द्वारा प्रायोजित अकादमियों में महिलाओं की तलाश करते हैं तो सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में उनमें एक भी महिला सदस्य नहीं थी। लेकिन वे वैज्ञानिक क्षेत्रों में पूरी तरह अनुपस्थित नहीं थी। हमारा ध्यान एक जर्मन खगोलशास्त्री मारिया विंकेलमान पर जाता है और विंकेलमान अकेली भी नहीं थी। यह अनुमान लगाया गया है कि अठारहवीं शताब्दी के शुरुआती दिनों में सभी जर्मन खगोलविदों में से 14 प्रतिशत महिलाएँ थी। 1710 में, मारिया विंकेलमान ने बर्लिन

अकादमी में सहायक खगोलविद और कैलेंडर निर्माता के रूप में नियुक्ति के लिए याचिका दायर की जब उनके पति और अकादमी के एक खगोलशास्त्री गॉटफ्राइड़ किर्च की मृत्यु हो गयी। वह स्वयं एक अनुभवी खगोलविद थी जिन्होंने बीमार और मृत्यु शैया पर अपने पति के नाम के तहत खगोलीय अवलोकन भी प्रकाशित किये थे। हालांकि महान लीबनिज, अकादमी के अध्यक्ष ने उनके दावे का समर्थन किया, लेकिन फिर भी उनके अनुरोध को अस्वीकार कर दिया गया। फिर एक दिलचस्प उदाहरण लॉरा बस्सी (1711-1778) का है जो अठारहवीं शताब्दी में बोलोग्ना विश्वविद्यालय में भौतिकी की प्रोफेसर बनने वाली पहली महिला थी। यह नोट करना आश्चर्यजनक है कि उनके बारह बच्चे थे। क्या उन्होंने उनकी वैज्ञानिक उत्पादकता में हस्तक्षेप नहीं किया? उन्होंने अपने अध्ययनों को विद्युत और वायु के दवाब विषयों पर नियमित रूप से प्रकाशित किया था। यह कैसे सम्भव हो पाया? हम जानते हैं कि यूरोप में, उच्च वर्गों के बच्चों के लालन पालन की प्रथाओं से यह सम्भव हो पाया। बच्चे के जन्म के तुरंत बाद उसे एक धाय को सौंप दिया जाता था और ग्रामीण अंचलों में उसे उसके द्वारा पाला जाता था। एक उच्च वर्ग बच्चे की माँ सात साल की उम्र होने तक दोबारा उसे नहीं देख पाती थी। इस आयु में लड़कों को बोर्डिंग स्कूलों में भेज दिया जाता था। तो शायद एक उच्च वर्ग की महिला के इस विशेषाधिकार ने प्रजजन और उसके पेशेवर जीवन के बीच एक असहज मेल की अनुमति दी। फिर भी मूल तथ्य यह है कि आधुनिक विज्ञान और पेशेवर जीवन प्रचलित पुरुष-प्रधान समाज महिलाओं के लिए नहीं बना था।

बोध प्रश्न 2

1) सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में वैज्ञानिक विकास के बारे में विभिन्न व्याख्याओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में विज्ञान में महिलाओं की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

7.6 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि कैसे आधुनिक विज्ञान, जैसा हम इसे जानते हैं, अंकुरित होता है, विभिन्न क्षेत्रों में फैलता है और कैसे एक क्षेत्र का प्रकृति का ज्ञान दूसरे क्षेत्रों

से पूरी तरह स्वतंत्र नहीं था। इस तरह का प्रकृति का ज्ञान दूसरे क्षेत्रों के ज्ञान पर निर्भर था इनकी अंतर्क्रियाओं के सचंयी प्रभाव ने इसे लम्बे समय तक टिकाऊ बना दिया। हालांकि समाज और उसकी संस्कृति बदल रही थी लेकिन दृष्टिकोण और स्वभाव के अनुसार सत्रहवीं और अठारहवीं सदी अभी भी मध्यकालीन विचारधारा और धार्मिकता में डूबी हुई थी। यह अतीत के साथ पूर्ण विच्छेद नहीं था। जैसा कि अपेक्षित था, प्रकृति ज्ञान की इस खोज में महिलाएँ हासिए पर ही रही। इन घटनाओं की विभिन्न व्याख्यायें पेश की गई हैं लेकिन ऐसा लगता है कि कई कहानियाँ सम्भव हैं।

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उपभाग 7.3.1 देखें।

2) उपभाग 7.3.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 7.4 देखें।

2) भाग 7.5 देखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 अठाहरवीं शताब्दी में यूरोपीय राजनीति*

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 प्रवृत्तियों का अवलोकन

8.3 राजनीति और राज्य : राजतंत्र और विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग

8.4 अन्तर्राष्ट्रीय संबंध : महाद्वीप और साम्राज्य

8.5 राज्य और चर्च

8.6 स्थापित सत्ता को चुनौती : 1760 और 1770 के दशक

8.7 लोकप्रिय चुनौती : स्वरूप, प्रकृति और विषयवस्तु

8.8 सारांश

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित के विषय में समझ पायेंगे :

- सत्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक यूरोप के राजनैतिक घटनाक्रम की एक व्यापक समझ;
- पश्चिमी मध्य और पूर्वी यूरोप और इंग्लैंड जैसे देशों को निर्मित करने वाली राजनीति में समानता और अंतर;
- यह कि राजनीति विभिन्न स्तरों पर आयोजित की गई थी: अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, राष्ट्रों या राज्यों के भीतर राजनीति और राज्यों के भीतर व्यापक राजनीति से जुड़ी परन्तु विशिष्ट राष्ट्रों के भीतर लोकप्रिय राजनीति;
- विभिन्न क्षेत्रों और समाज की विभिन्न स्तरों में राजनैतिक गतिविधियों के स्वरूप की विभिन्नताएँ; और
- इस अवधि में राजनैतिक घटनाक्रम कैसे सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों से जुड़ा था; और कैसे इन्होंने फ्रांसीसी क्रान्ति और औद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत का मार्ग प्रशस्त किया जिसकी प्रतिध्वनियाँ विश्व में गुंजित हुई।

8.1 प्रस्तावना

पहले एक इकाई में हमने सत्रहवीं शताब्दी के मध्य की इंग्लैंड की क्रांति की चर्चा की थी। इस प्रक्रिया में हमनें इंग्लैंड और महाद्वीप में राजनैतिक घटनाक्रम के बीच कुछ अन्तरों पर भी ध्यान दिया था। इस इकाई में हम कहानी को फ्रांस की क्रान्ति की पूर्व सन्ध्या और इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति की शुरुआत तक आगे बढ़ायेंगे, जिन दोनों के

* इकाई लेखकः डॉ. नलिनी तनेजा

यूरोप के अन्य भागों के लिए भी बहुत बड़े प्रभाव थे और जिनकी प्रतिध्वनियाँ पूरे विश्व में महसूस की गई।

इस अवधि के दौरान राजनीति से हमारा तात्पर्य उन सभी प्रकार की गतिविधियों से है जिन्होंने राजनैतिक व्यवहार में परिवर्तनों और यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में कुछ विशेष प्रकार की राजनैतिक संरचनाओं के सुदृढ़ीकरण में योगदान दिया। इस युग की राजनीति में अन्तर्राष्ट्रीय टकराव और युद्ध और कूटनीति के माध्यम से उन्हें हल करने के प्रयास भी शामिल हैं। इसके अलावा यह वह अवधि भी है जब लोकप्रिय राजनीति ने व्यापक स्तर पर राजनीति को प्रभावित करना शुरू कर दिया, जिसके स्वर या प्रतिक्रियाएँ संसदों और राज्य की नीतियों में मुखरित हुए।

हालांकि इंग्लैंड की क्रांति और फ्रांसीसी क्रांति की शुरुआत के बीच की अवधि को आमतौर पर एक संक्रमण की अवधि के रूप में देखा जाता है, लेकिन इस इकाई में हम देखेंगे कि इसका एक स्वतंत्र महत्व है और इसमें ऐसे महत्वपूर्ण राजनैतिक घटनाक्रम देखे गये जिनके बिना यह स्पष्ट करना संभव नहीं होगा कि फ्रांस में फ्रांसीसी क्रांति क्यों हुई और अठारहवीं शताब्दी के अन्त में किसी अन्य देश में नहीं। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ घटनाक्रमों के द्वारा हम मध्य और पूर्वी यूरोप के बाद के राजनैतिक प्रक्षेपपथ, बहुभाषीय ऑस्ट्रियाई साम्राज्य, जर्मन राज्यों के विकास, विशेषकर प्रशा, और जारशाही साम्राज्य, बहुभाषीय और लगभग औपनिवेशिक, और इसकी निरकुंशता की अन्य निरकुंश राज्य जैसे फ्रांस से अन्तर की व्याख्या कर सकते हैं। सत्रहवीं शताब्दी और अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध इन राज्यों संरचनाओं के राजनैतिक विकास और यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में राजनीति के लिए एक महत्वपूर्ण अवधि थी।

8.2 प्रवृत्तियों का अवलोकन

पुनर्जागरण और वैज्ञानिक क्रांति और उनके साथ इंग्लैंड की क्रांति और अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य के विकास और नये सामाजिक वर्गों के उदय के बावजूद सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और अठारहवीं शताब्दी के एक बड़े हिस्से में यूरोप अभी भी अधिकतर विशेषाधिकार की दुनिया थी। हालांकि मध्यकाल और प्रारंभिक आधुनिक प्रतिरोधों की तुलना में यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में ऐसे प्रतिरोध उभर रहे थे जिनके कहीं ज्यादा व्यापक प्रभाव थे। इस अवधि ने विशेषाधिकारों में रूपान्तरण को देखा और इन विशेषाधिकारों को चुनौती का भी सामना करना पड़ा।

राजनीति के क्षेत्र में इसकी अभिव्यक्ति ऐसे राजतंत्रों के सुदृढ़ीकरण के रूप में हुई, जिन्होंने दावा किया कि उनकी स्थिति राजनीति से ऊपर थी, लेकिन उन्हें कानून द्वारा शासन की तर्कसंगतता और अपनी प्रजा के प्रति उत्तरदायित्व के सामने सिर झुकाना पड़ा। कुलीनवर्ग और धार्मिक पादरी वर्ग सहित लोग नागरिकों की बजाए उनके प्रजा-जन ही थे और लोकप्रिय संप्रभुता के विचार और राष्ट्र के गठन के सिद्धान्तों ने अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक लोकप्रिय राजनीति की दुनिया में प्रवेश नहीं किया था।

फिर से, राष्ट्रीय राजतन्त्रों के सुदृढ़ीकरण के बावजूद, सम्राट अभी भी सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के राज्यों की प्राथमिक पहचान बने हुए थे, यहाँ तक कि उत्तराधिकार के युद्ध और वैवाहिक गठबंधन और शाही घरानों के बीच समझौते राष्ट्र

राज्य की भौगोलिक सीमाओं को बदल सकते थे और उन्होंने उन्हें बदला भी (अधिक वास्तविक रूप से विशेष राजंवशों द्वारा शासित राज्यों में)।

पूरे यूरोप में प्रतिनिधि संस्थाओं पर अभी भी मुख्य रूप से विशेषाधिकार प्राप्त लोग हावी थे, हालांकि ये अनिवार्य रूप से कुलीन वर्ग के प्रभुत्व में थे, ऐसा कुलीन वर्ग जो जनमत पर आधारित था, लेकिन जो अब अधिकाधिक ऐसा कुलीन वर्ग बन रहा था जो राजा की सेवा के माध्यम से या भू-सम्पत्ति की खरीद के माध्यम से कुलीन वर्ग का दर्जा प्राप्त कर रहा था। इंग्लैंड की क्रांति के सन्दर्भ में हमने जिस नये भू-सम्पत्तिवान कुलीनवर्ग के उद्‌भव की बात की थी, यूरोप के बाकी हिस्सों में भी इस नये कुलीन वर्ग ने राजतन्त्र के खिलाफ और मध्यम वर्गों के खिलाफ अपने विशेषाधिकार का दावा पेश किया। इस प्रकार राजनीति का कार्य-क्षेत्र देश या राष्ट्र राज्य के स्तर पर मुख्य रूप से राजतंत्र और अभिजात्य वर्ग के बीच टकराव में निहित था और यह अभिजात्य वर्ग अब अपनी संरचना में अधिक व्यापक था और राजतंत्र के खिलाफ एकजुट भी। व्यापार और वाणिज्य के विकास के साथ राजतंत्रों को केन्द्रीयकृत सेनाओं और नौकरशाही की आवश्यकताओं के लिए धन की आवश्यकता हो रही थी, जबकि अभिजात्य वर्ग के लोग अपने विशेषाधिकार और ग्रामीण अर्थव्यवस्था और किसान वर्ग पर प्रभुत्व के माध्यम से वह जो प्राप्त करते थे उसके संरक्षण के लिए जोर दे रहे थे।

एक मध्यवर्ती स्तर पर, अधिकांश यूरोपीय राज्यों में, विशेष रूप से पश्चिम यूरोप में, वाणिज्यिक वर्ग महत्व प्राप्त कर रहे थे। उनका हित इस बात में निहित था कि कराधान और विशेष रूप से उच्च सेवाओं में नियुक्तियों के मामलों में भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग के विशेषाधिकारों की समाप्ति हो और राष्ट्रीय नीतियों को व्यापार और वाणिज्य के पक्ष में दिशा दी जाए। टकराव और सामंजस्य जिसने राज्यों के प्रशासन और प्रतिनिधि संस्थाओं की संरचना में परिवर्तन की शुरुआत की, इस अवधि की राजनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू था। इस क्षेत्र में हुए परिवर्तन बहुसंख्यक लोगों के लिए निर्णायक थे जिन्होंने उन पर प्रभाव डाला लेकिन जो इस स्तर की राजनीति में भाग लेने में असमर्थ थे। सम्पत्ति की योग्यता के आधार पर मताधिकार बहुत संकुचित बना रहा और महिलाओं के पास, यहाँ तक कि अभिजात्य महिलाओं के पास भी, किसी भी स्तर पर कोई वोट नहीं था।

संसदों और प्रान्तीय सभाओं के प्रमुख कार्य-क्षेत्र के बाहर राजनैतिक गतिविधियों के माध्यम से लोगों के स्वर और सरोकारों को व्यक्त किया गया। इस अवधि के अन्त में इंग्लैंड में एक उभरते सर्वहारा वर्ग के लड्‌डाइट आद्य-वर्ग की राजनैतिक गतिविधि भी हुई। और लगभग हर जगह खाद्य दंगों या किसान प्रतिरोध या कृषि दासता के क्षेत्रों से किसानों का पलायन देखने को मिला। उन्होंने सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी की राजनीति को एक मूलगामी रंग दिया।

धर्म अभी भी लोगों के जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता था। इसके लोकप्रिय प्रतिरोधों और राजाओं के प्रति उनके दृष्टिकोण के बारे में कुछ निहितार्थ थे। राजतन्त्र और चर्च के बीच संघर्ष में राजतंत्र की जीत हुई थी लेकिन हर जगह चर्च, जो अभी भी विभिन्न प्रकार से सम्राट द्वारा समर्थित था, एक संस्था के रूप में अपने विशेषाधिकारों को बनाए रख पाया, और बदले में उसने किसी प्रमुख सामाजिक और राजनैतिक चुनौतियों के समय राजशाही का समर्थन किया।

इस लम्बी अवधि की राजनीति को मोटे तौर पर दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है – पहला मध्य सत्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक और दूसरा फ्रांसीसी क्रांति से पहले शेष अठारहवीं शताब्दी तक जब अनेक ऐसे विकास हुए जो फ्रांसीसी क्रांति के क्रांतिकारी प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। परिवर्तन की गति दूसरे चरण में कहीं अधिक है, मुख्य रूप से फ्रांसीसी क्रांति से पहले के दो दशकों 1750 और 1760 के दशकों में, पहले चरण में राजवंशीय और औपनिवेशिक युद्धों का वर्चस्व है जबकि दूसरे में पूरे यूरोप में राज्यों के भीतर हो रहे राजनैतिक और सामाजिक घटनाक्रम का। हालांकि इस अवधि के अन्त तक राजशाही सब जगह राज्य संरचना के रूप में बनी रही – इंग्लैंड में एक संवैधानिक राजतन्त्र, महाद्वीप में मजबूत राजतन्त्रों और रूसी साम्राज्यों में एक निरंकुशता के रूप में।

इस अवधि में विशेष रूप से दूसरे चरण के दौरान यूरोप और शेष विश्व के बीच आर्थिक और वैज्ञानिक विकास का अन्तर उभरा। पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद के विकास ने राज्य की संरचनाओं के साथ संस्थागत परिवर्तनों को जन्म दिया, और बौद्धिक बहस की प्रकृतियों ने इसको प्रभावित किया कि इन संस्थागत परिवर्तनों को विभिन्न राज्यों में कैसे सम्पन्न करना था।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को जिस रूप में हम जानते हैं इस रूप में उन्होंने एक आधुनिक आकार लेना शुरू किया। पहले चरण में प्रमुख शक्तियाँ इंग्लैंड, स्पेन, फ्रांस, हॉलैंड और पुर्तगाल थी। दूसरे चरण तक केवल इंग्लैंड और फ्रांस अपनी स्थिति को बनाए रख पाए और इसमें पेशा, रूस और ऑस्ट्रो-हंगेरियन साम्राज्य जुड़ गये। इस अवधि के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के तीन पहलू थेः शेष विश्व के ऊपर यूरोपीय देशों की शक्ति का सुदृढ़ होना; शेष विश्व के लिए अर्थात् उपनिवेशों के नियन्त्रण के लिए यूरोपीय शक्तियों की प्रतिस्पर्धा; और यूरोप में किसी प्रकार के शक्ति संतुलन का प्रयास करना।

8.3 राजनीति और राज्य : राजतंत्र और विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग

पूरे यूरोप में, इस अवधि में राजतंत्रों का और अधिक सुदृढ़ीकरण हुआ, उनकी केन्द्रीयकृत नौकरशाहियाँ शक्तिशाली बनी और सम्राटों को सेनाएँ मजबूत हुई। यह पूरे यूरोप में राजतंत्रों और अभिजात्य वर्ग के बीच टकरावों और सामंजस्य का भी मुख्य कारण बन गया क्योंकि इसका टकराव मुख्य रूप से संसाधनों पर नियन्त्रण और कराधान और विशेषाधिकार के क्षेत्र से था। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इस पूरी अवधि में, राजनैतिक शक्ति राजशाही और अभिजात्य वर्ग के परिरक्षण में थी और काफी हद तक इस पर उनके बीच होने वाले टकराव का प्रभाव था।

इंग्लैंड को छोड़कर, यह निरपेक्ष राजतन्त्रों का काल था। केवल कुछ इतालवी राज्य, नीदरलैंड और जर्मन राज्य शक्तिशाली राजशाही के दायरे से बाहर रहे, हालांकि वे भी अपनी छोटी भौगोलिक इकाइयों में इसी अंदाज में शासन कर रहे थे। पूरे यूरोप में शासन अपने प्रजा-जनों के कल्याण या सरोकार के बजाय शक्ति के द्वारा परिलक्षित हुआ। राजशाही की संस्था पर शायद ही कभी प्रश्न उठाया गया हो और वाद-विवाद मुख्यतः राजा और समाज के बीच शक्ति की प्रकृति और वितरण को लेकर हुआ और इसमें भी समाज का अर्थ विशेष अधिकार प्राप्त वर्ग से लिया गया। राजतन्त्रों को

केन्द्रीयकृत स्थाई सेनाओं के निर्माण में सफलता की आवश्यकता थी और उन्हें बनाए रखने के लिए वित्त, कराधान, प्रशासन और न्यायिक प्रणाली का पुनर्गठन आवश्यक था।

कुछ इतिहासकारों ने इस काल को फ्रांस की शताब्दी कहा है। फ्रांसीसी राजतंत्र सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के दौरान, न केवल यूरोप में राजशाही की संस्था के लिए एक प्रतिमान बन गया बल्कि फ्रांस में यह उस अवस्था में पहुँच गया जहाँ लुई (XIV) अधिकारपूर्वक यह दावा कर सकते थे कि ''मैं ही राज्य हूँ'' और इस दावे को कोई चुनौती भी नहीं थी। वह और उनके द्वारा नियुक्त किये गये मन्त्री ''सरकार के सभी महत्वपूर्ण मामलों में निर्णय लेते थे'' और महान कुलीनजन अब पूरी तरह से जन्म के आधार पर अपनी शक्ति का निर्माण नहीं कर सकते थे और वे पद प्राप्त करने के लिए राजा पर निर्भर थे। हालांकि, राजा ने अपनी स्थिति की ईश्वर प्रदत्त और तर्कसंगत दोनों होने का दावा किया और कहा कि वह अपने लोगों की भलाई के लिए शासन करने के लिए बाध्य थे। उन्होंने इस कल्याण को कैसे परिभाषित किया वह निस्संदेह उनका स्वयं का परम अधिकार था और ये सम्राट के कर्त्तव्य बन गये। यद्यपि प्रशासन पर नियन्त्रण, विशेष रूप से प्रान्तों में, अभी भी प्रांतीय अभिजात्य वर्ग की वर्चस्व वाली जागीरों द्वारा किया जा रहा था और मेयर और नगर परिषदों के पास व्यापक अधिकार थे, लेकिन प्रशासन के केन्द्रीयकरण, कठोर आर्थिक विनियमन, एक समरूपी कानूनी व्यवस्था की ओर प्रवृत्ति थी। मेयर की नियुक्ति का अन्तिम अधिकार और प्रान्तों में इन्टेन्डेंटस नाम के शाही अधिकारियों की नियुक्ति और सेना अध्यक्षों की नियुक्ति का अधिकार भी राजा को ही था। एक के बाद एक रिचेलियू, मैंजारिन और कोलबर्ट जैसे मन्त्रियों ने शाही सत्ता को बढ़ाने और इसे एक आदर्श बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वाणिज्यवादी नीतियों ने फ्रांसीसी राजतन्त्र के लिए एक वित्तीय आधार तय किया जो लगभग क्रांति की पूर्व-सन्ध्या तक जीवित रहा और लुई XVI के शासन काल के केवल अन्तिम दशक में दिवालियेपन तक पहुँचा। एकत्र किये गये करों में से पाँच में से चार हिस्से शाही खजाने तक पहुँचते थे और हालांकि कुलीन वर्ग और चर्च को करों से मुक्ति थी, कई कर सामान्य जनों यहाँ तक कि बुर्जुआ वर्ग पर भी लगाए गये। प्रशासनिक और न्यायिक संस्थाओं के प्रान्तीय से निचले स्तर तक, हालांकि अलग-अलग स्तर थे, इसके बावजूद कोई एक केन्द्रीय संसद नहीं थी जो शाही सत्ता पर अंकुश लगा पाती या उसे चुनौती दे पाती। इसके अलावा, ऊपर से नीचे तक संरक्षण की एक प्रणाली थी जिसमें चर्च सम्बन्धी पद, कार्यालयों और पदवियों को राजा द्वारा प्रदान किया जाता था। यह विशेषाधिकार अठारहवीं शताब्दी की राजनीति में प्रमुख था जो एक अमूर्त राष्ट्र की बजाए राजवंश के प्रति वफादारी सुनिश्चित करता था।

दूसरी तरफ, व्यवहार में पारलेमाँ (संसद), विशेष रूप से पेरिस की महत्वपूर्ण पारलेमाँ, अपने स्वतंत्रता पर बल देती रही। इसके अलावा, राजा को सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में फ्रोंड और अन्य छोटे विद्रोहों से निपटना पड़ा और देशभर में व्याप्त स्थानीय विविधताओं से भी। राजा को भी कुछ कानूनों, तर्कसंगतता, उपयुक्तता और अपनी शक्ति के प्रयोग करने में बुद्धिमत्ता की सीमाओं को स्वीकार करना पड़ता था और समय के साथ अधिकाधिक निजी सम्पत्ति के अधिकार और पवित्रता को स्वीकार करना पड़ा।

इस प्रकार उन कार्यालयों के प्रथागत व्यवहार, जो खरीदे गये थे या विरासत में मिले थे, और राजाओं द्वारा नियुक्त कार्यालयों के बीच एक टकराव हुआ। अपनी तरफ से राजा को सावधानी बरतनी होती थी कि वित्त और प्रशासन के पुनर्गठन में उन विशेषाधिकारों पर आँच ना आए जो विशेषाधिकार आधारित समाज की पूरी नींव को ही ना हिला दें। यह अन्तर्विरोध बढ़ता गया और यह फ्रांसीसी क्रांति के पहले के कुछ दशकों को चिह्नित करता है। विशेष रूप से बुर्जुआ वर्ग के विकास से, जो विनिर्माण, व्यापार और एकाधिकार को प्रोत्साहित करने के साथ उभरा और वह तीन वर्गों में विभाजित सामाजिक और जो राजनैतिक संरचना के ढाँचे में पर्याप्त प्रतिनिधित्व के प्रयास से प्रेरित था। कुलीन वर्ग और चर्च के विशेषाधिकारों के कारण बुर्जुआ वर्ग को पीछे रखा गया हालांकि राजा द्वारा कुछ वित्तीय सुधारों की कोशिश की गई। जिस राजा ने 1614 से तीनों स्टेट्स की प्रतिनिधि संस्था स्टेटस जनरल की बैठक नहीं बुलाई थी उसे दुबारा 1788 में बुलाने के लिए मजबूर होना पड़ा। जिसके प्रभावशाली परिणाम हुए और जो सर्वविदित उस प्रक्रिया का प्रारंभिक बिन्दु साबित हुआ जिसकी परिणति क्रांति के रूप में होनी थी।

इंग्लैंड में जन्म से उच्चतम अभिजात्य वर्ग, अन्य देशों की तुलना में जनसंख्या के अनुपात मे कम संख्या में था। लेकिन कृषि के वाणिज्यिकरण के कारण भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग या नये कुलीन वर्ग का विस्तार हुआ और यह संसद में अच्छी तरह से स्थापित था। स्टूअर्टस और गौरवशाली क्रांति के बाद, हनोवरियन राजवंश के जार्ज I और जार्ज II मजबूत शासक नहीं थे। इसलिए इंग्लैंड में महाद्वीप के विपरीत एक संवैधानिक राजतन्त्र चलता रहा। राजा अभी भी बहुत महत्वपूर्ण था और उसने मंत्रियों की शीर्ष नियुक्तियाँ की लेकिन इस मन्त्रिमंडल के मन्त्री संसद के प्रति उत्तरदायी और जवाबदेह थे। चुने हुए मन्त्री आवश्यक रूप से संसद, हाउस ऑफ लार्डस या हाउस ऑफ कॉमन्स के सदस्य भी थे। इसलिए राजा और संसद के बीच संघर्ष सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में और अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जारी रहा। संसद के सदस्य परिभाषित राजनीतिक समूहों में संगठित हो रहे थे और राजा की सत्ता को सीमित करने के पक्ष में व्हिग दल के लोग राजनैतिक परिदृश्य पर हावी थे। मताधिकार अभी भी संकीर्ण था, इसलिए भू-संपत्तिवान वर्ग का अभी भी दबदबा रहा। राजा और संसद के बीच संघर्ष अनिवार्य रूप से राजा और अभिजात्य वर्ग के बीच एक संघर्ष था लेकिन महाद्वीप की तुलना में यह राजनैतिक और प्रशासनिक ढाँचे में जन्म आधारित विशेषाधिकारों को बनाए रखने की दिशा में नहीं था बल्कि संपत्ति के अधिकारों और वाणिज्यिक कृषि के हितों में राज्य की नीति को प्रभावित करने और अठारहवीं शताब्दी के मध्य में कृषि बाड़बन्दी की दिशा में था। हाउस ऑफ कॉमन्स बहस और प्रभाव का एक महत्वपूर्ण मंच बन गया। हाउस ऑफ कॉमन्स के लिए मताधिकार भी इतना सीमित था कि कुछ क्षेत्रों में केवल कुछ हजार ही वोट दे सकते थे हालांकि कुछ में वोटों की संख्या दुगनी पहुँच गई थी। नीतियों के ऊपर बहस और टकराव का महत्व कहीं अधिक था चाहे भले ही इसमें कम संख्या में लोग शामिल थे। यह भारत में बिट्रिश शासन के सुदृढ़ीकरण और अमेरिकी उपनिवेशों में अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रभुत्व को दी जा रही चुनौती के बारे में बहसों से देखा जा सकता है।

इंग्लैंड के लिए अठारहवीं शताब्दी की राजनीति का अर्थ था साम्राज्य निर्माण की प्रक्रिया में सभी विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के बीच एकता की प्रक्रिया शामिल थी, जिसने राष्ट्रीय कोष को समृद्ध किया और संसद के भीतर सत्ता (संसद बनाम् राजा के

अलावा) का उपयोग इन हितों को प्राप्त करने के लिए कैसे किया जाए, उसी के इर्द-गिर्द घूमता था।

जब 1760 में जार्ज III सिंहासन पर आरूढ़ हुए, तो आक्रामक व्यापार नीतियाँ और मुक्त व्यापार असन्तोष टकराव के नये कारक बन गये। जार्ज III ने अपनी सत्ता पर भले ही जोर दिया लेकिन वह संसद के कानून के अधीन ही थी। संसद ने अपनी तरफ से अधिक से अधिक जनता और राष्ट्र की बात की, भले ही वास्तव में उसने भू-संपत्तिवान कुलीन वर्ग के साथ-साथ अब उभरते हुए वाणिज्यिक और विनिर्माण से जुड़े पूंजीपति वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व किया। परिवर्तन की आवाज संसद में और यथास्थिति की रक्षा की बात में भी परिलक्षित हुई और फ्रांसीसी क्रांति की पूर्व-सन्ध्या तक ये नये स्वर नई शब्दावली को प्रतिबिंबित करते हैं भले ही मूलगामी परिवर्तन को ना करते हों। क्रांति के विस्फोट ने मूलगामी विचार और रूढ़िवाद दोनों प्रक्रियाओं को गति दी। यह पहले के विपरीत है जो यह झलक देते हैं कि इंग्लैंड यूरोप में गूंज रहे क्रांतिकारी विचारों के प्रभावों से पूरी तरह सुरक्षित रहा। इसने इंग्लैंड की राजनीति को एक नया आयाम दिया क्योंकि खासकर पूंजीवादी वर्ग नीतियों की वकालत करने के लिए महत्वपूर्ण कारक बन गया था।

मध्य और पूर्वी यूरोप में जहाँ अभिजात्य वर्ग ने एक लंबी मध्यकालीन अवधि की बजाय, देर से शक्ति हासिल की, वहाँ राजशाही की प्रकृति निरंकुश थी – इनमें बेन्डनबर्ग-प्रशा, ऑस्ट्रिया हेब्सबर्ग साम्राज्य और रूस आते थे। निरंकुश शासन और कृषि-दासता के उद्‌भव के बीच एक मजबूत संबंध है। यहाँ, भू-अभिजात्य वर्ग राज्य निर्माण और कृषि-दासता की संस्था की सुरक्षा के लिए, जिस पर वे अपनी आय के लिए निर्भर थे, पश्चिम यूरोप की तुलना में सम्राटों पर बहुत अधिक निर्भर हो गये। वे सेना और नागरिक सेवा के अधिकारी बन गये, जिसमें वह राज्य संरचना में काम कर रहे थे जबकि उनकी जागीरें सांमती तरीके से चलाई जा रही थीं। उनमें से कुछ ने प्रशासन के केन्द्रीयकरण, नाप और तोल के उपायों के मानकीकरण, चर्च को राज्य के अधीन करने, प्रौद्योगिकी और विनिर्माण को प्रोत्साहन और केन्द्रीयकृत सेनाओं के निर्माण जैसे उपाय किये जिनका लक्ष्य आधुनिकीकरण और दक्षता को बढ़ावा देना और सामंती भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग पर नियन्त्रण स्थापित करना था ना कि यह शासकों के प्रबुद्ध विचारों का परिचायक था। उन्होंने कानून और प्रशासन में भी कुछ बदलाव किये जिनकी परिकल्पना प्रबोधन के विचारों में की गई थी लेकिन इसमें भी वहीं कदम थे जो एक मजबूत केन्द्रीयकृत राज्य के व्यावहारिक कारणों को पूरा करते थे।

पश्चिम यूरोप के विपरीत, इसलिए इन क्षेत्रों में निरंकुशवाद एक ऐसी अर्थव्यवस्था के आधार पर विकसित हुआ जो कृषि-दासता पर आधारित थी और जिसने राजशाही और भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग को एक ऐसे बंधन में बाँध दिया था जिसमें प्रशासनिक व्यवस्था और सैन्य शक्ति और विशेषाधिकार का मौजूदा सामाजिक ताना-बाना एक मजबूत राजशाही पर टिका हुआ था। यह केवल अठारहवीं शताब्दी के अन्त में प्रशा (फ्रेडरिक महान के अन्तर्गत) और ऑस्ट्रिया में (फिलिप II के अन्तर्गत), और रूसी साम्राज्य (उन्नीसवीं सदी के मध्य में एलेक्जेंडर II के अन्तर्गत) हुआ था कि कृषि-दासता समाप्त कर दी गई और किसानों को मुक्ति दी गई। यह इस तथ्य के कारण हुआ कि अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों ने कृषि-दासता को व्यवहारिक नहीं रहने दिया। और इन देशों में किसानों की मुक्ति इस तरीके से हुई कि उससे भू-संपत्तिवान

अभिजात्य वर्ग को ही लाभ मिला। इससे राजशाही और अभिजात्य वर्ग के बीच एक समझौता बना रहा और पश्चिमी यूरोप की तुलना में राजतंत्रों को अधिक शक्ति बनाए रखी। सुधार किए गए कानून संहिताओं ने विशेष अधिकार प्राप्त और सामान्य जन के बीच अंतर अभी भी बनाए रखा। इसलिए हमें यह समझना होगा कि इन शासकों के संबंध में 'प्रबुद्ध या 'परोपकारी' निरकुंशवाद की अवधारणा के प्रयोग किये जाने की अपनी सीमाएँ हैं।

प्रशा के राजाओं ने वास्तव में 1701 में ही अपना शाही खिताब हासिल कर लिया था, लेकिन फ्रेडरिक I और फिर फ्रेडरिक महान ने ऐसे क्षेत्र की कमान संभालने में सबसे निर्णायक भूमिकाएँ निभाई जहाँ केन्द्रीयकृत सैन्य और प्रशासनिक नियन्त्रण था। अठारहवीं शताब्दी में प्रशा की राजशाही का लक्ष्य एक मजबूत राज्य का निर्माण था ना कि केवल न्यायसंगत राज्य का। इसका सरोकार निचले स्तर पर शिक्षा और 1781 में कानून के संहिताकरण और नागरिक प्रक्रिया संहिता को तैयार करवाने के बावजूद और कुछ हद तक धार्मिक सहिष्णुता से प्रबुद्ध विचारों के लिए कुछ सहानुभूति प्रतीत होती है। लेकिन यह राजशाही और जुन्कर्स (भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग) के बीच एक समझौता था जो उच्च नीतियों में उनकी बढ़ती भूमिकाओं में परिलक्षित हुआ जबकि सैनिकों को किसान वर्ग से भर्ती किया गया था जिसने एक मजबूत सैन्य राज्य सुनिश्चित किया और जिसमें भू-संपत्तिवान शासक वर्गों और राजशाही के बीच न्यूनतम टकराव था क्योंकि दोनों पक्ष इस समझौते की आवश्यकता को समझते थे।

यह मुख्य रूप से सत्तारूढ़ हैब्सबर्ग राजवंश के प्रति वफादारी थी जिसने बहुराष्ट्रीय ऑस्ट्रियाई हैब्सबर्ग साम्राज्य को एक साथ रखा था और जिसने अठारहवीं शताब्दी के दौरान ओटोमन साम्राज्य, पौलेंड और हंगरी के क्षेत्र में अपना विस्तार किया था। मारिया टेरेसा और जोसफ II के शासन काल, जिस अवधि से यहाँ हमारा संबंध है, वह सुधार कर रही निरकुंशता की सामान्य विशेषताओं के अनुकूल थे जिनका जिक्र हमने ऊपर किया था। हम यहाँ कानूनों के संहिताकरण, प्रशासनिक सुधार और कुछ कठोर दण्डों के उन्मूलन पर बात कर सकते हैं। लेकिन राज्य और राजनीति भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग के विशेष अधिकारों के इर्द-गिर्द घूमती थी और कृषि-दासता की गहनता इसे सुनिश्चित करती थी।

रूस में पीटर महान और कैथरिन के अन्तर्गत, 'पश्चिमीकरण' और तकनीकी जानकारी हासिल करने के साथ कृषि-दासता की गहनता ने मिलकर निरकुंशता के विकसित होने के तरीके को विकसित किया और साथ ही साथ अगली तीन शताब्दियों तक राजनैतिक विरोध के रूपों को भी प्रभावित किया। निरकुंशता की सुदृढ़ता को इन प्रक्रियाओं के माध्यम से हासिल किया गया था, जिसके कारण जार द्वारा कृषि-दासता के विशेषताधिकार की गारंटी के बदले में जमींदारों को सेवा करने वाले कुलीन वर्ग के रूप में रूपातंरित कर दिया गया था, इसके बाद उनकी स्थिति वंशावली पर उतनी निर्भर नहीं करती थी जितना कि प्रशासन या सेना में उनके द्वारा प्राप्त की गई श्रेणी। इसलिए जहाँ प्रतिभा के आधार पर कुछ सामाजिक गतिशीलता संभव हो सकती थी वहीं निरंकुशता के प्रति अभिजात्य वर्ग की मातहती उन्नीसवीं शताब्दी के शुरुआत तक भी एक विशेषता थी।

दूसरी और पौलेंड एक 'कुलीन गणराज्य' बना रहा, जहाँ सबसे धनी कुलीन परिवारों का वर्चस्व बना रहा जो ऑस्ट्रिया, रूस और प्रशा के बीच विभाजित कर लिया गया था। स्वीडन अभिजात्य वर्ग के साथ टकरावों के उतार-चढ़ाव के परिणामस्वरूप, एक

निरंकुश राजतंत्र था जहाँ कभी-कभी एक प्रकार की संसद की दिशा में झुकाव था जो अभिजात्य वर्ग के वर्चस्व में थी। नीदरलैंड, विशेषरूप से हालैंड के शहरीकृत क्षेत्रों में भी ऐसा ही कुछ था।

बोध प्रश्न-1

1) अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड और फ्रांस में राज्य और राजनीति पर संक्षिप्त चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) अठारहवीं शताब्दी में प्रशा और रूस के संदर्भ में राज्य और अभिजात्य वर्ग के बीच संबंधों का विश्लेषण कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

8.4 अन्तर्राष्ट्रीय संबंध : महाद्वीप और साम्राज्य

यूरोपीय शक्तियों के बीच टकराव के लिए व्यापार, रणनीतिक लाभ और प्रतिष्ठा प्राथमिक प्रेरक शक्तियाँ थीं। इसलिए सशस्त्र टकराव और कूटनीतिक संन्धियाँ इस अवधि के दौरान विभिन्न यूरोपीय राज्यों के बीच राजनीति के प्रमुख तत्व थे।

अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की विशेषता पश्चिम में फ्रांसीसी आधिपत्य और पूर्व में रूस के उभरने का डर था। पीटर महान के शासन काल से यूरोप में रूस के एक शक्ति के रूप में प्रवेश का बहुत बड़ा परिणाम हुआ, जैसा कि जर्मन राज्यों में प्रशा के उदय का हुआ था। पहली बार महाद्वीप में और विश्व में महाशक्तियों के बीच आपस में एक शक्ति संतुलन को बनाए रखना एक चिंता का विषय बन गया। महाद्वीप में फ्रांस के हित उभरते ऑस्ट्रियाई हैब्सबर्ग साम्राज्य और डचों के साथ टकराव में थे और उसने उनके साथ युद्ध किया। तुर्कों ने अभी भी साम्राज्य के लिए अपनी महत्वकाक्षांओं को नहीं छोड़ा था और उनका भी मुख्य रूप से ऑस्ट्रियाई साम्राज्य के साथ टकराव हुआ। हालांकि अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक वह हार गये। अठारहवीं शताब्दी तक, बाल्टिक प्रान्तों की विजय के माध्यम से, रूस ने समुद्र तट और समुद्री बन्दरगाहों तक अपने पहुँचने का लक्ष्य हासिल कर लिया था।

अठारहवीं शताब्दी के शुरुआत के महत्वपूर्ण युद्ध स्पेन के उत्तराधिकार का युद्ध, हंगरी के युद्ध और उत्तरी युद्ध थे। जैसा कि पहले बताया गया है कि विवाहों के माध्यम से गठजोड़ों और राजशाहियों की प्रधानता के कारण, उत्तराधिकार के मुद्दे उन देशों के

अलावा दूसरे देशों में भी उथल-पुथल पैदा करते थे, जहाँ उत्तराधिकार होना था और इसके परिणाम विभिन्न देशों के बीच शक्ति संतुलन पर भी पड़ते थे। 30 साल के युद्ध के अंत में होने वाले अनेक पुराने समझौतों की जगह नई संधियों ने ले ली जिन्होंने शक्ति के नये संतुलन, बाद की विजयों और सीमाओं के परिवर्तन को ध्यान में रखा।

अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में नई सन्धियों पर हस्ताक्षर किये जा रहे थेः युटरेख्ट, रेस्टेड और बेडन (1713-14) की संधियाँ, जिन्होंने पश्चिम में आये नये शक्ति संतुलन को चिह्नित किया, और इस प्रक्रिया में पश्चिमी क्षेत्र के टकरावों और युद्धों का निपटारा किया गया जैसे निस्टेड, स्टॉकहोम और फ्रेडरिक्सबोर्ग (1719-21) की संधियाँ। जिन्होंने उत्तर में नये शक्ति समीकरणों का ध्यान रखा और कार्लोवित्स और पसारोवित्स (1699) की संधियाँ जिन्होंने दक्षिण पूर्व यूरोप में ऑस्ट्रियाई साम्राज्य और तुर्की के बीच समीकरणों का निपटारा किया। इनके माध्यम से कुछ क्षेत्रों की अदला-बदली हुई लेकिन इससे महत्वपूर्ण था कि इन्होंने नये शक्ति सम्बन्धों को दर्शाया। इसके अलावा पश्चिमी यूरोपीय राज्यों ने (इंग्लैंड, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल और हालैंड) अनिवार्य रूप से समुद्र पार साम्राज्यों के निर्माण पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। 1740 तक स्पेन के साम्राज्य ने अपना अधिकांश दक्षिण अमेरिका, कुछ कैरिबियन द्वीपों और अन्य क्षेत्र पर कब्जा जमा लिया। पुर्तगालियों के भारत में कुछ बन्दरगाह और कुछ क्षेत्र पश्चिम और पूर्वी अफ्रीका में, ब्राजील और ऊरग्वे में थे। डचों के भारत में व्यापार में अधिक रुचि थी लेकिन श्रीलंका और मलक्का में उनका अधिक नियन्त्रण था। उत्तरी अमेरिका में और भारत के कुछ भागों में फ्रांसीसियों और इंग्लैंड का भारत, अमेरिका और विश्व के अनेक अन्य भागों में नियन्त्रण था।

इंग्लैंड अग्रणी वाणिज्यिक और औपनिवेशिक शक्ति बन गया। ऑस्ट्रिया ने तुर्की की कीमत पर मध्य यूरोप में अपनी शक्ति और प्रभाव क्षेत्र बढ़ा लिए। स्पेन ने एक साम्राज्य बनाए रखा, लेकिन यूरोप में अपना प्रभाव खो दिया जबकि प्रशा के अधीन कोई औपनिवेशिक अधिकृत क्षेत्र ना होने के बावजूद यह महाद्वीप में महत्वपूर्ण बन गया और अगली शताब्दी में जर्मन एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए तैयार हो गया। रूस ने अपने मध्य एशियाई क्षेत्रों को सुदृढ़ किया और विशाल भू-भागों पर लगभग औपनिवेशिक सम्बंध स्थापित किये। अकेले फ्रांस ने महाद्वीप पर अपने राजनैतिक वर्चस्व को बनाए रखा और इस अवधि में अपने समुद्र पार अधिकृत क्षेत्रों को भी बनाए रखा।

8.5 राज्य और चर्च

ऐसे समाज में जहाँ बहुसंख्यक लोगों के विश्व दृष्टिकोण को धर्म ही आकार देता था, शासकों ने अपनी व्यक्तिगत धार्मिक अभिरुचियों को ध्यान में रखते हुए, लोगों की व्यक्तिगत मान्यताओं के सम्बन्ध में कम या ज्यादा धार्मिक सहिष्णुता दिखाई। पादरी, नन और भिक्षुओं की संख्या कम नहीं हुई लेकिन धार्मिक युद्धों का अन्त धार्मिक समूहों के प्रति तटस्थता या उदारवाद नहीं था और चर्च के साथ और अल्पसंख्यक धार्मिक समूहों के साथ संबंध सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी की यूरोपीय राजनीति के महत्वपूर्ण पहलू थे।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपने देश में स्थापित चर्चों के साथ गठबंधन ने उन्हें सामाजिक यथास्थिति के साथ-साथ शाही सत्ता को बनाए रखने में भी मदद की। लेकिन जिस दौर की हम यहाँ बात कर रहे हैं, वह सम्बन्ध बराबरी वालों के गठजोड़

का नहीं थाः सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक राजशाही ने धार्मिक क्षेत्र में चर्च की स्वायत्तता को काफी कम कर दिया था और राज्य के मामलों में उसकी शक्ति बुरी तरह से कम हो गई थी। हालांकि चर्च निरंकुशवादी कैथोलिक राज्यों में एक महत्वपूर्ण शक्ति बना रहा क्योंकि इसे कराधान से छूट मिली थी और यह भूमि और कृषि दासों का स्वामी था या अपने स्वयं के कर भी लगा सकता था। लेकिन इन राज्यों में भी चर्च की उच्च नियुक्तियाँ राजा की इच्छा पर निर्भर थीं और रोम के प्रधान पोप को पूरे यूरोप में राष्ट्रीय चर्चों की वास्तविकता को स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा। राजाओं और शासकों ने पोप की सत्ता को बहुत कम सम्मान दिया। चर्चों ने अपने धार्मिक और सामाजिक कार्यों को जारी रखा, लेकिन राज्य के एक अंग के रूप में।

फ्रांस में चर्च के पास भूमियाँ थी जिससे उसे आय प्राप्त होती थी। और सामान्य जनों पर दसमांश नामक कर लगाया जाता था जो किसान वर्ग की एक मुख्य शिकायत बनी। इस प्रकार चर्च फ्रांस में प्राचीन शासन व्यवस्था का एक स्तम्भ था। इंग्लैंड में प्रोटेस्टेंट चर्च कोई कर नहीं लगा सकता था लेकिन राजाओं को अन्य धार्मिक सम्प्रदायों को समर्थन देना अधिकाधिक मुश्किल हो गया। स्पेन में धर्म न्यायाधिकरण और उससे जुड़ी सभी चीजें अतीत की चीजें बन गई। रूस में निरकुंशता ने आर्थोडोक्स प्राचीन चर्च को अपने नियन्त्रण में कर लिया और इसे रूसीकरण और निरंकुशता का एक साधन बना लिया और ऑस्ट्रिया में, चर्च के पास काफी भूमियाँ थी, हालांकि जोसेफ II और कैथोरिन ने मठों की भूमियों को जब्त कर लिया और उन्हें राज्य के नियन्त्रण में लाया गया। चर्च हर जगह सामाजिक रूप से अभिजात्य वर्ग से जुड़ा हुआ थाः अधिकांश उच्च पद अभिजात्य वर्ग के लोगों के पास होते थे, जिससे राजनैतिक रूप से चर्च को राजशाही का पक्ष लेने में सुविधा रहती थी।

लेकिन चर्च के भीतर जहाँ उच्च अधिकारी अभिजात्य वर्ग के थे और आलीशान जीवन जीते थे, जबकि बहुसंख्यक आम पुजारी और नन सामान्य जन और गरीब भी थे। इसने एक ऐसी जटिलता पैदा की जिसका अगली शताब्दी में राजनीति के लिए बहुत महत्व था, खासतौर से चूंकि अधिकांश शैक्षणिक उद्यम चर्च के हाथों में ही था। गरीब, उनके बीच में शिक्षक, और विशेषाधिकार प्राप्त लोगों ने अलग-अलग तरीकों से व्यवहार किया और अपनी सत्ता का प्रयोग किया।

8.6 स्थापित सत्ता को चुनौती : 1760 और 1770 के दशक

यूरोप के विभिन्न राज्यों में स्थापित सत्ता की चुनौती का उभरना इस लम्बी अवधि में लाजमी था। इसका सम्बन्ध सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों और प्रबोधन काल के विचारों से सम्बन्धित बौद्धिक प्रगति से भी था। ये चुनौतियाँ पूरे यूरोप में राजशाही और राज्य संरचनाओं में अन्तर्निहित भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग के विशेषाधिकारों के खिलाफ थी। इन चुनौतियों ने राजनीति की गति को तेज किया और नये आयामों को जोड़ा जो अठारहवीं शताब्दी के दूसरे दशक से लेकर फ्रांसीसी क्रांति के शुरू होने तक दिखाई पड़ते हैं।

इंग्लैंड की क्रांति के दौरान इंग्लैंड ने पहले से ही गहन राजनैतिक वाद-विवाद का अनुभव किया था और समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं का विकास देखा था। प्रबोधन

काल के साथ पूरे महाद्वीप में नई संस्कृति आई : सेलून, पत्रिकाएँ, समाचार-पत्र, पुस्तकें, साहित्यक और दार्शनिक सभाओं ने बौद्धिक परिवेश और वातावरण को बदल दिया जिसमें शिक्षित वर्ग पल रहा था। दार्शनिकों द्वारा चलाई गई बहसों से वकील, सरकारी अधिकारी और पेशेवर लोग भी प्रभावित थे। राजतन्त्र पहले की तरह जारी नहीं रह सके और ना ही विशेष अधिकारों की सुरक्षा कर पाये। इसके अलावा व्यापार और औपनिवेशिक साम्राज्यों के साथ आए सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों ने भी राजशाहियों को अनिवार्य रूप से बड़े हितों को समायोजित और संतुलित करने के लिए विवश किया।

इसके अलावा राज्य अब प्रत्यक्ष रूप से जनसंख्या के बड़े भाग को कराधान, सेनाओं में भर्ती, भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग के विशेषाधिकारों का चेतना बोध और स्थानीय स्तर पर नौकरशाही और प्रशासनिक ढाँचे को प्रभावित कर रहा था। इन सबने जो असंतोष उत्पन्न किए उनकी अभिव्यक्ति लोकप्रिय प्रतिरोध के विभिन्न रूपों में हुई। इसलिए एक स्तर पर राजनैतिक सुधारों के लिए विशेषाधिकार के शिकंजे को तोड़ने की माँगें थी और दूसरे स्तर पर पूरे यूरोप में लोकप्रिय विद्रोहों की एक श्रृंखला थी।

इंग्लैंड में साम्राज्य निर्माण और वाणिज्यिक लाभ के जोर ने भू-सम्पत्तिवान अभिजात्य वर्ग के हितों की तुलना में ब्रिटिश हितों को कहीं अधिक व्यापक रूप से परिभाषित किया। राजनैतिक क्षेत्र में इसका प्रतिबिंब इसके लिए संसद में परिलक्षित माँगों के रूप में था जिसमें निर्वाचन क्षेत्रों और सुधारों के माध्यम से कस्बों और शहरों (विशेष रूप से लंदन) को अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाना था और मताधिकार के लिए संपत्ति की योग्यता को कम करके, पॉकेट बोरो को समाप्त करके और ग्रामीण अंचलों में कम जनसंख्या के कारण पहले जो अभिजात्य वर्ग को अधिक सीटें मिल जाती थीं उनकी संख्या कम करके निर्वाचन का आधार बढ़ाना था। 1760 और 1770 के दशकों में स्वतंत्रता जैसे शब्द संसदीय भाषणों में इस्तेमाल किये जाने लगे और अमेरीकी उपनिवेशों में अशांति के साथ 'बिना प्रतिनिधित्व के कोई कराधान नहीं' जैसी बातें सामने आई और बिल ऑफ राइट्स के समर्थकों ने एक संस्था का निर्माण किया।

फ्रांस में विशेषाधिकार की परतें जो दरबारी संरक्षण और नियुक्तियों के कारण बनी थीं उनका टकराव धन और शिक्षा से प्राप्त किये गए विशेषाधिकारों के साथ और उन व्यवसायी लोगों के साथ हुआ जिनको केवल इस तथ्य के कारण कुलीनता के विशेषाधिकारों से वंचित रखा था क्योंकि वे प्रथम श्रेणी में नहीं आते थे। दूसरी ओर राजशाही के लिए सामाजिक आधार को व्यापक करने और युद्धों और प्रशासन को अधिक वित्त प्रदान करने और अत्यधिक भारी दरबारी खर्चों की कीमत को पूरा करने के लिए वित्तीय सुधारों और कराधान के विस्तार के प्रयासों के प्रति भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग के वर्चस्व वाले पारलेमाँ में गहरा आक्रोश था। फ्रांस में राजशाही के राजनैतिक अलगाव और संकट के प्रति यह प्रवृत्ति फ्रांसीसी क्रांति के पहले से दशकों की राजनीति की पहचान थी।

डेनमार्क से सुधार के लिए एक आन्दोलन उभरा जिसने संसद और जागीरदारों के साथ अधिक परामर्श के लिए मारिया थेरेसा और जोसेफ II को सुधार करने के लिए मजबूर किया। स्वीडन में जब राजा ने 1772 में सीनेट और डाइट की शक्तियों को कम करके एक नया संविधान लागू किया तो एक टकराव की स्थिति उभरी। डच गणराज्य में संसदीय सुधारों और संघवाद के लिए शहरों के अधिकारों को ध्यान में रखते हुए माँगे उभरीं। ऑस्ट्रिया के साम्राज्य में विशेष रूप से नीदरलैंड से शामिल

किये गये क्षेत्रों में, स्टेटस जनरल को एक प्रतिनिधि विधान सभा में बदलने की माँग थी। यूनानी लोग तुर्की वर्चस्व के खिलाफ उठ खड़े हुए और कुछ इतालवी राज्यों और कोर्सिका द्वीप में भी अशान्ति थी। ऑस्ट्रियाई साम्राज्य में, विशेष रूप से इसके बहु-राष्ट्रीय और बहु-भाषीय होने के कारण विभिन्न हिस्सों में असंतोष देखा गया। जर्मन राज्य और प्रशा, अधिक अधिनायकवादी होने के नाते अपने निरंकुश शासन में सुधार के दबाव को महसूस कर रहे थे। ये सभी सुधार की माँगें थीं जो यूरोप में अधिक उदार उभरती ताकतों के हितों का प्रतिनिधित्व करती थीं और जो जनता के नाम पर अपनी आवाज उठा रही थी। इसी बीच लोगों के बीच से ऐसी चुनौतियाँ उभर कर सामने आई जिनका रूप और विषयवस्तु भिन्न था।

8.7 लोकप्रिय चुनौती : स्वरूप, प्रकृति और विषयवस्तु

राज्य के भीतर एक अन्य प्रकार का टकराव हुआ जिसने शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अधिक गति प्राप्त की। हालांकि, उनका उपयोग ऊपर बताए गए कुछ आंदोलनों में, विशेष रूप से लंदन में विल्क्स और फ्रांस में पारलेमाँ में किया गया था। परन्तु ये मुख्य रूप से स्वतंत्र थे, चरित्र में स्थानीय थे और आजीविका के अपने स्वयं के असंतोषों पर केन्द्रित थे।

उन्होंने एक प्रवृत्ति निर्धारित की जिसने उन्हें आने वाले शताब्दी के शक्ति के समीकरणों में एक महत्वपूर्ण कारक बना दिया। उन्होंने कई तरह के रूप धारण किये, कई तरह की माँगें उठाई, राज्य द्वारा जिनकी अनदेखी करना मुश्किल हो गया। पूर्वी और मध्य यूरोप में जहाँ किसान अभी भी कृषि-दासता से बंधे हुए थे और विशिष्ट सम्बन्धों में भू-सम्पत्तिवान अभिजात्य वर्ग की अधीनता में थे, वहाँ सतत् हिंसक किसान विद्रोह हुए। उदाहरण के लिए, रूस में 1762 और 1779 के बीच में ही 73 विद्रोह हुए थे। इस पूरे दशक में दुनिया के इस भाग में वे मुख्य रूप से जमींदारों या अधिकारियों, सांमती दायित्वों, श्रम सेवाओं, करों, सेना के लिए भर्ती, कीमतों, गरीबी और भूख के खिलाफ निर्देशित थे। इनमें अक्सर जार या राजा को अपने पक्ष में माना गया और उसे अपना संरक्षक मानते हुए ऐसा माना गया कि वह नहीं जानता था कि क्या हो रहा है? सबसे प्रसिद्ध पुगाचेव का विद्रोह था जिसे राज्य और भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग कभी नहीं भूल सकता था, और जिसकी स्मृति ने उन्हें अगली शताब्दी में भी भयभीत रखा। विद्रोह ऑस्ट्रिया, बोहेमिया और बाद में फ्रांसीसी क्रांति के विस्फोट के साथ फ्रांस और जर्मनी में और इंग्लैंड में बाड़बन्दी अधिनियमों के विरुद्ध और स्वीडन और नार्वे में 1780 के दशक में हुए।

मजदूरों के असंतोष को निम्न वेतन और मशीनों के इस्तेमाल से पैदा होने वाली बेरोजगारी से हवा मिली। इसने कारीगरों की हड़तालों, मशीनरी का विनाश (उदाहरण के लिए इंग्लैंड में लड्डाइट हड़तालें), जिनकी परिणिती उपद्रवों और विशिष्ट लक्ष्यों के प्रति हिंसा के रूप में हुई जैसे रूप धारण किये। इसमें दर्जी, खनिक, इंग्लैंड और फ्रांस में विभिन्न स्थानों पर बुनकर, किताबों के जिल्दसाज और प्रिन्टर आदि शामिल थे। एक अन्य व्यापक घटना, शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में खाद्य दंगों की थी जो खाद्य सामग्री की कमी या उच्च कीमतों के कारण हुए — इंग्लैंड में, 1735 और 1800 के बीच 175 ऐसे दंगे हुए और फ्रांस में 1724 और 1789 के बीच सौ से अधिक ऐसे दंगे हुए। इन शहरी दंगों में कुछ प्राथमिक राजनैतिक अर्थों को पहचाना जा सकता था।

सामान्य तौर पर, लोकप्रिय चुनौती अपनी मुखरता की तुलना में अपने परिणामों के कारण अधिक राजनैतिक थी। दंगे और विद्रोह सामाजिक रूप से रूढ़िवाद की तरफ झुके हुए थे और स्थानीय और रोजमर्रा की जिन्दगी के अनुभवों से जुड़े हुए थे, और उनमें कोई दूर-दृष्टि नहीं थी। उनका महत्व इस तथ्य में निहित है कि एक बार जब यूरोप में पूरे समाज को बदलने की माँग फैल गई तो स्थापित सत्ता जनता की निष्ठा पर विश्वास नहीं कर सकती थी।

बोध प्रश्न 2

1) सत्रहवीं शताब्दी और अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राज्य और चर्च के बीच के सम्बन्धों पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) सत्रहवीं शताब्दी और अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लोगों द्वारा शासक वर्ग को दी गई राजनीतिक चुनौती के विभिन्न रूपों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

8.8 सारांश

सत्रहवीं शताब्दी का अन्त और अठारहवीं शताब्दी यूरोप के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अवधि थी और इसे औद्योगिक और फ्रांसीसी क्रांति के एक उपक्रम के रूप में नहीं देखा जा सकता। यद्यपि बहुत से तत्व, जो इन दो महत्वपूर्ण घटनाओं को बनाते हैं, इस दौरान उभरे और विकसित हुए। इस अवधि की अपनी विशेषताएँ थी जिनको राजशाही और विशेषाधिकार के शासन द्वारा चिन्हित किया जा सकता है। पूरे यूरोप में राजशाही और भू-संपत्तिवान वर्ग ने राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अठारहवीं शताब्दी के शासन और राजनीति में केन्द्रीयकृत सेनाएँ और नौकरशाही महत्वपूर्ण कारक थे। इस अवधि का एक विशेष लक्षण साम्राज्य निर्माण और महाद्वीप की राजनीति के बीच सहजीवी सम्बन्ध था।

पश्चिमी यूरोप और मध्य और पूर्वी यूरोप के बीच अन्तर थे, हालांकि शासन की प्रमुख शक्तियाँ एक ही प्रकार के वर्गों से सम्बन्ध रखती थी। इंग्लैंड एकमात्र देश था जहाँ संसद और संवैधानिक मानदंडों ने कुछ सुविधाएँ प्राप्त की। कृषि-दासता ने केवल मध्य और पूर्वी यूरोप में शासन और राजनीति को सामाजिक आधार प्रदान किया, जबकि पश्चिमी यूरोप इस बात का एक उदाहरण था कि कैसे सामन्तवाद के पतन और

अर्थव्यवस्था में पूंजीवादी विशेषताओं के उभरने और एक उभरते वाणिज्यिक पूंजीपति वर्ग के बावजूद भू-संपत्तिवान अभिजात्य वर्ग राजनीति में एक महत्वपूर्ण शक्ति बना रहा।

प्रबुद्ध निरकुंशता, जैसे कि हमने चर्चा की, ने किसान और आम लोगों का जीवन बेहतर नहीं बनाया। हालांकि इसके कारण कुछ कानूनों में सुधार किया गया। प्रबोधन के विचारों के शिक्षित लोगों के बीच प्रसार और अन्तिम दशकों के लोकप्रिय विद्रोहों ने एक नये राजनीतिक विमर्श को जन्म दिया जिसने उन परिस्थितियों को बनाया जिनमें ''लोकप्रिय निष्ठा अनन्य रूप से राष्ट्र के लिए ही हो सकती थी'' – राजा के लिए नहीं। इसको व्यवहार में वास्तव में प्राप्त करने के लिए फ्रांसीसी क्रांति हुई।

8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 8.2 देखें।

2) भाग 8.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 8.5 देखें।

2) भाग 8.6 और 8.7 देखें।

इकाई 9 प्रबोधन काल*

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 प्रबोधन का अर्थ

9.3 पृष्ठभूमि

9.4 चरण

9.5 प्रबोधन के मुख्य विचार

9.6 प्रबोधन काल के कुछ महत्वपूर्ण विचारक

- 9.6.1 मांटेस्क्यू (1689-1755)
- 9.6.2 वॉल्तेयर (1694-1778)
- 9.6.3 दिदरो (1713-1784)
- 9.6.4 रूसो (1712-1778)
- 9.6.5 टर्गो (1727-1781)

9.7 प्रबोधन काल की विरासतें

9.8 सारांश

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप निम्न कार्य कर सकेंगेः

- प्रबोधन कहे जाने वाले घटनाक्रम के बारे में विशेष रूप से यूरोप के संदर्भ में, जान सकेंगे;
- इसकी पूर्ववर्ती घटनाओं के बारे में व्याख्या कर सकेंगे;
- यह जान पायेंगे कि यह किन चरणों के माध्यम से विकसित हुआ;
- इसके कुछ महत्वपूर्ण विचारों का विवरण दे सकेंगे; और
- कुछ महत्वपूर्ण प्रबोधन काल के विचारकों के बारे में जानेंगे।

9.1 प्रस्तावना

प्रबोधन मानव इतिहास की सबसे बड़ी बौद्धिक गतिविधियों में से एक था। ऐसा माना जाता है कि पुनर्जागरण और धर्म-सुधार के साथ इसने आधुनिकता को बौद्धिक नींव प्रदान की। वास्तव में, यह माना जाता है कि इसका आधुनिक दुनिया के निर्माण में इससे पहले हुए किसी भी अन्य आन्दोलन की तुलना में कहीं अधिक योगदान रहा है। यह अभी भी उस युग के रूप में माना जाता है जबसे, कम से कम विचार के सदंर्भ में आधुनिक विश्व की शुरुआत हुई। आमतौर पर यह माना जाता है कि प्रबोधन पश्चिम

* इकाई लेखकः प्रो. शशिभूषण उपाध्याय

यूरोप से शुरू हुआ और यहाँ से वह यूरोप के अन्य हिस्सों, फिर उत्तरी अमेरिका और दक्षिण अमेरिका तक फैल गया। अन्त में, उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, दुनिया के सभी भागों में यूरोपीय घुसपैठ के समय से, प्रबोधन कालीन विचारों ने दुनिया भर में अपनी छाप छोड़ी। इस इकाई में, हम केवल यूरोप के संदर्भ में प्रबोधन काल की चर्चा करेंगे।

9.2 प्रबोधन का अर्थ

इस प्रश्न पर कि प्रबोधन क्या है, जर्मन दार्शनिक इमानुवल कांट (1724-1804) ने उत्तर दियाः 'जानने की हिम्मत करें! अपनी समझ का उपयोग करने का साहस रखें'। इस प्रतिक्रिया ने व्यक्ति पर और आलोचनात्मक समझ पर जोर दिया और धर्म या किसी अन्य महत्वपूर्ण सत्ता द्वारा पारम्परिक रूप से थोपे गये समझने के तरीके को अस्वीकार कर दिया। कांट की प्रतिक्रिया उनके समय के दौरान शक्तिशाली बौद्धिक धारा के अनुरूप थी जिसने बौद्धिक स्वतन्त्रता पर जोर दिया और ज्ञान और प्रगति प्राप्त करने के लिए तर्कशक्ति के इस्तेमाल पर बल दिया था। कांट सहित प्रबोधन काल के विचारक चाहते थे कि उनके विचार एक व्यापक श्रोतागण तक पहुँचे जिनमें स्वतंत्र सोच के साथ स्वायत्त व्यक्ति शामिल हो। इसलिए, उन्होंने औपचारिक शिक्षा की सीमा से आगे व्यापक शिक्षा पर जोर दिया, जो अनेक मामलों में, उस समय धार्मिक संस्थाओं द्वारा ही दी जाती थी। उनकी राय में, एक व्यापक रूप से धर्म निरपेक्ष शिक्षा लोगों को अपने जीवन में आलोचनात्मक जाँच-पड़ताल को लागू करने में सक्षम बनाएगी।

फिर भी बौद्धिक स्वतन्त्रता की धारणा शिक्षित और तर्कसंगत व्यक्तियों तक सीमित थी, जो ज्यादातर उच्च और मध्यम वर्गों से सम्बन्ध रखते थे। प्रबोधन काल की लोकतांत्रिक पहुँच जनता या यहाँ तक कि महिलाओं को शामिल नहीं करती। कई प्रबोधन काल के विचारकों का मानना था कि जनता के द्वारा अपने स्वयं के निर्णय लेना खतरनाक था। अधिकांश गैर-यूरोपीय लोगों पर भी यही लागू होता था। हालांकि, प्रबोधन काल के विचारकों ने सोचा था कि जनता, महिलाएँ और गैर-यूरोपीय लोग तर्कशक्ति के उपयोग से लाभान्वित हो सकते थे बशर्ते उनका निर्देशन ठीक से किया जाता।

प्रबोधन काल के महत्वपूर्ण इतिहासकारों में से एक, पीटर गे ने इसे आधुनिक काल में ईसाई धर्म के विपरीत सोच के रूप में चिह्नित किया है। यह विशेष रूप से फ्रांसीसी प्रबोधन के दौरान कई विचारकों की चर्च विरोधी घोषणाओं के मद्देनजर था हालांकि, कई इतिहासकारों ने अब तर्क दिया है कि इस तरह के चरित्रांकन को नहीं माना जा सकता क्योंकि इटली, जर्मनी, ऑस्ट्रिया, स्कॉटलैंड, अमेरिका और इंग्लैंड सहित अनेक देशों में प्रबोधन काल की संस्कृति ईसाई विरोधी नहीं थी। फ्रांस में भी केवल सीमित मामलों में ही ईसाई विरोधी या धर्म विरोधी रवैये को पहचाना जा सकता था। यह सच है कि अन्धविश्वास और धर्म के प्रतिबन्धात्मक संस्थागत रूपों के खिलाफ एक सामान्य जोर था और पादरी वर्ग की संपत्ति, शक्ति और भ्रष्टाचार का खंडन किया गया था लेकिन अपने आप में धर्म को अस्वीकार नहीं किया गया था। बल्कि यह धर्म के प्रति दृष्टिकोण का एक व्यापक विस्तार था। साथ ही साथ नागरिक को अलौकिक से या धर्म को राज्य से पृथक करने का एक सामान्य आग्रह था। इस रवैये ने राजनीति के धर्म निरपेक्षीकरण को जन्म दिया जिसमें संस्थागत धर्मों को कोई भूमिका नहीं निभानी

थी। इसके अलावा, भौतिक विकास एक अधिक वांछनीय लक्ष्य माना जाता था और यह दिव्यता की खोज की तुलना में मानव गतिविधि के लिए एक बेहतर क्षेत्र था।

हाल के दशकों के लेखन के आधार पर प्रबोधन की सटीक परिभाषा देना मुश्किल है। हम केवल मोटे तौर पर इसके वर्णन की कोशिश कर सकते हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रबोधन यूरोप में अठारहवीं शताब्दी के दौरान होने वाला एक बौद्धिक आन्दोलन था। इसका केन्द्र फ्रांस में था, लेकिन प्रबोधन के अपने-अपने संस्करणों को विकसित करने के साथ अन्य यूरोपीय देश भी महत्वपूर्ण रूप से इसमें शामिल थे। इन सभी अलग-अलग संस्करणों में सबसे सामान्य कारक पारम्परिक और धार्मिक हठधर्मिता की अस्वीकृति थी और साथ ही तर्कशक्ति और व्यक्ति पर जोर देने की अपील थी।

9.3 पृष्ठभूमि

प्रबोधन बौद्धिक शून्यता में उत्पन्न नहीं हुआ। सोलहवीं शताब्दी से आधुनिक विज्ञान के विकास और सत्रहवीं शताब्दी के दौरान आधुनिक दर्शन के विकास का प्रबोधन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। अवलोकन, प्रयोग, विश्लेषण और तर्कशक्ति के उपयोग पर बल देना – जो आधुनिक विज्ञान के मूल में थे – इन सबका उपयोग प्रबोधन काल के विचारकों ने परपम्रागत सोच के धार्मिक रूपों के खिलाफ अपनी लड़ाई में किया था। दकार्त (तर्कवादी दर्शन), आइजेक न्यूटन (आधुनिक विज्ञान), जॉन लॉक (उदारवादी दर्शन), और पीयरे बेयल (संशयवाद) सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव में से थे। वे उन सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिकों में से थे जिन्होंने समाज के बारे में सोच की नई वैज्ञानिक पद्धति की शुरुआत की। कुछ इतिहासकार लॉक और बेयल को प्रारम्भिक प्रबोधन का ही एक भाग मानते हैं।

न्यूटन (1640-1726) ने फ्रांसीस बेकन की प्रयोगात्मक विधि को दकार्त के तर्कवादी दर्शन के साथ संयोजित करने का प्रयास किया था। वाल्तेयर जो प्रबोधन काल के सबसे महत्वपूर्ण विचारकों में से थे, उन्होंने विशेष रूप से उनकी वैज्ञानिक और दार्शनिक उपलब्धियों के लिए प्रशंसा की थी। गुरुत्वाकर्षण और गति के नियमों के बारे में उनकी प्रसिद्ध वैज्ञानिक खोज के अलावा, न्यूटन की ब्रह्माण्ड की प्रकृति के बारे में जो दार्शनिक लेख हैं उसने प्रबोधन काल के विचारकों को सबसे ज्यादा प्रभावित किया। न्यूटन ने ब्रह्मांड की कल्पना एक ऐसी स्वचालित मशीन के रूप में की, जिसे अपने दैनिक कामकाज के लिए भगवान के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी। यह मूलरूप से भगवान द्वारा गतिशील किया गया था, जिसने फिर अपने को अलग कर लिया और मशीन को अपने दम पर काम करने दिया।

जॉन लॉक (1632-1704) के अनुसार, ''वैज्ञानिक पद्धति'' का उपयोग समाज और मानवता के अध्ययन के लिए वैसे ही किया जा सकता था, जितना कि यह प्रकृति के अध्ययन पर लागू होता था। उनका मानना था कि जन्म के समय प्रत्येक मानव की बुद्धि एक रिक्त स्लेट की तरह थी, जिस पर कोई भी विचार छापे जा सकते थे। लॉक का मानना था कि अनुभववादी पद्धति में, सभी ज्ञान संवेदी अनुभूतियों से प्राप्त होते हैं और कोई विरासत में मिले लक्षण नहीं होते। इसने समाज में एक सहज समानता का विचार प्रस्तुत करने की सम्भावना के लिए अनुमति दी। उन्होंने कैथोलिक चर्च के इस महत्वपूर्ण विचार को भी खारिज कर दिया कि मानव जाति मूल पाप के

बोझ से दबी हुई थी। लॉक ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, धार्मिक सहिष्णुता, राजनैतिक शक्तियों के पृथक्कन, शैक्षिण सुधारों और प्रेस की स्वतंत्रता की वकालत की।

पियरे बेयल (1647-1706) एक पूरी तरह से संदेहवादी थे जिन्होंने प्राचीन समय से चले आ रहे लगभग सभी धर्मों और नैतिक दर्शन पर संदेह व्यक्त किया। उनके विचार प्रबोधन काल के लिए काफी उपयुक्त थे, जिनकी जड़ें चर्च सहित पारम्परिक सत्ता के प्रति संदेह में निहित थीं। चूँकि सभी प्रणालियों पर संदेह किया जा सकता था, इसलिए बेयल ने, विशेष रूप से धर्म के क्षेत्र में पारस्परिक सहिष्णुता की वकालत की।

वैज्ञानिक क्रांति के अलावा, सोलहवीं शताब्दी के बाद से धर्म के क्षेत्र में तेज और प्रभावशाली परिवर्तनों ने एक इस तरह का माहौल बनाया, जिसमें स्थापित विचारों पर सवाल उठाये गये थे, हालांकि यह अभी भी धार्मिक जामे में ही हो रहा था। अन्य धार्मिक विचारों पर सवाल उठाने और आलोचना करने वाले विरोधी धार्मिक सम्प्रदायों के प्रसार ने एक जाँच-पड़ताल की भावना पैदा की। सत्रहवीं शताब्दी में संदेहवाद एक सामान्य भावना के रूप में उभरा। कई सम्प्रदायों और उनकी विशिष्ट विचारधाराओं ने गरीब और मजदूर वर्गों को भी अपने दायरे में ले लिया। निरंतर पूछताछ और संदेहवाद ने एक ऐसी स्थिति को जन्म दिया जिसमें लोगों के जीवन में संगठित धर्मों की भूमिका अधिकाधिक कम हो गई। इसने गैर-चर्च और आमतौर पर प्रबोधन के धर्म निरपेक्ष रवैये की स्वीकृति के लिए आधार तैयार किया। जो लोग पहले से ही संगठित धर्मों में रुचि गँवा रहे थे वे प्रबोधन विचारकों के विचारों के प्रति ग्रहणशील थे।

प्रबोधन की नींव विचारों के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों में भी रखी गई थी। छापेखाने की संस्कृति के प्रसार, चर्च और सरकार के नियन्त्रण से परे एक नये सार्वजनिक क्षेत्र का निर्माण, और व्यापारी और वाणिज्यिक वर्गों और पूंजीपति वर्ग की सामान्य रूप से संख्या में वृद्धि; इन सबने प्रबोधन के विचारों के प्रसार को आधार प्रदान किया। सामाजिक और बौद्धिक पारस्परिक सम्पर्क की संस्थाओं के रूप में, सैलून और कॉफी हाउस ने सक्रिय स्थान प्रदान किये जबकि सैलून ज्यादातर उच्च वर्ग की महिलाओं द्वारा संचालित किये जाते थे, कॉफी हाउस वास्तव में सार्वजनिक संस्थाएँ थी। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से अनेक यूरोपीय शहरों में कॉफी हाउस की संख्या काफी बढ़ गई थी। सार्वजनिक पारस्परिक सम्पर्क की एक संस्था के रूप में, कॉफी हाउस सैलून की तुलना में कम उच्च वर्गीय थे और मधुशालाओं की तुलना में कम जनोन्मुख थे। वे सही मायने में मध्यम वर्गीय संस्थाओं के रूप में उभरे और फैल गये, जो विनम्र और व्यवस्थित सामाजिक और बौद्धिक चर्चा के लिए स्थान प्रदान करते थे। उन्होंने विचारों के निर्माण और प्रसार के लिए आधार के रूप में काम किया जो प्रबोधन काल की संस्कृति के लिए महत्वपूर्ण थे।

प्रबोधन को आकार देने में एक सबसे महत्वपूर्ण घटना यूरोपीय लोगों द्वारा गैर-यूरोपीय देशों का औपनिवेशीकरण था। औपनिवेशिक देशों से एकत्र किए गए ज्ञान का प्रबोधन के विचार में काफी महत्वपूर्ण योगदान था। मॉटेंस्क्यू, वाल्तेयर, दिदरो, रेनॉल, रॉबर्टसन और कई अन्य प्रबोधन काल के विचारकों ने अपने सिद्धांतों को निर्मित करने या अपनी आलोचना को विकसित करने के लिए औपनिवेशिक स्रोतों से काफी कुछ प्राप्त किया। रूसो ने भी अपनी प्रसिद्ध 'भद्र बर्बर' की छवि मूल अमेरिकी संस्करण पर ढाली थी। भारत और चीन ने वॉल्तेयर के पूर्व आधुनिक यूरोपीय राज्यों और धर्मों की आलोचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एशिया से प्राप्त औपनिवेशिक ज्ञान ने जलवायु और भूगोल की निर्धारक भूमिका पर अपने सिद्धान्तों को विकसित करने में मॉन्टेस्कयू

की बहुत मदद की। राबर्टसन ने मानव समाज के चरणवार विकास के अपने विचार को विकसित करने के लिए गैर यूरोपीय ज्ञान पर काफी भरोसा किया।

9.4 चरण

हालांकि शुरू में प्रबोधन की शुरुआत फ्रांस से हुई थी, विशेषरूप से पेरिस में लेकिन यह जल्दी ही पश्चिमी यूरोप के साथ जर्मन राज्यों, डच गणराज्य, ब्रिटेन, इटली और उत्तर अमेरिका में फैल गया। प्रबोधन के विचार पूर्वी यूरोप, विशेषरूप से रूस और पौलेंड और बाल्कन देशों तक भी पहुँच गए। फ्रांसीसी विचारों को विभिन्न देशों में अलग-अलग रूप से ग्रहण किया गया। उदाहरण के लिए, इटली में इसने चर्च विरोधी विचारकों को राजनीति में पादरियों और पोप के हस्तक्षेप पर हमला करने के अवसर प्रदान किये, जबकि ब्रिटेन में इसने 'स्कॉटिश प्रबोधन' के विशिष्ट रूप को जन्म दिया।

प्रबोधन के विचारों के प्रारम्भिक स्रोत पेरिस के सैलून और काफी हाउस थे। ये समाज, राजनीति, सरकार शिक्षा और प्रकृति के बारे में विचारों और मतों के केन्द्र बन गए। यहाँ अधिकांश फ्रांसीसी बुद्धिजीवी और अन्य यूरोपीय देशों के अनेक बुद्धिजीवी अनौपचारिक रूप से चर्चा करने और अपने विचारों पर विमर्श करने के लिए इक्टट्ठे होते थे। और यह विचार यहाँ से फ्रांस के अन्य भागों और अन्य यूरोपीय देशों, यहाँ तक कि अमेरिका तक ले जाए गए। प्रबोधन विचारों के व्यापक प्रसार का परिणाम हालांकि ज्यादातर यूरोप के भीतर, एक अंतरसीमाई समुदाय के निर्माण के रूप में हुआ जिसका उल्लेख 'ज्ञान के गणतन्त्र' के रूप में होता था। यह नये ज्ञान और सोच के नये तरीकों के प्रसार में लगे सार्वजनिक बुद्धिजीवियों का एक अनौपचारिक अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय था।

प्रबोधन, विशेष रूप से पश्चिम यूरोप में तीन चरणों के माध्यम से विकसित हुआ। पहली अवस्था अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के दौरान देखी जा सकती और यह चरण पूर्ववर्ती आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के विचारों से सीधे प्रभावित था जिसे 'वैज्ञानिक क्रांति' के नाम से भी जाना जाता है, जिसने पश्चिमी यूरोप के बौद्धिक वातावरण में आमूलचूल परिवर्तन किये। यह स्वाभाविक था कि उभरता हुआ प्रबोधन अपने कई प्रारम्भिक विचारों को इस महत्वपूर्ण बौद्धिक परिवर्तन से प्राप्त करेगा।

दूसरी अवस्था, जिसे उच्च प्रबोधन के रूप में जाना जाता है वह कुछ सबसे प्रसिद्ध प्रबोधन विचारकों जैसे मांटेस्क्यू और वॉल्तेयर की महत्वपूर्ण रचनाओं के साथ शुरू हुआ। मांटेस्क्यू की रचना *द स्पिरिट ऑफ लॉज* (1748) ने इस नये चरण की घोषणा की जिसकी समाप्ति 1778 तक मानी जा सकती है, जब इस अवधि के तीन महान फ्रांसीसी विचारक – मांटेस्क्यू, वॉल्तेयर और रूसो मर चुके होते हैं। तीसरी अवस्था या चरण जिसे प्रबोधन का अंत भी कहा जाता है, जिसे 'तर्कशक्ति पर बल देने में बदलाव करके मानव जाति की भावनाओं और आवेगों के प्रति ज्यादा चिंता पर बल देने' के रूप में चिह्नित किया गया है (मेरीमेन, 2010; 313)। इस अवधि में कई सम्राट थे जिन्होंने प्रबोधन के कुछ विचारों को अपनाया और उन्हें अपने सम्बन्धित शासन क्षेत्र में लागू किया। इस अवधि में आम लोगों के बीच भी इन विचारों का व्यापक प्रसार देखा गया, जिसके परिणामस्वरूप उच्च सत्ता, विशेष रूप से फ्रांस में, को कम करके आंका गया। इस प्रक्रिया ने अन्ततः फ्रांस और अन्य जगहों पर क्रांतिकारी विचारों का विकास किया। इस चरण की विशेषताओं में से एक तर्क के स्थान पर भावनाओं पर जोर देने की विशेषता थी, जैसा पहले रूसो के उदाहरण में देखा गया। एक अन्य

महत्वपूर्ण प्रवृत्ति अर्थव्यवस्थाओं की कार्यप्रणाली की स्वतंत्रता के विचार पर जोर था जिसकी वकालत एडम स्मिथ ने की थी। वाणिज्यवाद (सोने और चाँदी के संग्रह पर बल और संरक्षणवादी आर्थिक नीतियों पर जोर) से आर्थिक उदारवाद (मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वकालत) के रूप में बदलाव इसी अवधि में हुआ। इस चरण के दौरान विशिष्ट राष्ट्रीय संस्कृतियों और राष्ट्रीय पहचानों पर भी जोर दिया गया। इस चरण में सामान्य लोगों द्वारा प्रबोधन के विचारों को नये अर्थों में अनुकूलन के लिए अधिकाधिक सहभागिता देखी गई, विशेष रूप से मूलगामी रूप से सत्ता के विरोध रूप में।

प्रबोधन के अन्त का एक और महत्वपूर्ण विकास जर्मन आदर्शवादी दर्शन का विकास था, जो कांट से शुरू हुआ था, और जिसने यह अपेक्षा की थी कि विश्व में केवल तर्क और संवेदी अनुभूतियाँ ही हमारे ज्ञान का एकमात्र स्रोत नहीं होती। विश्व को केवल प्रत्येक व्यक्ति के अपने अनुभवों से उत्पन्न अवधारणा के माध्यम से समझा जा सकता था। यह उच्च प्रबोधन के विचारों की सार्वभौमिकता और तर्कसंगत वस्तुनिष्ठता से दूर व्यक्तिगत अनुभवों और विश्वासों की दिशा में ले गया।

9.5 प्रबोधन के मुख्य विचार

प्रबोधन के विचार उभरते आधुनिक विश्व के लिए इतने शक्तिशाली और उपयुक्त साबित हुए कि प्रबोधन मानवता के इतिहास में एक सबसे बड़ा बौद्धिक मील का पत्थर बन गया। आधुनिक विश्व का प्रबोधन के साथ इतनी घनिष्टता से उल्लेख किया जाता है कि इसे प्रबोधन के पश्चात् का विश्व भी माना जाता है। इन विचारों में प्रकृति, मानव, विश्व, समाज, अर्थव्यवस्था, राज्य, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंध और मानव स्वतंत्रता पर दीर्घकालीन दृष्टिकोण शामिल था।

पश्चिमी दुनिया में प्रबोधन के विचारकों ने ईसाई धर्म और विचार और सदियों पुरानी सोच से उत्पन्न परम्परागत विचारों पर सवाल उठाए। इस प्रकार फिलोसोफ (फ्रांसीसी प्रबोधन विचारक) ने राजनीति और समाज के सभी स्तरों पर धर्म-निरपेक्षीकरण पर बल दिया और चर्चों की स्थापित सत्ता को चुनौती दी। उन्होंने तर्कसंगत आधार पर व्यक्तिगत सोच पर जोर दिया और बिना किसी सोच के पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आ रहे पारम्परिक विचारों और प्रथाओं पर सवाल उठाए। एक अन्य स्तर पर उन्होंने अमेरिका और अन्य स्थानों पर यूरोपीय लोगों द्वारा व्यापक रूप से स्थापित दासता की संस्था पर हमला किया।

हालांकि संगठित धर्मों, विशेष रूप से कैथोलिक धर्म, के प्रति आलोचनात्मक होने के बावजूद प्रबोधन विचारक धर्म विरोधी नहीं थे। कुछ को छोड़कर जैसे कि डी हालबारव (1723-89) और क्लॉड हेल्वेशियस (1715-1771), अधिकांश प्रबोधन विचारक ईश्वर के अस्तित्व में यकीन रखते थे। हालांकि उनका ईश्वर तर्कशील और हस्तक्षेप ना करने वाला था। प्रबोधन विचारकों में से कई ने दैववाद पर विश्वास किया जिसका अर्थ था कि ब्रह्मांड का निर्माता भगवान था लेकिन वह ब्रह्मांड या मानव समाज की कार्य-प्रणाली में हस्तक्षेप नहीं करता। दैववाद में तर्कशक्ति और विश्वास का एक सुखद मिश्रण बनाया गया। दैववादियों के लिए ये सम्भव था कि वे प्रकृति और मानव समाज का विश्लेषण तर्कसंगत और वैज्ञानिक दृष्टि से करें जबकि साथ-साथ मूल निर्माता (ईश्वर) पर अपना विश्वास भी बनाए रखें।

पारम्परिक सत्ता के प्रति संदेह, यहाँ तक कि अस्वीकृति, प्रबोधन की पहचान थी। यह सोचा गया कि सार्वभौमिक तर्कशक्ति, जिसे दुनिया को समझने का तरीका माना जाता था, प्रत्येक व्यक्ति द्वारा लागू किया जाना चाहिए। यह विश्वास था कि सभी मनुष्य सहज रूप से अच्छे और तर्कसंगत थे। यदि उचित वैज्ञानिक विश्लेषण लागू किया जाता तो पूरी दुनिया को पूरी तरह से समझना सम्भव था। तर्कशक्ति और विज्ञान के उपयुक्त उपयोग किए जाने पर निरंतर विकास और प्रगति हो सकती थी।

कुछ प्रबोधन के विचारकों ने लोकप्रिय सम्प्रभुता और कानून के शासन पर भी जोर दिया। हालांकि कई दार्शनिकों को राजाओं और कुलीनों द्वारा संरक्षण दिया गया था, और उन्होंने राजतंत्र की संस्था को अस्वीकृत नहीं किया। वे शासकों के हाथों में बेलगाम शक्तियों की धारणा के खिलाफ थे, चाहे वे सम्राट हो या अन्य।

अपने समग्र रुझान में, प्रबोधन साम्राज्यवाद विरोधी था और कई विचारकों ने हिंसा और शोषण पर आधारित उपनिवेशिक शासन की कड़ी निंदा की। उनमें से कुछ ने, जैसे कि दिदरो, रेनाल, हर्डर और कंडोरसे ने औपनिवेशिक क्षेत्रों में यूरोपीय लालच, अहंकार, हिंसा और क्रूर व्यवहार की बहुत दृढ़ता से निंदा की।

प्रबोधन विचारक अपने समय की सत्ता की निरंकुश प्रकृति के खिलाफ थे और वे कानून के शासन की वकालत करते थे और शासकों के अन्दर सद्गुणों को पनपते देखना चाहते थे। हालांकि वे लोकप्रिय सम्प्रभुता में विश्वास करते थे लेकिन लोकतन्त्र या जनशक्ति में नहीं। उनके लिए, स्वतंत्रता 'केवल कानूनी रूप से गठित अधिकारियों की कानूनी कार्यवाहियों' में निहित थी (ब्लैक 1990: 214)। समानता को कानून के सम्मुख समानता के रूप में माना गया और सामाजिक या आर्थिक रूप में नहीं। वे सम्पत्ति को व्यक्तिगत अधिकार के रूप में मानते थे और विभिन्न वर्गों में समाज के विभाजन को स्वाभाविक मानते थे।

तर्क की प्रधानता, हठधर्मिता की सोच को अस्वीकृति, व्यक्तिगत समझ पर जोर, प्रगति का विचार, पूर्व आधुनिक विश्व की तुलना में आधुनिक विश्व की श्रेष्ठता, यह धारणा कि मानव प्रकृति हर जगह एक जैसी थी और उसके परिणामस्वरूप जन्मी सार्वभौमिकता प्रबोधन के सबसे महत्वपूर्ण विचार थे।

यद्यपि प्रबोधन विचारकों ने शक्तिशाली सत्ता विरोधी विचारों का प्रसार किया, परन्तु यह ज्यादातर बौद्धिक स्तर पर किया गया था। वे कार्यकर्त्ता और व्यवहारिक क्रांतिकारी नहीं थे और उन्होंने विद्रोहों का नेतृत्व नहीं किया। उन्होंने अपने विचारों को प्रसारित करने के लिए कलम, कागज और छापेखाने का इस्तेमाल किया। उनके संचार के माध्यम 'पत्र, अप्रकाशित पांडुलिपियाँ, पुस्तकें, पत्रिकाएँ, विवरणीकाएँ और उपन्यास, कविता, नाटक, साहित्यक और कला आलोचना और राजनैतिक दर्शन' थे (मैरीमेन 2010 : 316)।

तर्कसंगत और धर्म-निरपेक्ष विचार के पक्ष में कुछ व्यापक निश्चित निर्णय के बावजूद, प्रबोधन विचारक एक दूसरे से काफी महत्वपूर्ण तरीकों से भिन्न थे। इस प्रकार वॉल्तेयर, मॉन्टेस्क्यू और रूसो ऐसे दैववादी थे जो मानते थे कि भगवान प्राकृतिक मशीन के आदि प्रवर्तक के रूप में मौजूद थे। प्रकृति की इस विशाल मशीन और उसके मौलिक नियमों को स्थापित करने के बाद, हालांकि भगवान इससे अलग हो गये और उन्होंने मानवता के रोजमर्रा के जीवन में हस्तक्षेप नहीं किया। इस प्रकार प्रकृति के नियमों और मानव विश्व को प्रारम्भ करने के बाद, भगवान ने मनुष्यों को

उनके कर्मों और प्रगति के मार्गों को पूरा करने के लिए अकेला छोड़ दिया। दूसरी ओर दिदरो, हालबाख और हेल्वेशियस नास्तिक थे। यहाँ तक कि जिसे प्रबोधन का अन्तिम चरण वर्गीकृत किया जाता है उसमें भी हम प्रबोधन से जुड़े बुद्धिजीवियों में कई तरह की प्रतिक्रिया पाते हैं। इस प्रकार कंडोरसे ने जहाँ धर्म और राजनैतिक सत्ता पर एक उग्र रुख अपनाया, वहीं कांट इनके प्रति समझौतावादी थे। यहाँ तक कि विभिन्न राष्ट्रीय संदर्भों में अलग-अलग विचारकों द्वारा उपयोग किये जाने वाले विचारों और शब्दों के अलग-अलग अर्थ थे। इसी तरह, विभिन्न देशों में प्रबोधन से सम्बंधित विचार जिस मौलिक रूप में फ्रांस में उद्घोषित हुए थे, इटली या पौलेंड में वैसे नहीं रहे। एक अन्य स्तर पर, जबकि कई प्रमुख प्रबोधन विचारकों ने रैखिक और निरंतर प्रगति में विश्वास किया, वहीं डेविड ह्यूम जैसे कुछ ने इतिहास के एक चक्रीय दृष्टिकोण का समर्थन किया। रूसो ने सोचा था कि मानव समाज कई मायनों में प्रगति की बजाय पतनशील हुआ था।

हालांकि तर्कशक्ति और आलोचनात्मक जाँच-पड़ताल में विश्वास सभी प्रबोधन विचारकों के बीच सामान्य थे। तर्कशक्ति को लक्ष्य और जाँच-पड़ताल की पद्धति दोनों के रूप में पेश किया गया। यह माना जाता था कि तर्कशक्ति ने मनुष्यों की प्रकृति पर हावी होने और मानव समाज को प्रकृति को नियंत्रित करके मानो प्रगति में मदद की। तर्कशक्ति ने निर्धारित मानदंडों और स्थापित सत्ता के प्रति संशयवाद को बढ़ावा दिया और वस्तुनिष्ठता और उचित वैज्ञानिक विश्लेषण पर बल दिया। तर्कशक्ति ने चर्च और राज्य की स्थापित सत्ताओं के खिलाफ काम किया और प्रबोधन को एक उग्र धार प्रदान की। इसके साथ-साथ, हालांकि, इसने मनुष्यों और जानवरों के बीच एक स्पष्ट विभेद बनाने में मदद की और इसने उन सभी मनुष्यों को हाशिए पर धकेलने में मदद की जिनको विक्षिप्त, पागल या तर्कशक्ति से हीन माना जाता था। इसके अलावा, इसने उच्च तर्कशक्ति से भरपूर लोगों और देशों जैसे कि यूरोपीय लोगों और निम्न तार्किकता वाले उपनिवेशों के लोगों, काले लोगों, बर्बर और जंगली लोगों और गुलामों के बीच एक स्पष्ट विभेद को चिह्नित किया। एक विकसित तर्कसंगतता और इसलिए सामाजिक और राजनैतिक संगठन वाले आधुनिक यूरोपीय लोगों और सभी प्रकार के पूर्व आधुनिक लोगों के बीच भी विभेद किया गया।

हाल के दशकों में, प्रबोधन विचारधारा के किसी भी रैखिक विकास और एक समान चरित्र के बारे में सवाल उठाए गए हैं। यह तर्क दिया गया है कि यद्यपि प्रबोधन विचारकों ने स्पष्ट रूप से धर्म की तीखी आलोचना की थी, यह पता लगाना सम्भव है कि उनका हमला ज्यादातर स्थापित धर्म, विशेष रूप से कैथोलिक धर्म और पादरियों के खिलाफ था, ना कि धर्म के खिलाफ। वास्तव में प्रबोधन के विचारकों द्वारा ईसाई धर्म के खिलाफ भी बहुत कम प्रत्यक्ष हमले हुए थे। कुछ मामलों में, तर्क के कारण ईसाई धर्म के मूल्य और मान्यताएँ सुदृढ़ हुई थी। कभी-कभी दिव्य रहस्योद्घाटन और चमत्कारों का समर्थन करने के लिए भी तर्कशक्ति का उपयोग किया गया। इस अवधि के कई बुद्धिजीवियों ने लॉक के इस विचार को माना कि मनुष्य की स्थिति के बारे में एक तार्किक अभिमूल्यन से लोग ईसाई बनेंगे (ब्लैक, 1990: 210)। फिर भी, जबकि उनमें से अधिकांश धार्मिक विरोधी या ईसाई विरोधी नहीं थे, वे फिर भी आत्मा से सम्बन्धित मामलों के बारे में चितिंत नहीं थे। उनके सरोकार निश्चित रूप से सांसारिक और धर्म-निरपेक्ष थे।

प्रमुख प्रबोधन विचारकों में से किसी को भी, यहाँ तक कि फ्रांस में भी जहाँ उन्होंने सत्ताविरोधी आलोचना विकसित की, किसी भी लम्बी और गम्भीर दंडात्मक कार्यवाही का सामना नहीं करना पड़ा। अपने कई सत्ताविरोधी विचारों के बावजूद प्रबोधन विचारक समकालीन सम्राटों से अनुग्रह पाने के विचार के विरोधी नहीं थे। इस प्रकार वाल्तेयर, मांटेस्क्यू और दिदरो ने फ्रांसीसी रॉयल अकादमी की सदस्यता स्वीकार की थी। सभी ने प्रशा के 'प्रबुद्ध' सम्राट फ्रेडरिक महान और रूस की साम्राज्ञी कैथरिन की प्रशंसा की। कई प्रसिद्ध दार्शनिकों ने पैसे के साथ-साथ प्रतिष्ठा भी अर्जित की। उनमें से अधिकांश मध्यम स्तर की सम्पन्नता का जीवन जीते थे। उन्हें अनेक मामलों में सराहा गया और यहाँ तक कि और उनकी खुशामद भी हुई। उन्होंने अपने जीवन काल में प्रतिष्ठा हासिल की और अपने समय के कई निरंकुश शासकों को समझाकर प्रशासन के बारे में अपने विचारों को लागू करवाने की कोशिश की। अपने आलोचनात्मक रुख के बावजूद उनमें से अधिकांश सुधारक थे और क्रांतिकारी नहीं थे। राजशाही की उनकी आलोचना सीमित थी और यहाँ तक कि उनके कैथोलिक चर्च की उग्र आलोचना के कारण फ्रांस में उन्हें कम शत्रुता और कम जोखिम उठाना पड़ा जबकि स्पेन जैसे कठोर रूढ़िवादी देश में शायद यह ज्यादा होता। दूसरी ओर उनके दैववादी और चर्च विरोधी रुख जो फ्रांस में बहुत उग्र प्रतीत होते थे, शायद इंग्लैंड या हालैंड में उन्होंने उतनी धार ना हासिल की हुई होती।

स्कॉटिश प्रबोधन काल और नया आर्थिक विचार

'स्कॉटिश प्रबोधन' शब्द का इस्तेमाल स्कॉटलैंड (ब्रिटेन का भाग) के कई विचारकों के लिए किया जाता है, जिन्होंने प्रबोधन में बहुत बड़ा बौद्धिक योगदान दिया। डेविड ह्यूम, एडम स्मिथ और विलियम राबर्टसन् ऐसे प्रबोधन विचारकों में से थे। प्रबोधन में उनके सबसे महत्वपूर्ण योगदान में उनका राजनैतिक अर्थव्यवस्था पर जोर था। ह्यूम और स्मिथ ने कृषि या बहुमूल्य धातुओं सोने-चाँदी की बजाए दौलत प्राप्त करने के लिए वाणिज्य, विनिर्माण और तकनीकी नवाचार पर बल दिया। इसके अलावा इन्होंने प्रत्येक देश के विकास की सम्भावना की परिकल्पना की क्योंकि वाणिज्यिक सम्पदा सर्वदा बढ़ रही थी। समृद्ध बनने का मार्ग कम से कम सभी अपेक्षाकृत विकसित यूरोपीय देशों के लिए समान होगा। व्यापार और वाणिज्य के बढ़ने से विनिर्माताओं यहाँ तक कि भू-स्वामियों को निवेश के लिए अवसर और प्रोत्साहन मिलेगा। एडम स्मिथ ने वाणिज्यवादी व्यापारिक प्रथाओं की आलोचना की जो दबाव, एकाधिकार और बाजारों के नियंत्रण पर निर्भर थी। इसकी बजाए उन्होंने श्रेणियों और सरकार के नियन्त्रण से मुक्त व्यापार का समर्थन किया।

स्कॉटिश प्रबोधन के विचारकों ने रूसो की आधुनिक समाज की तीखी आलोचना का मजबूत विरोध किया। उनका तर्क था कि पूर्व आधुनिक समाज का आर्थिक जीवन स्वाभाविक रूप से अनिश्चित था और यह केवल जितना सम्भव हो उतनी स्वतंत्रता से आयोजित वाणिज्य और विनिर्माण ही सभी देशों और सभी वर्गों के आर्थिक सुधार के लिए दौलत का निर्माण करेगा। इस तरह के तर्क इतने प्रभावशाली साबित हुए कि एडम स्मिथ के *वेल्थ ऑफ नेशन्स* के बाद भी अधिकांश विचारकों और यहाँ तक कि नीति-निर्माताओं ने वाणिज्य को आधुनिक समाज की समझ के लिए महत्वपूर्ण मानना शुरू कर दिया। अब राजनैतिक अर्थव्यवस्था को समाज के सबसे महत्वपूर्ण और नये विज्ञान के रूप में स्वीकार किया गया, जिसका सार्वभौमिक अनुप्रयोग होगा। यह न केवल मानव समाज के ज्ञान के प्रति बल्कि उसकी भौतिक परिस्थितियों को सुधारने

की दिशा में भी प्रबोधन द्वारा किये गये महान योगदानों में से एक था। इसने वर्तमान विश्व में महान भौतिक प्रगति की सम्भावनाओं की पेशकश करने वाली दृष्टि दी जो अगली दुनिया में दुःख से मुक्ति के धार्मिक विचार को बहुत बड़ा झटका देती है। इसने धर्म और राज्य के साधारण पृथक्कन से कहीं अधिक व्यापक स्तर पर समाज के धर्म निरपेक्षीकरण को सम्भव बनाया। इसके अलावा मुक्त व्यापार के विचार ने व्यक्तिगत देशों की सीमाओं से परे एक बड़ी दुनिया का अनुमान लगाया जिसका दायरा वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय था।

बोध प्रश्न 1

1) प्रबोधन काल की सोच पर मुख्य प्रभावों की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) प्रबोधन के महत्वपूर्ण विचारों पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

9.6 प्रबोधन काल के कुछ महत्वपूर्ण विचारक

इस भाग में हम 'उच्च प्रबोधन' के कुछ महत्वपूर्ण फ्रांसीसी विचारकों के विचारों पर चर्चा करेंगे जिनके विचार आने वाले लंबे समय के लिए भावी पीढ़ी के लिए महत्वपूर्ण थे।

9.6.1 मांटेस्क्यू (1689-1755)

मांटेस्क्यू, जो एक फ्रांसीसी राजनैतिक और ऐतिहासिक विचारक थे, सबसे महत्वपूर्ण प्रबोधन विचारकों में से थे और जिनकी प्रसिद्ध रचना *द स्पिरिट ऑफ लॉज* (1748) को उच्च प्रबोधन की शुरुआत करने वाली माना जाता है। उनके मानव विकास के प्रति एक दृढ़ निर्धारणवादी विचार थे। अनेक देशों के अपने विश्लेषण के आधार पर, उन्होंने विभिन्न सरकारों के स्वरूप का निर्धारण करने में जलवायु और भूगोल की प्रधानता का तर्क दिया। इस प्रकार, एक गर्म और आर्द्र जलवायु ने निरंकुशता को जन्म दिया, समशीतोष्ण जलवायु ने विभिन्न रूपों में लोकतन्त्रों के विकास को प्रोत्साहित किया, जिनमें सबसे अधिक अनुग्रह प्राप्त संवैधानिक राजतन्त्र थे। इसके अलावा, उन्होंने यह भी तर्क दिया कि शासित क्षेत्र के आकार से भी बहुत अंतर पड़ता था। इस प्रकार एक बड़े क्षेत्र को केवल निरंकुशता के माध्यम से शासित किया जा सकता था, एक राजतन्त्र मध्यम आकार के क्षेत्र के लिए उपयुक्त था, जबकि एक

गणतन्त्र केवल एक छोटे से क्षेत्र में ही जीवित रह सकता था। यहाँ तक कि विभिन्न क्षेत्रों के लोग भी अलग-अलग थे। इस प्रकार, जो लोग ठंडी जलवायु में रहते थे वे ताकतवर, फुर्तीले और साहसी होते हैं, जबकि गर्म जलवायु में रहने वाले कमजोर, भावमय और अस्थिर थे उन्होंने संवैधानिक सरकार की ब्रिटिश प्रणाली की प्रशंसा की और राज्य के विभिन्न अंगों के बीच शक्तियों के पृथक्कन की वकालत की। उनके अनुसार, केवल संविधान के आधार पर शासन यह सुनिश्चित कर सकता था कि सार्वजनिक व्यवस्था और व्यक्ति की स्वतंत्रता सहअस्तित्व में रह सके। वह राजाओं की दैवीय उत्पत्ति और दैवीय अधिकारों में विश्वास नहीं करता था और तर्क देता था कि राजा की शक्ति लोगों से प्राप्त की गई थी और भगवान से नहीं। मांटेस्क्यू ने निरंकुश राजाओं की बेलगाम शक्तियों को प्रतिबंधित करने के लिए कुलीन वर्ग की तरफ देखा।

9.6.2 वॉल्तेयर (1694-1778)

वॉल्तेयर (फ्रांसुआ-मारी अरोये) सबसे लोकप्रिय प्रबोधन विचारक थे, जिन्हें बहुत व्यापक रूप से पढ़ा गया था। वे बहुत परिहासयुक्त और व्यंग्यात्मक थे और चर्च और पादरियों पर काफी शक्ति से प्रहार करते थे। वे एक समान मानव-प्रकृति और सार्वभौमिकता में विश्वास करते थे। उन्होंने मांटेस्क्यू के निर्धारणवाद की आलोचना की। उनके अनुसार, 'सभी सभ्य राष्ट्रों में, भारत से शुरू करके यूरोप के अन्त तक' सब जगह एक समान सत्य था। लेकिन उन्होंने यह भी सोचा कि 'सभ्य' और 'गैर-सभ्य' समाज के बीच स्पष्ट अंतर थे जबकि एशियाई और यूरोपीय समाज सभ्य थे, अफ्रीकी और पूर्व आधुनिक अमेरिकी समाज असभ्य थे। वॉल्तेयर का सबसे कठोर हमला फ्रांस में प्रचलित धर्म की व्यवस्था के खिलाफ था जिसमें चर्च में बहुत सारी शक्तियाँ केन्द्रित थी। हालांकि, उन्होंने यह कहते हुए कन्फ्युशियशवाद और हिन्दू धर्म की प्रशंसा की कि उनमें मानव जाति के लिए प्रासंगिक सत्य निहित थे। उनका यह भी मानना था कि समाज में व्यवस्था बनाए रखने और लोगों को आशा देने के लिए तर्क पर आधारित एक स्वाभाविक धर्म आवश्यक था। ऐसी किसी भी व्यवस्था के बिना अव्यवस्था और अराजकता होगी। उन्होंने एक इस प्रकार की सहिष्णुता का समर्थन किया जो सांसारिक और गैर-धार्मिक हो और जिससे 'समाज के भौतिक और नैतिक कल्याण' को संरक्षित किया जा सके और कट्टरता और हठधार्मिता को खारिज किया जा सके।

वह ब्रिटेन के एक बड़े प्रशंसक भी थे और उन्होंने इसकी संवैधानिक सरकार, स्वतन्त्र प्रेस, धार्मिक सहिष्णुता और वाणिज्यिक कौशल के लिए प्रशंसा की। मांटेस्क्यू के विपरीत, हालांकि, वॉल्तेयर ने सामान्य लोगों को कुलीन लोगों के उत्पीड़न से बचाने के लिए केन्द्रीयकृत राजतन्त्र का पक्ष लिया।

9.6.3 दिदरो (1713-1784)

डेनिस दिदरो एक चिरस्मरणीय ज्ञानकोष (जो डी. अलेम्बर्ट के सहयोग से और 1751 में शुरू किया गया) तैयार करने के लिए प्रसिद्ध हैं जो प्रबोधन का सबसे परिचित मील का पत्थर बन गया। इसमें 60,000 लेख और 2885 चित्र शामिल थे और यह 28 खंडों में था। इसने दुनिया भर के सभी ज्ञान को इकट्ठा करने, संगठित करने और वर्गीकृत करने का दावा किया। फ्रांस के लगभग सभी प्रमुख प्रबोधन विचारकों ने इसके लिए लेख का योगदान दिया। अपने आकार और मूल्य के बावजूद, विश्व

ज्ञानकोष मध्यम वर्गों में काफी लोकप्रिय हो गया और यूरोप के लगभग सभी देशों में पहुँच गया। इसने प्रबोधन को सत्ता-विरोधी रुख प्रदान किया और इसने फ्रांसीसी अधिकारियों को इस कदर क्रोधित किया कि इसके एक खंड पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और कुछ समय के लिए दिदरो को जेल में डाल दिया गया।

1765 में इसे पूरा करने के लिए दिदरो ने कई वर्षों तक काम किया और उन्होंने खुद लगभग 5,000 लेखों का योगदान दिया। अपने लेखन के माध्यम से, उन्होंने फ्रांस और पश्चिम में आमतौर पर प्रचलित राय के खिलाफ एक उग्र रुख अपनाया। उन्होंने दृढ़तापूर्वक तर्कसंगतता का और प्रकृति के नियमों पर जोर दिया। दिदरो ने महिलाओं के उत्पीड़न और शोषण और पुरुष वर्चस्व की व्यवस्था की आलोचना की। उन्होंने दासता की निन्दा की और मनुष्यों के बीच कानूनी समानता की वकालत की। दिदरो का रुख और विश्व ज्ञानकोष में अपनाया गया सामान्य रुख राजतन्त्र के खिलाफ था और प्रतिनिधि सरकार के समर्थन में था, जो कभी-कभी लोकप्रिय सम्प्रभुता के रूप में एक गणतन्त्र की माँग के करीब आ रहा था।

9.6.4 रूसो (1712-1778)

जीन-जॉक रूसो को प्रबोधन के अन्तर्गत एक अस्पष्ट स्थान प्रदान किया गया क्योंकि वह तर्क और भावनाओं दोनों पर समान जोर देते थे। उनका मानना था कि स्वतःस्फूर्ति और मूल प्रवृत्ति मानव स्वभाव का उतना ही हिस्सा थी जितना कि तर्कसंगतता, व्यवस्था और कानून। कई अन्य लोगों के विपरीत, उन्होंने कहा कि इतिहास एक समान और रैखिक प्रगति का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। उनका मानना था कि समाज स्वतंत्रता से गैर-स्वतन्त्रता, सापेक्ष समानता से असमानता, और चारागाही कृषि व्यवस्था से शहरीकरण, शहरों की वृद्धि, भीड़-भाड़ और नैतिकता के पतन की दिशा में बदल गया था। रूसो ने आधुनिक समाज की और उसके नैतिक पतन की तीखी आलोचना पेश की। आर्थिक स्तर पर उन्होंने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच एक संतुलित विकास की वकालत की ताकि गाँव से शहरों तक अत्यधिक आबादी का एकतरफा हस्तानांतरण ना हो।

रूसो का मानना था कि आदिम समाज सामंजस्यपूर्ण, गैर-पदानुक्रमित, सरल और इसलिए आदर्श था। दूसरी ओर, आधुनिक सभ्यता भ्रष्ट, रुखी, दौलत के लिए पागल और गैर-समतावादी थी। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *द सोशल कान्ट्रेक्ट* (1762) में उन्होंने यह रेखांकित करने का प्रयास किया कि समकालीन समाजों में, लोग अपनी सुरक्षा के लिए और न्याय पाने के लिए एक-दूसरे के साथ जुड़ते हैं, लेकिन फिर भी स्वतंत्र व्यक्ति बने रहते हैं। हॉब्स और लॉक की तरह, रूसो ने भी सोचा था कि एक 'सामाजिक अनुबन्ध' हुआ था, जहाँ मुक्त रूप में जन्में व्यक्ति अपने प्राकृतिक अधिकारों का एक समुदाय, व्यवस्था और सुरक्षा को पाने के लिए 'सामान्य इच्छा' के प्रति आत्मसमर्पण करते हैं। हालांकि, अपने पूर्ववर्तियों के विपरीत, रूसो ने कल्पना की कि अधिकारों का यह आत्मसमर्पण एक निरंकुश राज्य या वंशवादी शासक के लिए नहीं बल्कि नागरिक शासकों के लिए था जो बराबर थे और अन्य के साथ एक ही स्तर पर थे। कुछ अन्य प्रबोधन विचारकों जैसे वॉल्तेयर के विपरीत, रूसो ने वंशवादी शासकों के भविष्य के प्रबोधन में यकीन नहीं किया। उनके लिए, सम्प्रभुता लोगों में निहित थी और राजाओं में नहीं। इसके अलावा, सम्प्रभुता का कोई दिव्य अनुमोदन नहीं था।

9.6.5 टर्गो (1727-1781)

ऐन रॉबर्ट जॉक टर्गो एक फ्रांसीसी अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने फ्रांसीसी सरकार में मंत्री के रूप में भी कार्य किया था। वह प्रगति के विचार के शुरुआती और सबसे मजबूत प्रस्तावकों में से एक थे। यह प्रगति दिव्य की बजाय, रैखिक, पूरी तरह से धर्म-निरपेक्ष और मानव-उन्मुख होनी थी। उनकी सार्वभौमिक सोच के अनुसार, दुनियाभर के समाज रैखिक और प्रगतिशील विकास के समान मार्ग का अनुसरण करेंगे। इस अर्थ में, हर समाज में प्रगति अपरिहार्य थी। प्रगति के तीन चरण होंगे : शिकार से लेकर चारागाही से कृषि तक। पहले चरण में, तर्क की बजाए आवेग सर्वोच्च होंगे और मानव समाज बर्बर अवस्था में होगा। यह चरण संस्कृति के निर्माण के लिए उपयुक्त नहीं था। अगले चरण में, समाज समृद्ध हुआ और संचार में वृद्धि हुई लेकिन, अत्यधिक गतिशीलता के कारण, बड़े पैमाने पर लोग सामान्य सम्बन्ध विकसित नहीं कर सके और कोई रिकार्ड नहीं रखा जा सका। अन्त में, कृषि के आने के साथ स्थिर जीवन और अधिशेष के उत्पादन के साथ सभ्यता का उदय हुआ और मानव संस्कृति ने एक उच्च रूप ले लिया। यह वह समय था जिसमें, टर्गो के अनुसार, प्रगति एक वास्तविक और लगभग अपरिहार्य सम्भावना बन गई। टर्गो ने जोर दिया कि प्रगति विशिष्ट रूप से मानवीय थी और कई पीढ़ियों के माध्यम से ज्ञान, स्मृति और लिखित रिकार्ड के संचय के कारण सम्भव थी। उन्होंने मानवीय जगत को प्राकृतिक जगत से अलग करके देखा। जबकि प्रकृति में गति चक्रीय है, मानव जगत में यह ज्यादातर रैखिक, सामूहिक और आधुनिक विज्ञान के बाद अपरिहार्य है। इतिहास का पहिया पीछे नहीं मुड़ सकता था : यह आगे और ऊपर की ओर गति करने के लिए बाध्य है।

9.7 प्रबोधन काल की विरासतें

प्रबोधन की विरासतें इतनी गहरी और व्यापक हैं कि आज भी हम यह मानते हैं कि हम एक उत्तर-प्रबोधन विश्व में जी रहे हैं, एक ऐसी दुनिया जो व्यापक रूप से प्रबोधन की अवधि के दौरान उत्पन्न विचारों के रंग में रंगी है। इनमें से सबसे पहला और महत्वपूर्ण विश्वास परम्परा और अन्धविश्वास के विपरीत तर्कशक्ति में विश्वास है। विभिन्न परिघटनाओं की आलोचनात्मक समीक्षा में विश्वास प्रबोधन की एक स्थाई विरासत रही है। मानव क्षमता में, विज्ञान में और प्रगति में विश्वास अभी भी जारी है। यह विचार कि तर्कसंगत मनुष्य बिना किसी दिव्य सत्ता को अपील किये स्वयं अपने भाग्य को आकार देने में सक्षम है, प्रबोधन से ही प्राप्त हुआ है। प्रबोधन ने इस विचार को सामने रखा कि विश्व में कहीं भी, सभी मनुष्यों के पास समान रूप से तर्कशक्ति और बौद्धिक क्षमता है, भले ही वे सभी विकास के एक समान चरण में नहीं थे। इसके अलावा, प्रबोधन का लोकप्रिय सम्प्रभुता का विचार बहुत व्यापक और गहरा हो गया है। आज की दुनिया में मानव स्वतन्त्रता एक मुख्य मूल्य बन गया है और गैर-स्वतंत्रता के सभी रूपों जैसे दासता और दासत्व आदि की आलोचना की जाती है। प्रबोधन ने व्यापक रूप से तर्कसंगतता, व्यक्तिवादी, धर्म-निरपेक्ष और प्रगतिशील दुनिया के विचारों को उत्पन्न किया जिनमें अधिकांश मानव अब भी विश्वास करते हैं। आधुनिक विश्व, कम से कम अपनी सोच में प्रबोधन की विरासत है। अधिकांश विद्वान अब आधुनिकता के विभिन्न पहुलओं को प्रबोधन के साथ जोड़ते हैं। अपनी कुछ अभिव्यक्तियों में, प्रबोधन को विभिन्न प्रकार के आधुनिक मूल्यों से जोड़ा जा सकता है जैसे कि विश्व-बंधुत्व, सार्वभौमिकता, तर्कवाद, वैज्ञानिक पद्धति में विश्वास और निरंतर

प्रगति, धर्म-निरपेक्षता, सहिष्णुता, मानव अधिकार, लोकतंत्र और यहाँ तक कि लैंगिक समानता।

दूसरी ओर, कभी-कभी चेतन रूप से और कभी अनजाने में भी प्रबोधन ने दुनिया के बाकी हिस्सों पर आधुनिक यूरोपीय देशों की सर्वोच्चता को मजबूत किया। विकास के चरणों के प्रबोधन के सूत्र ने गैर-यूरोपीय लोगों को निचले चरणों में धकेल दिया जहाँ से उन्हें अधिक विकसित यूरोपीय देशों द्वारा ही बचाया जाना था। आधुनिक यूरोपीय मूल्यों को दुनिया के बाकी हिस्सों के लिए मानदंड के रूप में आगे बढ़ाया गया था और गैर-यूरोपीय लोगों को उनके अंधविश्वासों और पुजारियों और राजाओं के बंधन से मुक्त कराना और उन्हें शिक्षित करना यूरोपीय लोगों की जिम्मेदारी के रूप में माना गया था। इस प्रकार, जबकि वे औपनिवेशिक लूट और हिंसा के माध्यम से शोषण के आलोचक थे, तब भी कई प्रबोधन विचारकों का मानना था कि उपनिवेशों में यूरोपीय लोगों को एक भूमिका निभानी थी। यहाँ तक कि कडोंरसे जैसे मूलगामी प्रबोधन विचारक ने औपनिवेशिक लोगों के लिए सुझाव दिया कि 'हम उनके लिए उदारचित, मुक्तिदाता बनेंगे। रूसो ने कहा कि यूरोपीय लोगों को 'उन्हें स्वतन्त्र होने के लिए बाध्य करना चाहिए'। इस तरह के कथनों ने औपनिवेशिक क्षेत्रों में बाद के साम्राज्यवादी 'सभ्यता प्रसार मिशन' के लिए पर्याप्त औचित्य प्रदान किया। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि कुछ मामलों में प्रबोधन ने एक विरोधाभाषी विरासत छोड़ी जो मुक्ति और वर्चस्व दोनों को प्रवाहित करती है – अन्धविश्वास, पुरोहितवाद और निरंकुशता से मुक्ति, लेकिन आधुनिक यूरोपीय मूल्यों, आधुनिक विज्ञान, और यदि आवश्यक हो, आधुनिक यूरोपीय शासकों द्वारा वर्चस्व को।

बोध प्रश्न 2

1) समकालीन दुनिया के लिए प्रबोधन की विरासत क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) दो महत्वपूर्ण प्रबोधन विचारकों के विचारों पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

9.8 सारांश

प्रबोधन को बौद्धिक स्तर पर आधुनिक विश्व का अग्रदूत माना जाता है। तर्कसंगत सोच और व्यक्ति पर इसका जोर पारम्परिक और धार्मिक हठधर्मिता और अन्धविश्वासों

से दूर हटने का मार्ग प्रशस्त करता है। प्रकृति और समाज के बारे में अपने स्वयं के विचारों को आगे बढ़ाने के लिए प्रबोधन विचारकों ने अपने से पहले के विज्ञान, तर्कवाद और अनुभववाद के बौद्धिक आन्दोलनों से अपने विचार प्राप्त किये। ये विचारक, जिन्हें दार्शनिक के रूप में जाना जाता है, उन्होंने अवलोकन, प्रयोग और विश्लेषण की वैज्ञानिक पद्धति में समाज का अध्ययन करने में यकीन किया और दिव्य रहस्योद्घाटन और चमत्कारों की वैधता पर संदेह किया। व्यक्तिवाद, तर्कवाद, सार्वभौमिक, सहिष्णुता और उदारवाद प्रबोधन की कुछ महत्वपूर्ण विरासत थी।

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 9.3 देखें।

2) भाग 9.5 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 9.7 देखें।

2) भाग 9.6 देखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 अमेरिकी क्रांति में राजनीतिक और आर्थिक मुद्दे*

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 क्रांति की पृष्ठभूमि : अमेरिका में औपनिवेशीकरण की प्रकृति

10.3 अमेरिकी क्रांति में राजनैतिक और आर्थिक पहलुओं का अंतर्फलक

10.4 सप्तवर्षीय युद्ध के परिणाम

10.5 अमेरिका में ब्रिटिश राज और उपनिवेशों के मध्य बढ़ती दुर्भावना

10.6 औपनिवेशिक प्रतिरोध का विस्फोट : स्टाम्प अधिनियम के प्रति प्रतिक्रिया

10.7 टाउनशेंड अधिनियम और विरोध की निरंतरता

10.8 बोस्टन नर-संहार, बोस्टन टी पार्टी और असहनीय अधिनियम

10.9 क्रांतिकारी युद्ध और स्वतंत्रता की घोषणा के मार्ग पर

10.10 सारांश

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप अमेरिकी क्रांति के बारे में निम्नलिखित सीखेंगे :

- अमेरिका में औपनिवेशीकरण की प्रकृति,
- अमेरिकी क्रांति में राजनीतिक और आर्थिक कारकों की भूमिका,
- ब्रिटिश राज और अमेरिकी उपनिवेशों के बीच शत्रुता की प्रकृति, और
- अमेरिकी उपनिवेशों में लोगों के प्रतिरोध और विरोध की प्रकृति।

10.1 प्रस्तावना

अमेरिकी विश्व और अटलांटिक इतिहास में एक परिवर्तनकारी घटना के रूप में अमेरिकी क्रांति हमेशा लोगों के लिए रुचि का विषय रही है। इस पर काफी मात्रा में साहित्य लिखा गया है। कुछ विद्वानों ने इसे संयुक्त राज्य अमेरिका के गठन की सबसे महत्वपूर्ण घटना का अग्रगामी माना है। इसलिए यह अमेरिकी राष्ट्रवाद और अमेरिकी राज्य के विकास में एक महत्वपूर्ण उपकथा है। कुछ अन्य विद्वानों ने अमेरिकी क्रांति को क्रांतियों के एक बड़े युग की एक कड़ी के रूप में देखा जो आधुनिक विश्व को जन्म देने वाली महत्वपूर्ण घटना के रूप में वैश्विक संदर्भों में विकसित होती है और जिसके वैश्विक परिणाम होते हैं। अमेरिकी क्रांति और स्वतंत्रता संग्राम की अधिकांश घटनाएँ भलीभाँति ज्ञात हैं। लेकिन इसकी व्याख्याएँ अलग-अलग की गई हैं। उदारवादी इतिहासकारों ने अमेरिकी क्रांति को सामाजिक-आर्थिक

* इकाई लेखकः प्रो. श्रीकृष्ण

परिणामों के बजाय मुख्य रूप से राजनीतिक परिणामों के रूप में देखा। प्रगतिशील इतिहास लेखन फ्रांसीसी और रूसी क्रांतियों के समान, अमेरिकी क्रांति को एक व्यापक सामाजिक-आर्थिक उथल-पुथल के रूप में देखता है, न कि केवल एक राजनीतिक विद्रोह के रूप में। जो भी व्याख्या हम स्वीकार करें, इस घटना के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। स्वतंत्रता की उद्घोषणा के निहित आदर्श, जिसको सभी मनुष्यों के अहरणीय अधिकारों के रूप में प्रतिस्थापित किया गया, ने अमेरिका और अमेरिका के बाहर भी वातावरण को उत्तेजित कर दिया था। संयुक्त अमेरिका के एक संस्थापक, थॉमस पेन ने भी फ्रांसीसी क्रांति में भाग लिया था। बाद में उन्नीसवीं सदी में, यूरोप के बहुत से क्रांतिकारी अमेरिकी क्रांति के उदाहरणों से प्रभावित हुए। इसने मध्य और दक्षिण अमेरिका के स्पेन और पुर्तगाली उपनिवेशों में लोगों को विद्रोह करने और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये प्रोत्साहित किया। अमेरिकी क्रांति की मुख्य उपलब्धि थी कि इसने एक गणतंत्र की नींव रखी हालांकि यह गणतंत्र पूरी तरह लोकतांत्रिक नहीं था। इसमें वोट देने का अधिकार सीमित था। अश्वेतों को, जो अधिकांश दास थे, अमेरिकी इंडियन मूल के निवासियों और स्त्रियों को मतदान का अधिकार नहीं था। सभी राज्यों के चुनाव सम्बंधी कानूनों में बहुत वर्षों तक सम्पत्तिवान वर्ग के पुरुषों को वरीयता मिली। लेकिन लोकतंत्र की दिशा में प्रगति शुरू हो गई थी।

10.2 क्रांति की पृष्ठभूमि : अमेरिका में औपनिवेशीकरण की प्रकृति

1607 में एक अंग्रेजी व्यापारिक कम्पनी, लंदन की वर्जीनिया कम्पनी ने जेम्सटाउन में उत्तरी अमेरिका में पहली स्थायी बस्ती शुरू की थी। इसमें बसने वालों का जीवन आसान नहीं था। कठोर जलवायु, जंगली अदम्य भूमि के अलावा यहाँ बसने वालों को बीमारियों, भूखमरी और मूल निवासियों की घोर शत्रुता का भी सामना करना पड़ा था। इस उपनिवेश की सफलतापूर्वक स्थापना कोई छोटी उपलब्धि नहीं थी। वर्जीनिया कम्पनी ने एक शाही चार्टर के तहत काम किया जिसे किंग जेम्स द्वारा प्रदान किया गया था। इसमें सबसे प्रथम बसने वाले निवासियों को आश्वासन दिया गया था कि उनको वे सभी स्वतंत्रताएँ, अधिकार और प्रतिरक्षाएँ प्राप्त होंगी जो इंग्लैंड में पैदा हुए और रहने वाले लोगों को प्राप्त थी। यूरोप से आकर बसने वाले निवासियों के लिए मूल-निवासियों की शत्रुता का एक प्रमुख कारण सम्पत्ति के बारे में उनका दृष्टिकोण था जिसे आप पाठ्य-पेटी 1 में देख सकते हैं।

पाठ्य-पेटी-1

अमेरिकी मूल निवासियों का परिप्रेक्ष्यः ''किसी भी जन जाति को अजनबियों को और एक दूसरे को बेचने का अधिकार नहीं है ——————— एक देश को बेचें! फिर वायु, महान समुद्र और साथ ही साथ पृथ्वी को क्यों नहीं बेचते? क्या महान आत्मा ने उन सभी को अपने बच्चों के उपयोग के लिए नहीं बनाया?''

यूरोपीय लोगों का परिप्रेक्ष्य : ''सम्पत्ति का अधिकार हमारी प्राकृतिक इच्छाओं पर आधारित है, उन साधनों पर आधारित है, जिनके साथ हम इन इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए सम्पन्न हैं, और अन्य संवेदी मनुष्यों के समक्ष अधिकारों का उल्लंघन किये बिना उन साधनों द्वारा हम प्राप्त करते हैं''।

वर्जीनिया कम्पनी विफल हो गई और जेम्सटाउन 1623 में (ब्रिटिश राज के स्वामित्व में) एक शाही उपनिवेश बन गया। हालांकि, अमेरिका में उपनिवेशों के कार्य-संचालन और उनकी व्यवस्था से यह साफ झलकता है कि कैसे हमारे अपने उपनिवेशवाद के अनुभव से अलग, उपनिवेशवाद की प्रकृति अमेरिका में कितनी भिन्न थी। वर्जीनिया कम्पनी ने अमेरिका में बसने वाले उपनिवेशवादियों को अपनी स्वयं की भूमि (सम्पत्ति के स्वामित्व) की अनुमति दी और हाउस ऑफ बर्गेस नाम की एक संस्था का निर्माण भी किया। यह चुने हुए प्रतिनिधियों का एक समूह था जिसे उपनिवेश के लिए निर्णय लेने और कानून पारित करने का अधिकार था (यानि एक प्रकार का स्वशासन बसाए गये लोगों को दिया गया था) और स्वभाविक रूप से जब सम्राट ने हॉउस ऑफ बर्गेस को समाप्त किया, तब उन्होंने उसका विरोध किया था।

1760 तक, इंग्लैंड और स्कॉटलैंड ग्रेट ब्रिटेन के साम्राज्य में एकजुट हो गये थे और उत्तरी अमेरिका में उनकी बस्तियाँ मातृदेश के साथ मजबूत सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्धों के साथ 13 उपनिवेशों के रूप में पनप रही थी। प्रत्येक उपनिवेश को एक निश्चित मात्रा में स्वशासन भी था। ग्रेट ब्रिटेन और उसके अमेरिकी उपनिवेशों को जोड़ने वाले कई तरह के सम्बंध थे। इन उपनिवेशों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है –

1) **न्यू इंग्लैंड के उपनिवेश** : न्यू हैम्पशायर, मैसाचुसेटस, रोड द्वीप, कनेक्टिकट उनमें आते थे जिनका गठन ज्यादातर धार्मिक असम्मति वाले उन लोगों ने किया था जो मौजूदा रूढिवादी दृष्टिकोण से असहमत थे। उन उपनिवेशों में बसे लोग अपेक्षाकृत धनी, कुशल और शिक्षित थे जो शहरों और कस्बों में आधारित थे। इन उपनिवेशों की अर्थव्यवस्था जीविका वाली अर्थव्यवस्था थी जो केवल शहरी केन्द्रों के गुजारे के लिए पर्याप्त उत्पादन करती थी। वे मत्स्य-पालन, फर का व्यापार, लोहे और लकड़ी के कार्यों और जहाजरानी में संलग्न थे। यहाँ बड़े बागान खेत नहीं थे और इसलिए यहाँ दासता की कोई जरूरत नहीं थी। वे स्वशासित थे और उन्होंने इंग्लैंड से अलग अपने कानून बनाए।

2) **मध्य क्षेत्र के उपनिवेश** : न्यूयॉर्क, न्यू जर्सी, पैनसिलिवानिया और डेलावेयर थे जो मूल रूप से डच निवासियों द्वारा स्थापित थे लेकिन बाद में ये इंग्लैंड द्वारा विजित कर लिए गये। ये उपनिवेश समृद्ध मिट्टी और हल्की सर्दियों के साथ खेती के लिए उत्तम थे लेकिन दास श्रम पर आधारित नहीं थे। यहाँ गरीब अप्रवासी भी समय बीताने के साथ धनी जमींदार बन गये। यहाँ के मुख्य संसाधन रोयेदार खाल के बने वस्त्र, मवेशी, अनाज, तम्बाकू, लोहा, जहाज और इमारती लकड़ी थे। ये उपनिवेश इंगलिश क्वेक्र्स, जर्मन लूथरवादी और फ्रेंच प्रोस्टैंन्ट धर्म मानने वालों के मिल जाने से धार्मिक और जातीय विविधता को प्रदर्शित करते थे।

3) **दक्षिणी उपनिवेश** : इनमें मैरीलैंड, वर्जीनिया, उत्तरी और दक्षिण कैरोलिना और जार्जिया थे। ये मुख्यतया ग्रामीण उपनिवेश थे जो तम्बाकू और चावल उद्योग पर आधारित थे। उपजाऊ मिट्टी पर वर्षभर बड़े-बड़े खेतों में कृषि के लिए श्रम-गहन तकनीकों की आवश्यकता होती थी। इनको दासों या गिरमिटिया नौकरों की जरूरत थी, जो लोग अमेरिका आने की मुफ्त सुविधा के बदले बिना भुगतान एक निर्धारित समय के लिए काम करते थे। 2,35,000 अफ्रीकी दासों में

से लगभग 68% दक्षिण में रहते थे और पूरी दक्षिण की आबादी का लगभग आधा हिस्सा बनाते थे लेकिन यहाँ भी धार्मिक उत्पीड़न नहीं था।

उपनिवेशों के अमीर लोग जैसे कि जॉर्ज वाशिंगटन, व्यापार करने के लिए अपने एंजेटों के रूप में ब्रिटिश व्यापारिक कम्पनियों का उपयोग करते थे। आर्थर ली जैसे प्रमुख परिवारों के युवा अपनी शिक्षा समाप्त करने के लिए ग्रेट ब्रिटेन गए। औपनिवेशिक चर्चों को उन पादारियों का लाभ मिला जो ग्रेट ब्रिटेन में शिक्षित थे। उपनिवेशों के कई प्रतिभाशाली पुरुषों जैसे कि पेंसिल्वेनिया के बेजामिन फ्रैंकलिन, मैसाचुसेटस के जेम्स ऑटिस और वर्जीनिया के पीटन रैडाल्फ आदि ने नियुक्त अधिकारियों के रूप में ब्रिटिश शासन की सेवाएँ की। फिर भी 1760 के बाद इन मजबूत सम्बंधों के उखड़ने का क्या कारण था? 1775 के बाद अमेरिकी उपनिवेशवादियों के द्वारा अपने मातृ-देश के विरुद्ध विद्रोह करने के क्या कारण रहे? हालांकि उस समय ज्यादातर लोगों का यह ज्ञात नहीं था, पर 1760 से शुरू होने वाली आर्थिक-राजनैतिक शक्तियाँ ऐसी थीं जो अटलांटिक सागर के दोनों तरफ ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिकी उपनिवेशों में उनके दीर्घकालीन सम्बंधों के पुनर्मूल्यांकन करने के लिए मजबूर कर रही थी।

10.3 अमेरिकी क्रांति में राजनैतिक और आर्थिक पहलुओं का अंतर्फलक

अमेरिका में उपनिवेशों की स्थापना ने मातृ-देश में अतिरिक्त जनसंख्या के लिए एक निर्गम द्वार प्रदान किया, वाणिज्यवाद के आर्थिक सिद्धांत के तहत, उपनिवेश और उनकी अर्थव्यवस्थाएँ ब्रिटेन के जहाजरानी और वाणिज्यिक हितों को ही प्रोत्साहन देती थीं। इसके चलते तम्बाकू, लकड़ी और चीनी जैसे उत्पादों का व्यापार बढ़ा था। उपनिवेशों को कुछ हद तक स्वायत्तता प्रदान करने के बावजूद, इस युग की वाणिज्यवादी सोच का यह मानना था कि उपनिवेश मातृ-देश के आर्थिक लाभ के लिए होने चाहिए। इसलिए ब्रिटेन ने शुरू से इनके व्यापार पर प्रतिबंध लगाने की कोशिश की। फिर भी ऐसे साधन और तरीके थे जिनके द्वारा अमेरिकी उपनिवेश और उनके व्यापारी इन व्यापारिक नियंत्रणों से बच निकलते थे। नौपरिवहन अधिनियम, जो इंग्लैंड द्वारा अपने लाभ की गारंटी देने के लिए पारित किए गए कानून थे, उन्होंने अमेरिकी उपनिवेशों में इंग्लैंड के खिलाफ पहले असंतोष का बीज बोया। सत्रहवीं सदी के नौपरिवहन अधिनियम इंग्लैंड द्वारा अपने लाभ को गारंटी देने वाले कानूनों की एक श्रृंखला थी, इन कानूनों के तहत, सभी उत्पादों को अंग्रेजी जहाजों पर या अंग्रेजी उपनिवेशों में बने जहाजों पर ही ले जाना पड़ता था। उन्होंने केवल अंग्रेजी बदंरगाहों के माध्यम से उपनिवेशों के लिए यूरोपीय आयातों की अनुमति दी और अधिकारियों द्वारा उन सभी औपनिवेशिक उत्पादों पर कर लगाया जाता था जो इंग्लैंड को नहीं जाते थे। अधिनियमों के प्रावधानों से बचने के लिए व्यापक पैमाने पर तस्करी और समुद्री-दस्युता फैली।

सप्तवर्षीय युद्ध (1756-1763), ग्रेट ब्रिटेन और उसके सहयोगियों का फ्रांस और उसके सहयोगियों के गठबंधन के विरुद्ध युद्ध था। इसके परिणामस्वरूप अमेरिका में ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र का विस्तार हुआ। इन नये औपनिवेशिक अधिकृत क्षेत्रों के प्रशासन को वित्तीय पोषण प्रदान कराना ब्रिटिश सरकार के लिए एक महत्वपूर्ण समस्या थी। युद्ध एक काफी महँगा मामला था और सप्तवर्षीय युद्ध के अंत में, इंग्लैंड का राष्ट्रीय ऋण

122 मिलियन पौंड से अधिक हो चुका था और इस ऋण के वार्षिक ब्याज का भुगतान ही लगभग 4.5 मिलियन पौंड बैठता था। ब्रिटेन की वित्तीय परेशानियाँ इस वजह से और बढ़ जाती हैं कि घरेलू स्तर पर युद्ध के बाद युद्ध के दौरान बढ़ाए गये करों में राहत के स्वर इंग्लैंड में उठ रहे थे। अमेरिकी उपनिवेशों से अधिक राजस्व जुटाने और उन पर और उनकी अर्थव्यवस्थाओं पर कड़ा नियंत्रण स्थापित करने के लिए कई प्रयास हुए। सप्तवर्षीय युद्ध के मद्देनजर ब्रिटेन द्वारा लगाए गए आर्थिक और प्रशासनिक उपायों के विरोध से अमेरिकी औपनिवेशिक प्रतिरोध को राजनैतिक अभिव्यक्ति मिली। इसकी अभिव्यक्ति हमें 'प्रतिनिधित्व के बिना कराधान नहीं' के नारे में मिलती है जिसने अमेरिकी क्रांतिकारियों को राजनैतिक न्यायसंगतता प्रदान की। 1767 में, सभी उपनिवेशों में देशभक्त व्यापारी गैर-आयात समझौते कर रहे थे। दूसरे शब्दों में, उन्होंने मातृ-देश में उत्पादित उत्पादों का बहिष्कार करने की योजना बनाई विशेंषकर ऐसे उत्पादों को जिन पर उपनिवेशों की सहमति के बिना कर लगाए जा रहे थे। यह विचार नया भी था और शानदार भी। यदि देषभक्त व्यापारी सफल होते तो उसका मतलब होता कि अमेरिकी व्यापारियों के साथ व्यापार से लाभान्वित होने वाले अंग्रेजी व्यापारियों की समृद्धि बुरी तरह प्रभावित होती। देशभक्तों का मानना था कि अगर उपनिवेशों से राजस्व नहीं मिलेगा तो अंग्रेज व्यापारी स्वयं टाउनशेन्ड अधिनियमों को निरस्त करने और उपनिवेशों के साथ मुक्त व्यापार को फिर से स्थापित करने के लिए ब्रिटिश संसद पर दवाब डालेंगे। जॉन डिकिंसन ने बारह पत्रों की एक श्रृंखला लिखी और उन्हें *फिलाडेल्फिया से एक किसान के पत्र* नाम से प्रकाशित करवाया। इन पत्रों में डिकिंसन ने उन करों की असंवैधानिकता के खिलाफ लिखा जो ब्रिटिश संसद उपनिवेशों पर लगा रही थी। उन्होंने इस तथ्य का हवाला दिया कि करों से प्राप्त राजस्व से शाही अधिकारियों के वेतन का भुगतान किया जायेगा। पहले प्रत्येक उपनिवेश की विधायकी की जिम्मेदारी थी कि वह शाही अधिकारियों को भुगतान करने के लिए धन जुटाए। अब यह अधिकार उनके हाथ से छिना जा रहा था।

अफ्रीका, नये विश्व की बड़े-बड़े खेतों का क्षेत्र, और अंटलाटिक के पार ब्रिटेन को जोड़ने वाला 'त्रिकोणीय व्यापार' अंटलाटिक अर्थव्यवस्था का केन्द्रीय संचालक था। अफ्रीकी दास-व्यापार और बड़े-बड़े खेतों की अर्थव्यवस्था ने ब्रिटिश निर्मित उत्पादों जैसे लोहा, वस्त्र, काँच आदि के लिए मंडियों का विकास करके ब्रिटेन में औद्योगिक पूँजीवाद के विकास के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। बड़े-बड़े खेतों में कृषि-दासता और आर्थिक विकास पर विद्वानों की चर्चा में मुख्यतया दो व्यापाक व्याख्याएँ उभर कर आई हैं। रॉबर्ट फोगेल और स्टेनली एंगरमैन का तर्क है कि गुलाम श्रमिकों की गैर-मुक्त कानूनी स्थिति के बावजूद, बागान-दासता (Plantation Alavery) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का एक रूप था। बागानों के मालिकों की एक केन्द्रीयकृत श्रम-प्रक्रिया में अपने श्रमिकों को संगठित करने की क्षमता ने दासों का उपयोग चीनी, तम्बाकू और कपास जैसे उत्पादों को विश्व बाजार के लिए उत्पादन करके अधिकतम मुनाफा कमाने करने के लिए किया। दूसरी ओर यूजीन डी. जेनोवीज का तर्क है कि दासों की गैर-मुक्त कानूनी स्थिति ने पूँजीवाद के विकास के लिए कई सामाजिक-संस्थागत बाधाओं को जन्म दिया। कई कारणों से, और सबसे महत्वपूर्ण यह था कि दासों में प्रेरणा की कमी से, उनके उपर सरल, अकुशल और बार-बार दोहराने वाले कार्यों में एक करीबी पर्यवेक्षण की जरूरत पड़ती थी और इसलिए कृषि-दासता तकनीकी नवीनता के लिए एक बाधा थी। लेकिन, अमेरिकी दक्षिण उपनिवेशों के सामाजिक

मानचित्र पर एक महत्वपूर्ण उपस्थिति के बावजूद, इस मुद्दे को समकालीन समय के राजनैतिक विमर्शों में कोई प्रतिध्वनि नहीं मिली।

10.4 सप्तवर्षीय युद्ध के परिणाम

सप्तवर्षीय युद्ध (1756-1763) फ्रांस और उसके सहयोगियों के गठबंधन का ग्रेट ब्रिटेन और उसके सहयोगियों के विरुद्ध एक युद्ध था। युद्ध उत्तरी अमेरिका में ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के बीच एक क्षेत्रीय टकराव से आगे बढ़कर यूरोप और अन्य उपनिवेशों में भी फैल गया। जॉर्ज वाशिंगटन, जो एक समृद्ध बागान स्वामी और वर्जीनिया मिलिशिया के एक अधिकारी थे, उन्होंने भी इस युद्ध के प्रारम्भिक वर्षों में ब्रिटिश जनरल ब्रेडॉक के अधीन सेवाएँ दी थी। यह सप्तवर्षीय युद्ध ग्रेट ब्रिटेन और उसके सहयोगियों के लिए एक शानदान जीत और फ्रांस और सहयोगियों के लिए एक करारी हार में समाप्त हुआ। फ्रांस ने उत्तरी अमेरिका में अपने औपनिवेशिक अधिकृत क्षेत्र के बहुत सारे हिस्से ब्रिटेन को गँवा दिये जिन्हें नव फ्रांस के नाम से जाना जाता था। इसमें कनाडा और ओहियो घाटी सहित मिसिसिपी नदी के पूर्व की सभी भूमि शामिल थी। एक बड़ी सैन्य जीत के बावजूद, ग्रेट ब्रिटेन को युद्ध के बाद कई गम्भीर भू-राजनीतिक और वित्तीय समस्याओं का सामना करना पड़ा। ब्रिटिश सरकार की पहली परेशानी यह थी कि युद्ध के द्वारा जीते गये विशाल क्षेत्रों को कैसे नियंत्रित किया जाय, वहाँ शासन कैसे चलाया जाए। उत्तरी अमेरिका में, कनाडा और मिसिसिपी नदी के पूर्व में अधिग्रहित भूमि की रक्षा का उत्तरदायित्व अब अंग्रेजों का था। इन पूर्व फ्रांसिसी उपनिवेशों में हजारों अमेरिकी इंडियन्स (मूलनिवासी) और अनेक फ्रांसिसी भाषी कैथोलिक लोग शामिल थे जिनकी ब्रिटिश राज की प्रजा बनने या अंग्रेजी आम कानून के तहत रहने की इच्छा नहीं थी। इसने वैध तरीके से शासित लोगों की सहमति प्राप्त करने की समस्या को पैदा किया। ग्रेट ब्रिटेन ने पूर्वी और पश्चिमी फ्लोरिडा पर भी नियंत्रण हासिल किया था जिस क्षेत्र को फ्रांस के एक सहयोगी स्पेन को सौंपने पर मजबूर किया गया था। इन नये औपनिवेशिक अधिकृत क्षेत्रों के वित्त पोषण की एक महत्वपूर्ण समस्या ब्रिटिश सरकार के सामने थी। युद्ध एक महँगा मामला था और सप्तवर्षीय युद्ध के अंत में, इंग्लैंड का राष्ट्रीय ऋण 122 मिलियन पौंड से अधिक हो गया था और यहाँ तक कि इस ऋण पर वार्षिक ब्याज भुगतान भी लगभग 4.5 मिलियन पौंड था। ब्रिटेन की वित्तीय परेशानियों के कारण, सरकार को घरेलू स्तर पर भी युद्ध के दौरान करों में वृद्धि के बाद, अब राहत की माँग कर रहे लोगों के बढ़ते विरोध का सामना करना पड़ा।

बोध प्रश्न 1

1) अमेरिका के औपनिवेशीकरण की प्रकृति की चर्चा कीजिए। आप के विचार में यह भारत के औपनिवेशीकरण से कैसे भिन्न था?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) सप्तवर्षीय युद्ध को कैसे अमेरिकी क्रांति के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में देखा जा सकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

10.5 अमेरिका में ब्रिटिश राज और उपनिवेशों के मध्य बढ़ती दुर्भावना

सप्तवर्षीय युद्ध के दौरान ब्रिटेन और अमेरिकी उपनिवेशों ने कंधे से कंधा मिलाकर लड़ाई लड़ी थीं। उपनिवेशों में अमेरिकियों ने युद्ध प्रयासों में ब्रिटेन को समर्थन किया था। हालांकि युद्ध समाप्ति पर परेशानियाँ बढ़ने लगीं। ब्रिटेन युद्ध में विजय के परिणामस्वरूप एक समान तरीके से तेरह मूल उपनिवेश और नये अधिकृत क्षेत्रों पर प्रशासन चलाना और नियंत्रण स्थापित करना चाहता था। इसलिए लंदन में ब्रिटिश संसद ने उपनिवेशों पर नये कानून, प्रतिबंध और दायित्वों को लागू किया। पहले उपनिवेशों को एक हद तक स्वशासन की अनुमति दी गई थी। संसद के अधिनियमों में पहला कदम 1763 की उद्घोषणा थी। इसने उपनिवेशवादियों को एपलाचियन पर्वत के पश्चिम में बसने की अनुमति नहीं दी। ब्रिटेन चाहता था कि यह जमीन वहाँ के मूल-निवासियों के हाथों में ही रहे। सप्तवर्षीय युद्ध के अंत में, पहले से ही निवासी कबीलों (मूल-निवासियों) के साथ ब्रिटेन का तनाव था। ओहियो घाटी और महान झीलों में रहने वाले मूल कबीलों के साथ उनकी जमीनों पर कब्जा किए बगैर कुछ फ्रांसिसी निवासियों ने उनके साथ वर्षों तक व्यापार किया था। युद्ध में फ्रांस की हार के बाद, ब्रिटिश लोगों ने एपलाचियन पर्वत को पार करना शुरू कर दिया और काफी संख्या में पश्चिम की ओर (पूर्वी उत्तर अमेरिका में एक पर्वत श्रृंखला) अच्छी उपजाऊ भूमि की तलाश में आगे बढ़ रहे थे। उत्तरी अमेरिका में ब्रिटिश सेनाओं के ब्रिटिश कंमाडर मेजर जनरल जेफरी एमहर्स्ट के कार्यों ने भी युद्ध के अंतिम वर्षों में ब्रिटिश और अमेरिकी भारतीयों के बीच तनावपूर्ण संम्बन्धों को बढ़ाया। युद्ध के दौरान, ब्रिटिश और फ्रांसीसी दोनों के द्वारा मूल कबीलों के सरदारों को उदार तरीके से उपहार देकर उनका समर्थन हासिल करने की कोशिश की गई थी। जैसे ही उत्तरी अमेरिका में सैन्य अभियान समाप्त हुआ, जनरल एमहर्स्ट ने इन सरदारों को उपहार देने की प्रथा को बंद करने का निर्णय लिया और मूलनिवासियों के साथ किये जाने वाले बारूद के व्यापार में कटौती करने का फैसला भी लिया। इससे मूल निवासियों के सरदार और नाराज हो गये। मई 1763 में, ऐसे ही एक ओटावा के सरदार, पोंटियाक ने महान झीलों के क्षेत्र में कई आदिवासी कबीलों का नेतृत्व करके ब्रिटिश सेना और सीमा के साथ-साथ बसने वाले अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया। इसमें अनेक ब्रिटिश सैनिक मारे गये और बहुत से अंग्रेजी निवासी इस क्षेत्र से भागने पर मजबूर हुए। पोंटियाक

का विद्रोह 1764 तक चला। हालांकि शांति स्थापित हो गई लेकिन मूलनिवासियों के साथ दुबारा टकराव की संभावना ने सप्तवर्षीय युद्ध के बाद भी, अमेरिका में एक स्थायी सेना रखने के ब्रिटिश निर्णय को इस विद्रोह ने प्रभावित किया।

1763 की उद्घोषणा ने उन उपनिवेशवादियों को नाराज कर दिया जो उपजाऊ ओहियो घाटी में जाकर बसना चाहते थे। इनमें से बहुतों के पास अपनी स्वयं की भूमि नहीं थी। इससे वे उपनिवेशवादी भी परेशान हुए जिन्होंने निवेश के लिए जमीनें खरीदी थी। 1763 की उद्घोषणा ने अमेरिकी उपनिवेशों के समृद्ध और शक्तिशाली सामाजिक समूह को प्रभावित किया क्योंकि उन्होंने लम्बे समय तक भारी मुनाफे कमाने की उम्मीद में कम्पनियों में निवेश किया था। इन रियल एस्टेट कम्पनियों में से कुछ ओहियो कम्पनी (1747 में गठित), लॉयल कम्पनी (1749 में गठित) और मिसीसिपी कम्पनी (1763 में गठित) थी। ये कम्पनियाँ बड़ा मुनाफा कमाना चाहती थी और उनकी कार्य-प्रणाली में ब्रिटिश से सस्ती दर पर जमीन प्राप्त करके उसे उन नये लोगों को बेचना था जो एपलाचियन पर्वतों से आगे जमीन में बसना चाहते थे। इन कम्पनियों में निवेश करने वाले कुछ लोग अमेरिकी इतिहास के बड़े-बड़े नाम थे जैसे जॉर्ज वाशिंगटन, थॉमस जेफरसन, पेट्रिक हैनरी, रिचर्ड हैनरी ली और वर्जीनिया के आर्थर ली और पेंसिल्वेनिया के वैंजामिन फ्रैंकलिन। ब्रिटिश सरकार से जमीन का स्वामित्व पाने में असमर्थ, ये भूमि कम्पनियाँ जमीन की बिक्री नहीं कर पा रही थी। हालांकि कम्पनियों के ऐजेन्टों को भूमि कम्पनियों की ओर से बहस करने के लिए लंदन भेजा गया लेकिन ब्रिटिश सरकार ने इस विषय में अपनी स्थिति में बदलाव करने से इन्कार कर दिया। इससे उन कम्पनियों में निवेश करने वाले अमीर और शक्तिशाली लोगों को काफी वित्तीय नुकसान हुआ था।

ब्रिटिश सम्राट जॉर्ज तृतीय ने उद्घोषणा को लागू करना चाहा और मूल-निवासी कबीलों के साथ भी शांति बना कर रखनी चाही। ऐसा करने के लिए, उन्होंने उपनिवेशों में 10,000 सैनिकों को रखने का फैसला किया। यह 1765 में ब्रिटिश संसद द्वारा क्वार्टरिंग एक्ट के पारित होने के माध्यम से किया गया था। अधिनियम के प्रावधानों के तहत, ब्रिटिश सैनिकों के रख-रखाव का काम उपनिवेशों को करना था। यह उपनिवेशों के लोगों द्वारा उन्हें अपने घरों में रखकर और उन्हें भोजन, आवास और अन्य सुविधाएँ प्रदान करके करना था। इसलिए, इससे ब्रिटिश को कोई लागत नहीं आई और उनकी सेना के रख-रखाव का दायित्व उपनिवेशों का हो गया। इन सेनाओं के कमान्डर थॉमस गेज ने न्यूयार्क में ही ज्यादातर सैनिकों को रखा। ब्रिटेन ने सप्तवर्षीय युद्ध के दौरान भारी कर्ज लिया था और अब वह स्वयं अपने सैनिकों को स्वयं के खर्च पर उपनिवेशों में रखने की स्थिति में नहीं था। उपनिवेशों को वहाँ तैनात सैनिकों का भुगतान की जिम्मेदारी देकर, ब्रिटिश संसद ने एक ऐसी वित्तीय रणनीति तैयार की थी जिसके तहत उपनिवेश ही आंशिक रूप से युद्ध के समय के ऋण का भुगतान कर देते। वह यह भी चाहता था कि उपनिवेश अपने सीमांतों की रक्षा और औपनिवेशिक प्रशासन का व्यय वहन करें। अतीत की अच्छी तरह से स्थापित परिपाटियों के विरुद्ध, औपनिवेशिक विधानसभाओं को सम्राट द्वारा नये करों को बढ़ाने की सलाह दी गई थी जिसके माध्यम से उपनिवेशों में सैन्य कार्यवाहियों को, पहले से ही दबाव में ब्रिटिश सरकार के वित्त पर बिना बोझ बढ़ाए, उपनिवेशों द्वारा वित्तपोषित किया जा सकता था। हालांकि, इस बार संसद ने अमेरिकियों पर प्रत्यक्ष तौर पर कर लगाने के लिए मत दिया था।

अमेरिकी उपनिवेशों के साथ ब्रिटेन के व्यापारिक कानूनों को भी बलपूर्वक लागू करवाने का प्रयास किया गया। तस्करी और समुद्री-दस्युता के कारण नौपरिवहन कानूनों को लागू करना मुश्किल हो रहा था। लेकिन अब ब्रिटिश नौसेना की पर्याप्त उपस्थिति के साथ औपनिवेशिक तस्करी पर अंकुश लगाना और व्यापार कानूनों को अधिक प्रभावी ढंग से लागू करवाना सम्भव था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, ब्रिटिश सरकार ने बढ़चढ़ कर एक अन्य उपकरण का सहारा लिया जिसे **रिट ऑफ असिस्टैंस** कहा जाता था। यह रिट एक प्रकार की खोज का वारंट था जो सरकारी अधिकारियों को निजी घरों और व्यावसायिक परिसर दोनों में, तस्करी के सामानों की तलाशी लेने के लिए अधिकृत करता था। इन रिट्स में तलाशी के समय, स्थान या तरीके की कोई सीमा भी नहीं रखी गई थी। 1761 में, तैंतीस बोस्टन के व्यापारियों ने इस प्रक्रिया की वैधता को चुनौती दी। जेम्स ओटिश जूनियर, एक वकील ने, जिन्होंने पूर्व में शाही सरकार का प्रतिनिधित्व किया था, उन्होंने व्यापारियों का मुकदमा लड़ा। हालांकि वे मुकदमा हार गये लेकिन इससे जो प्रचार हुआ, उसने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ बोस्टन के व्यापारी वर्ग में उभर रहे असंतोष को और हवा दी।

1764 में, संसद ने अमेरिकी राजस्व अधिनियम पारित किया जिसे लोकप्रिय रूप से चीनी अधिनियम (सुगर एक्ट) के नाम से जाना गया। इसने मौजूदा 1733 के चीनी और शीरा अधिनियम की जगह ले ली जिसके तहत अधिनियम में शीरे पर फ्रांसीसी वेस्ट इंडीज या डच वेस्ट इंडीज से आयातित करने पर छह पेंस प्रति गैलन का कर लगाया जाता था। शीरा रम के निर्माण में एक महत्वपूर्ण घटक था जो न्यू इंग्लैंड में एक सबसे महत्वपूर्ण उद्योग था। इस कानून का उद्देश्य राजस्व उत्पन्न करना नहीं था लेकिन इसको एक व्यापार को विनियमित करने के साधन के रूप में तैयार किया गया था। इसका उद्देश्य फ्रांसीसी और डच वेस्ट इंडीज की कीमत पर ब्रिटिश वेस्ट इंडीज के साथ व्यापार को प्रोत्साहित करना था। व्यापक पैमाने पर तस्करी और रिश्वतखोरी के कारण, फ्रांसीसी और डच वेस्ट इंडीज शीरे पर कर शायद ही कभी एकत्र किया गया होगा। इसलिए 5 अप्रैल 1764 को ब्रिटिश संसद ने इसे अमेरिकी राजस्व अधिनियम (1764) के द्वारा बदल दिया। इस नये अधिनियम में शीरे पर कर में आधी कटौती की गई थी और ब्रिटिश के वित्त मंत्री ग्रेनविल ने अनुमान लगाया था कि सीमा शुल्कों के जोरदार कुशल संग्रह से पहले से ज्यादा राजस्व हासिल होगा। इस अधिनियम में सामान्य अदालतों की बजाय वाइस एडमिरलिटी अदालतों में सभी कानूनों के उल्लंघनों पर मुकदमा चलाने का अधिकार सीमा शुल्क अधिकारियों को दिया गया था। वाइस एडमिरलिटी अदालतों को सभी समुद्री व्यापार से जुड़े मुद्दों का अधिकार क्षेत्र था जबकि सामान्य अदालतें उपनिवेशों में आपराधिक मामलों को देखती थी। सामान्य अदालतों के विपरीत वाइस एडमिरलिटी कोर्ट ने न्यायपीठों का उपयोग नहीं किया और ग्रेनविल का मानना था कि औपनिवेशिक न्यायपीठ अक्सर तस्करी के मामलों में स्थानीय व्यापारियों की ही पक्षधर रहती थी। चीनी अधिनियम को न्यू इंग्लैंड में, जहाँ शीरे से रम का उत्पादन वाला उद्योग मुख्य था, वहाँ काफी प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। जेम्स ओटिश जैसे औपनिवेशिक नेताओं ने दावा किया कि ब्रिटिश संसद को उपनिवेशों में राजस्व बढ़ाने का कोई कानूनी अधिकार नहीं था क्योंकि अमेरिकी उपनिवेशों में रहने वाले लोगों का संसद में एक भी प्रतिनिधि नहीं था। ओटिश ने नारा बुलंद किया कि 'प्रतिनिधित्व के बिना कराधान घोर अत्याचार है'। ब्रिटिश शासक वर्ग इससे सहमत नहीं था और उन्होंने कहा कि उपनिवेशवादी ब्रिटेन

की प्रजा थे और उन्हें भी ब्रिटिश कानूनों का संरक्षण मिल रहा था इसलिए उन पर कर लगाना वैध था।

ब्रिटिश की अपनी वित्तीय मजबूरियाँ थी क्योंकि उन्हें अमेरिका में सैन्य अभियानों के लिए अधिक राजस्व की आवश्यकता थी और उपनिवेशों पर अपना नियंत्रण बनाये रखने के लिए अधिक सैनिकों को तैनात करना था। अमेरिका में इस सैन्य तैनाती में शामिल खर्चों का भुगतान करने के लिए ग्रेनविल ने उपनिवेशों के लिए एक स्टाम्प अधिनियम (1765) का प्रस्ताव दिया। इंग्लैंड में एक स्टाम्प कर 1694 से अस्तित्व में था और राजस्व वसूली करने में उपयोगी साबित हुआ था। स्टाम्प अधिनियम में सभी कानूनी दस्तावेजों पर एक कर लगाया गया था। वाणिज्यिक अनुबंध, समाचार-पत्र, वसीयत और विवाह के लाइसेंस, डिप्लोपा, पैम्फलेट और ताश के पत्ते जैसी चीजों पर अमेरिकी उपनिवेशों मे एक कर लगाया गया। स्टाम्प अधिनियम ब्रिटिश सरकार द्वारा उपनिवेशों में राजस्व एकत्र करने के लिए उपयोग में लाया जाने वाला पहला प्रत्यक्ष कर था। हालांकि उपनिवेशों पर स्टाम्प कर लगाकर राजस्व एकत्र करने को लेकर ब्रिटिश संसद में कुछ आपत्तियाँ उठाई गई थी लेकिन संसद के अधिकांश सदस्यों की नज़र में यह एक प्राकृतिक कानून था। संसद द्वारा पारित एक और आर्थिक कदम था जिसे 1764 के मुद्रा अधिनियम के नाम से जाना जाता था। इस अधिनियम ने अमेरिकी उपनिवेशों को साख के बिलों को एक वैध निविदा के रूप में उपयोग करने से प्रतिबंधित कर दिया। मुद्रा के नोटों की तरह साख के बिल भी सरकार द्वारा जारी किये गये थे और वे एक प्रकार की वैकल्पिक मुद्रा के रूप में प्रचलन में थे। इस अधिनियम ने मुद्रा के माध्यम के रूप में या अमेरिकी उपनिवेशों द्वारा एक वैकल्पिक साधन के रूप में साख के बिलों के उपयोग को गैर-कानूनी करार दे दिया। उपनिवेशों में चाँदी और सोने की मुद्रा की कमी के लिए साख के बिल एक स्थानीय उपाय थे। इन उपकरणों को एक उपनिवेश की सरकार की साख द्वारा समर्थित किया गया था जिसने उन्हें जारी किया था। अब अमेरिकी व्यापारी और व्यवसायी इस साधन के माध्यम से अपने अंग्रेज समकक्षों के साथ भुगतान या लेन-देन नहीं कर सकते थे। यह ब्रिटिश व्यापारियों के पक्ष में था क्योंकि पिछले कुछ वर्षों में इन बिलों के मूल्य में गिरावट आई थी। इससे आर्थिक काम बिगड़ गया क्योंकि अब ब्रिटिश व्यवसायी केवल चाँदी और सोने की मुद्रा में भुगतान की माँग करते थे। यह अनुचित था क्योंकि ब्रिटिश सरकार द्वारा भी साख के बिल जारी किये गये थे और वे अमेरिकी उपनिवेशों की संचित साख का प्रतिनिधित्व करते थे।

जहाँ बहुत से उपनिवेशवासियों ने मुद्रा अधिनियम को आर्थिक मंदी के लिए दोषी माना लेकिन फिर भी उपनिवेशों में इसका कोई व्यापक विरोध नहीं नज़र आया। इसको बहुत से लोगों ने ब्रिटिश संसद की पूर्ववर्ती शक्ति का विस्तार ही माना। चीनी अधिनियम के खिलाफ भी विरोध काफी कम महत्वपूर्ण था क्योंकि यह आम लोगों को प्रभावित नहीं करता था हालांकि उससे न्यू इंग्लैंड उपनिवेश का व्यापारिक समुदाय खासतौर से परेशान था। बोस्टन के हाल के उभरे राजनीतिक क्लबों के एक लोकप्रिय नेता, सैमुअल एडम्स इस कदम के विरोधी थे और चीनी कर लगाने के खिलाफ उन्होंने आंदोलन किया था और उन्होंने और आगे मैसाचुसेटस की आम सभा को कर का विरोध करने के लिए राजी करने की कोशिश की। बोस्टन के कुछ व्यापारियों ने ब्रिटिश विलासिता के सामानों का बहिष्कार करने पर सहमति व्यक्त की। इस प्रकार औपनिवेशिक विरोध के एक साधन के रूप में ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार शुरू हुआ। जून 1764 में मैसाचुसेटस में एक पत्राचार के लिए पाँच सदस्यों वाली समिति की

नियुक्ति की गई जिसका काम अन्य उपनिवेशों के साथ कार्यवाही और सूचनाओं का समन्वय करना था।

10.6 औपनिवेशिक प्रतिरोध का विस्फोट : स्टाम्प अधिनियम के प्रति प्रतिक्रिया

स्टाम्प अधिनियम उपनिवेशों के लिए एक नये प्रकार का कर था। यह उपनिवेशों के भीतर लागू किया एक नया कर था। इसका बोझ सीधे उपनिवेशवादियों पर पड़ा। इसके अतिरिक्त, उपनिवेश के निवासियों को इस कर का भुगतान चाँदी के सिक्कों के रूप में करना पड़ता था जो उपनिवेशों के लिए एक दुर्लभ वस्तु थी। औपनिवेशिक नेताओं ने इसके एकतरफा आरोपण का विरोध किया। उनका मानना था कि संसद द्वारा उनकी बिना सहमति के यह कर उन पर लगाया जा रहा था। संसद में उनकी कोई आवाज नहीं थी। प्रतिरोध काफी तेज और भावुकतापूर्ण था। स्टाम्प्स पर पहला आधिकारिक विरोध वर्जीनिया के हॉउस ऑफ बर्गेसस से आया था। 29 मई, 1765 को हॉउस ऑफ बर्गेसस ने पेट्रिक हेनरी द्वारा सुझाए पाँच प्रस्तावों को पारित किया। वर्जीनिया के इन प्रस्तावों में वर्जीनिया निवासियों को जो स्वतंत्रताएँ और प्रतिरक्षाएँ प्राप्त थीं उनको सम्राट जेम्स I द्वारा प्रदान किए गए दो शाही चार्टरों से जोड़कर देखा गया। तीसरे प्रस्ताव में साहसपूर्वक तरीके से कहा गया कि ''करों के बोझ से सुरक्षा का एकमात्र तरीका था कि कराधान लोगों के स्वयं के द्वारा, या उनके स्वयं के प्रतिनिधित्व के लिए चुने लोगों द्वारा लगाया जाए जिन्हें यह ज्ञान रहता है कि कौन कर लोग सहन कर सकते हैं या उनके लगाने का कौन सा तरीका ज्यादा आसान होगा और जो स्वयं कर लगाये जाने से प्रभावित होते हों।''

पाँचवां संकल्प जो सदन द्वारा पारित प्रस्तावों में सबसे उग्र था, उसमें कहा गया कि केवल वर्जीनिया की सामान्य सभा को ही अपने निवासियों पर कर लगाने की शक्ति थी। यह घोषणा इस सिद्धांत की उपनिवेशों में लोकप्रियता को दर्शाती थी कि प्रतिनिधित्व के बिना कोई कराधान नहीं हो सकता। यह मूलगामी प्रस्ताव हालांकि बाद में मध्यम और रूढिवादी तत्वों के राजनीतिक गठबंधन के कारण अधिकारिक रिकार्ड से बाहर रख दिये गये। अन्य औपनिवेशिक सभाओं ने वर्जीनिया की साहसी पहल का अनुसरण किया। वर्जीनिया की कार्यवाही के तुरंत बाद, मैसाचुसेटस के निम्न सदन ने सभी उपनिवेशों के प्रतिनिधियों की एक बैठक का सुझाव दिया। अक्टूबर 1765 में न्यूयार्क में संगठित स्टाम्प एक्ट कांग्रेस के नाम से जानी जाने वाली इस बैठक में नौ उपनिवेशों ने अपने प्रतिनिधि भेजे। यह पहली बार हो रहा था कि उपनिवेशों ने विरोध में सहयोग किया। इन प्रतिनिधियों ने स्टाम्प एक्ट का विरोध करने वाली एक याचिका हस्ताक्षर करके सम्राट को भेजी।

याचिका में घोषणा की गई कि उपनिवेशों पर कर लगाने का अधिकार औपनिवेशिक विधानसभाओं का था, ब्रिटिश संसद का नहीं। औपनिवेशिक सभाओं और समाचार-पत्रों ने घोषणा की – ''प्रतिनिधित्व के बिना कोई कराधान नहीं''। औपनिवेशिक विधानसभाओं के विरोध के अलावा, कई शहरों में स्टाम्प अधिनियम के खिलाफ हिंसक प्रदर्शन हुए। इन भीड़ को सन्स ऑफ लिबर्टी और लिबर्टी बायज जैसे देशभक्त नामों से नवाजा गया। इन गुप्त और अस्थिर समूहों में अक्सर प्रिंटर और कारीगर होते थे और इनका नेतृत्व उपनिवेशों के सबसे शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। सैमुअल एडम्स ने बोस्टन में सन्स ऑफ लिबर्टी का नेतृत्व किया। भीड़ की हिंसा के

अतिरिक्त अन्य समूहों ने ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार प्रयास किया। संसद ने आखिरकार देखा कि स्टाम्प अधिनियम एक गलती थी और इसे 1766 में निरस्त कर दिया। लेकिन इसके साथ ही, संसद एक और कानून पारित करने वाली थी जिसे – घोषणा अधिनियम या डिक्लेरेटरी एक्ट नाम दिया गया। इस कानून ने शासन और कराधान के मामलों में ब्रिटिश संसद के सर्वोच्च अधिकार की पुष्टि की। अमेरिकियों ने स्टाम्प अधिनियम के हटाये जाने से जश्न मनाया और घोषणा अधिनियम की अनदेखी करने का प्रयास किया। लेकिन ब्रिटिश संसद और उपनिवेशों के बीच युद्ध शुरू हो चुका था।

10.7 टाउनशेंड अधिनियम और विरोध की निरंतरता

स्टाम्प अधिनियम पर राजनीतिक उथल-पुथल के बाद, ब्रिटेन ने उपनिवेशों के साथ किसी भी टकराव से बचने की कामना की। फिर भी उसे वित्तीय मजबूरियों का सामना करना पड़ा और अमेरिका में सैनिकों और प्रशासन की लागत का भुगतान करने के लिए राजस्व के स्रोत ढूढ़ने की जरूरत थी। चार्ल्स टाउनशेंड, बिटेन के नये वित्तमंत्री, ने तीन नये कदमों का सुझाव दिया जिन्हें टॉउनशेंड अधिनियम के नाम से जाना गया। इसमें 1767 का राजस्व अधिनियम, न्यूयार्क विधानसभा के निलंबन का अधिनियम और सीमा शुल्क बोर्ड अधिनियम शामिल थे राजस्व अधिनियम ने उपनिवेशों पर नये कर लगाए। अधिक राजस्व जुटाने के उपाय के रूप में, इसने सीसा, काँच, पेंट और चाय जैसी वस्तुओं पर नये आयात शुल्क लगाए। न्यूयार्क विधानसभा अधिनियम ने न्यूयार्क विधानसभा को तब तक के लिए निलंबित कर दिया जब तक यह क्वार्टरिंग अधिनियम को मानने के लिए राजी नहीं हो जाती। अमेरिकी सीमा शुल्क बोर्ड अधिनियम द्वारा लगायी गयी नए सीमा शुल्क करों को लागू करने के लिए बोस्टन में एक सीमा शुल्क बोर्ड की स्थापना की और बोस्टन, फिलाडेल्फिया और चार्ल्सटन में नये वाइस एडमिरलिटी कोर्ट बनाए गए।

हालांकि उपनिवेशों ने तुरंत टाउनशेंड सीमा शुल्कों के लगाए जाने का विरोध किया। उन्होंने संगठनात्मक नेटवर्क विकसित कर लिया था और स्टाम्प अधिनियम के विरोध के बाद जनता को बड़े पैमाने पर लामबंद करने की विधियाँ भी विकसित कर ली थी। इसलिए उपनिवेशों में तुरंत हलचल हुई और ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार को एक प्रभावशाली साधन के रूप में उपयोग किया गया। हालांकि टाउनशेंड सीमा शुल्कों का विरोध उतना हिंसक नहीं था जितना कि भीड़ के द्वारा स्टाम्प अधिनियम के विरोध के समय हुआ था। उपनिवेश निवासियों के द्वारा दुबारा सरकार को ज्ञापन भेजे गये। एक बड़ी उथल-पुथल की आशंका को देखते हुए ब्रिटिश संसद ने 1770 में सभी टाउनशेंड सीमा शुल्कों को, सिवाय चाय कर के, रद्द कर दिया। चाय पर टैक्स भी उपनिवेशों पर संसद के वर्चस्व को प्रदर्शित करने के लिए एक प्रतीक के रूप में बनाए रखा गया था।

10.8 बोस्टन नर-संहार, बोस्टन टी पार्टी और असहनीय अधिनियम

फिर भी, परेशानियाँ खत्म नहीं हुईं और ब्रिटिश सैनिकों और उपनिवेश के निवासियों के बीच टकराव जारी रहा। उपनिवेश निवासी **रिट ऑफ असिस्टैंस** को लेकर भी नाराज थे। बहुत से लोगों का यह मानना था कि ये रिट उनके प्राकृतिक अधिकारों के

खिलाफ थे और उन्हें लगा कि टाउनशेंड अधिनियम उनकी स्वतंत्रता और अधिकारों के लिए एक गम्भीर खतरा था। इन टकरावों का एक स्थायी स्रोत ब्रिटिश व्यापार कानूनों को जबरदस्ती लागू करना और प्रमुख बंदरगाह शहरों में ब्रिटिश सैनिकों की उपस्थिति था। 5 मार्च, 1770 को बोस्टन में ब्रिटिश सैनिकों ने एक भीड़ पर गोलियाँ चलाई जिसमें पाँच लोग मारे गये। इस घटना को बोस्टन नरसंहार के रूप में जाना गया और पूरे उपनिवेशों में इस घटना का प्रचार हुआ। हालांकि बोस्टन नर संहार को लेकर सभी उपनिवेशों में भयंकर आक्रोश था, ब्रिटिश सरकार ने इन सैनिकों पर मुकदमा चलाए जाने के लिए मैसाचुसेटस को चुना। मुकदमें में आठ में से छह सैनिकों को बरी कर दिया गया जबकि शेष दो को हत्याओं के लिए दोषी ठहराया गया। अंटलाटिक सागर के दोनों तरफ (अमेरिका और इंग्लैंड में) बहुत से लोगों ने महसूस किया सैनिकों पर मुकदमा निष्पक्ष था।

टाउनशेंड अधिनियमों का विरोध करने के लिए, बोस्टन में उपनिवेश निवासियों ने अक्टूबर 1767 में एक और ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार की घोषणा की। इस विरोध की मुख्य प्रेरक शक्ति सैमुअल एडम्स थे जो बोस्टन में संस ऑफ लिबर्टी के एक नेता थे। एडम्स ने उपनिवेश के निवासियों को ब्रिटिश नियंत्रणों का विरोध जारी रखने का आग्रह किया। यह बहिष्कार सभी उपनिवेशों में फैल गया। संस ऑफ लिबर्टी ने दुकानदारों और व्यापारियों को मजबूर किया कि वे ब्रिटिश आयात किया हुआ सामान न बेचें। द डॉटर्स ऑफ लिबर्टी ने उपनिवेश निवासियों से कहा कि वे स्वयं अपना कपड़ा बुनें और अमेरिकी उत्पादों का ही उपयोग करें। परिणामस्वरूप ब्रिटेन से होने वाले आयात में काफी गिरावट आई।

फिर 1773 में, ब्रिटिश संसद ने स्वयं अपने हितों की रक्षा के लिए चाय अधिनियम पारित किया। अमेरिकी उपनिवेशों में चाय एक लोकप्रिय पेय बन गया था और बड़ी मात्रा में इसे हॉलैंड से अवैध रूप से आयात किया जाता था। चाय अधिनियम ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी को अमेरिकी चाय व्यापार का नियंत्रण देने का एक प्रयास था ताकि वह अपनी वित्तीय परेशानियों पर काबू पा सके। इस अधिनियम के तहत, ईस्ट इंडिया कम्पनी की चाय को शुल्क मुक्त कर दिया गया था और अमेरिकी उपनिवेशों को यह सीधे निर्यात कर सकती थी। हालांकि कम्पनी की चाय अभी भी टाउनशेंड कर के अधीन थी, लेकिन ईस्ट इंडिया कम्पनी की चाय को शुल्क मुक्त आगमन की अनुमति देने से हॉलैंड से आने वाली चाय की तुलना में इसको सस्ती चाय बेचना सम्भव हो गया। यह ईस्ट इंडिया कंपनी को चाय आयात करने का एकमात्र अधिकार देने जैसा था क्योंकि अब केवल उनके जहाजों ने चाय को उपनिवेशों के बंदरगाहों तक पहुँचाया और केवल ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापारियों ने इस अमेरिकी बाजारों में बेचा। पहले उपनिवेशों के उपभोक्ता हॉलैंड के व्यापारियों के माध्यम से चाय का आनंद ले रहे थे। चूँकि यह अधिकांश अवैध रूप से अमेरिका पहुँचती थी इसलिए उन्हें ऐसी चाय की खपत पर कोई कर नहीं देना पड़ता था। अब सस्ती ब्रिटिश चाय भी महँगी हो गई क्योंकि इसे भी टाउनशेंड कर देना पड़ता था। जल्द ही उपनिवेशों में चाय अधिनियम के खिलाफ विरोध प्रदर्षन शुरू हो गये। यह विरोध दक्षिण कैरोलिना, न्यूयार्क शहर और फिलाडेल्फिया में फैल गया। बोस्टन में यह विरोध, संस ऑफ लिबर्टी द्वारा एक लोकप्रिय अभियान, जिसे बोस्टन टी पार्टी के नाम से जाना गया, के तौर पर आयोजित किया गया। 16 दिसम्बर, 1773 के शाम को कुछ लोगों का एक समूह बोस्टन बंदरगाह में खड़े एक जहाज पर चढ़ गया और उन्होंने भारी मात्रा में चाय को नष्ट कर दिया। कुछ औपनिवेशिक नेताओं ने यह पेशकश की कि अगर

संसद चाय अधिनियम को निरस्त कर दे तो वे चाय के नुकसान की भरपाई को तैयार थे। ब्रिटेन ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। वह न केवल नुकसान के लिए मुआवजा चाहता था बल्कि जिन्होंने चाय नष्ट की थी उन लोगों पर मुकदमा भी चलाना चाहता था। यही बोस्टन टी पार्टी पर ब्रिटिश प्रतिक्रिया ने अन्य उपनिवेशों में विद्रोह को फैलाने में मदद की और सभी स्थान व्रिदोह की लपटों में आ गये और यह ब्रिटिश राज के साथ सुलह करने की उम्मीद पर भी पानी फेर देती है। ब्रिटिश सरकार ने बोस्टन टी पार्टी को गुंडों के एक समूह द्वारा निजी सम्पत्ति का एक बेतुका विनाश के रूप में देखा। ब्रिटिश सरकार ने चाय अधिनियम को रद्द करके उपनिवेशों को खुश करने की बजाय बोस्टन और मैसाचुसेटस के लोगों को दमनकारी कानूनों की एक श्रृंखला के साथ दंडित करने का फैसला किया जिन्हें असहनीय अधिनियम के नाम से जाना गया।

इन उपायों में पहला बोस्टन बंदरगाह अधिनियम मार्च 1774 में पारित किया गया। इस अधिनियम ने बोस्टन के बंदरगाह को बंद करने और ईस्ट इंडिया कम्पनी को हुए चाय के नुकसान का पूरा मुआवजा देने और ब्रिटिश सरकार को सीमा शुल्क के रूप में होने वाले नुकसान के समतुल्य भुगतान का प्रावधान किया। इन कदमों में दूसरा 1774 का न्याय के प्रशासन का अधिनियम था। उस कानून के तहत, यदि कोई ब्रिटिश अधिकारी किसी ऐसे अपराध में शामिल पाया जाता जो उसने कानून और व्यवस्था को लागू करवाने या दंगे नियंत्रित करने में अपने कर्त्तव्यपालन के समय किया था तो ब्रिटिश सरकार ऐसे अधिकारियों के मुकदमे की सुनवाई किसी अमेरिकी उपनिवेश से बदल कर किसी दूसरे ब्रिटिश उपनिवेश या ग्रेट ब्रिटेन में कर सकती थी। तीसरा असहनीय अधिनियम, मैसाचुसेटस गवर्नमैन्ट एक्ट के नाम से जाना जाता है, इसने इस उपनिवेश में लोकप्रिय निर्वाचित ऊपरी परिषद को खत्म कर दिया और उसकी जगह 12-36 सदस्यीय परिषद ने ले ली, जो सभी नामांकित थे और जिन्हें सम्राट द्वारा मनोनीत किया जाना था। असहनीय अधिनियमों में चौथा था, क्वार्टरिंग एक्ट। यह कानून 2 जून, 1774 को पारित किया गया था। पहले के क्वार्टरिंग एक्ट की तरह, संशोधित कानून में एक उपनिवेष के गवर्नर द्वारा ब्रिटिश सैनिकों को खाली घरों और खलिहानों में रहने की अनुमति देने का प्रावधान था।

असहनीय अधिनियमों के पारित होने के बाद उपनिवेशों में व्यापक जन-विरोध हुए। उपनिवेशों की विधान-सभाओं ने विरोध किया और जन-सामूहिक संवैधानिक और गैर-संवैधानिक लामबंदी भी देखने को मिली। जुलाई 1774 में जॉर्ज वाशिंगटन ने, जो अब वर्जीनिया के हाउस ऑफ बर्गेसस के सदस्य थे और उनके पड़ोसी, जॉर्ज मेसन ने फैयरफैक्स प्रस्तावों के नाम से एक मसौदा तैयार किया। इन प्रस्तावों ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ कई सामान्य शिकायतों को सूचीबद्ध किया, ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार करने का आह्वान किया, दास-व्यापार को समाप्त करने की माँग की और उपनिवेशों के प्रतिनिधियों की एक आम-कांग्रेस के आह्वान का आग्रह भी किया जो सम्राट को दी जाने वाली एक याचिका का मसौदा तैयार करेगी। जॉर्ज वाशिंगटन इन फैयरफैक्स प्रस्तावों को वर्जीनिया के हाउस ऑफ बर्गेसस के सामने लेकर गये जिसमें 1 अगस्त, 1774 को एक प्रथम वर्जीनिया कन्वेनशन के रूप में इन पर विचार हुआ जो 1776 तक वर्जीनिया का शासन चलाने वाली एक क्रांतिकारी निकाय (संस्था) थी। सभी तेरह उपनिवेशों में स्थानीय समूह असहनीय अधिनियमों का विरोध करने के लिए इसी तरह के संकल्पों को अपना रहे थे।

10.9 क्रांतिकारी युद्ध और स्वतंत्रता की घोषणा के मार्ग पर

असहनीय अधिनियमों का उपयोग करके बोस्टन और मैसाचुसेटस उपनिवेश के लोगों को अलग-थलग करके उन्हें सबक सिखाने का ब्रिटिश लक्ष्य पूरी तरह से विफल रहा। मैसाचुसेटस को अन्य उपनिवेशों से अलग करने की बजाय, इसने उपनिवेशों को ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ एकजुट किया। अधिक से अधिक लोग देशभक्तों की श्रेणी में शामिल हुए। ब्रिटिश सरकार का समर्थन करने वाले वफादार लोगों की संख्या में काफी गिरावट आई। पहली कांग्रेस, जिसको महाद्वीपीय कांग्रेस के नाम से जाना गया, 5 सितम्बर से 26 सितम्बर तक, छोटी अवधि के लिए औपनिवेशिक शिकायतों के निवारण के तरीकों पर विचार करने के लिए फिलाडेल्फिया में, बैठकें करती है और यह राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बन गई। इस सम्मेलन के प्रतिनिधि मंडल में वर्जीनिया के जॉर्ज वाशिंगटन और पैट्रिक हेनरी और जॉन एडम्स और मैसाचुसेटस के सैमुअल एडम शामिल थे। इस कांग्रेस ने एक महाद्वीपीय ऐसोसियेशन नाम की संस्था बनाई। इस निकाय ने उपनिवेशों में ब्रिटिश वस्तुओं के सार्वजनिक बहिष्कार को लागू करने के लिए काम किया। कांग्रेस ने अमेरिकी नागरिकों के 'अधिकारों की घोषणा' को भी सहमति प्रदान की। इसने अमेरिकी उपनिवेशों में कर लगाने के ब्रिटिश अधिकार को अस्वीकार कर दिया और इस बात की पुष्टि की कि अमेरिकी लोगों पर कर केवल उनके ही प्रतिनिधियों और विधायी निकायों द्वारा लगाया जा सकता था।

1774 के अंतिम दिनों में कई उपनिवेशों में अंतरिम सरकारों ने, जिनमें से कुछ को सुरक्षा समितियों के नाम से जाना गया, कुछ अमेरिकी उपनिवेशों में प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। इन अंतरिम सरकारों की मदद करने के लिए पूरी तरह हथियारबंद और प्रशिक्षित स्थानीय अर्ध-सैनिक दस्तों का निर्माण किया गया। सितम्बर 1774 में, ब्रिटिश जनरल थॉमस गेज ने, जिन्हें मैसाचुसेटस के नये सैन्य गर्वनर के रूप में नियुक्त किया गया था, चार्ल्सटाउन और कैम्ब्रिज में गढ़-सेनाओं द्वारा संग्रहित किए गये हथियारों को जब्त कर लिया और बोस्टन शहर में अपनी स्थिति मजबूत करना शुरू कर दिया। ब्रिटिश संसद ने फरवरी 1775 में मैसाचुसेटस को विद्रोह की स्थिति में घोषित कर दिया और विद्रोह को कुचलने के लिए बल का उपयोग करने के लिए जनरल गेज को अधिकृत कर दिया। 14 अप्रैल, 1775 को जनरल गेज को ब्रिटिश सरकार से आदेश मिला कि विद्रोही नेताओं को निरस्त्र करके और गिरफ्तार करके ब्रिटिश सरकार की स्थिति को मजबूत किया जाए। ब्रिटिश सैनिकों ने 18 अप्रैल, 1775 की रात को कॉनकॉर्ड में देशभक्तों द्वारा संग्रहित हथियारों को जब्त करने के लिए बोस्टन छोड़ दिया। अमेरिकी देशभक्त जासूसों ने ब्रिटिश सैनिकों की गतिविधियों की जानकारी दी और बोस्टन से लेक्सिंगटन तक अमेरिकी अर्धसैनिक दस्ते (जो एक मिनट में सैन्य सेवा के लिए उपलब्ध हो सकते थे) जिन्हें मिनटमैन कहा जाता था, काफी संख्या में एकत्र हो गए। अगले दिन ब्रिटिश सैनिकों और न्यू इंग्लैंड के मिनटमैनों के बीच टकराव एक पूर्ण युद्ध में तबदील हो गया। इसी बीच दूसरी महाद्वीपीय कांग्रेस की बैठक दुबारा फिलाडेल्फिया में हुई जिसने एक महाद्वीपीय सेना के निर्माण को अधिकृत कर दिया और 15 जून, 1775 को जॉर्ज वाशिंगटन को अमेरिकी क्रांतिकारी सेना-बल का कमांडर नियुक्त कर दिया गया।

हालांकि कुछ लोग अभी भी ढुलमुल रवैया अपनाये हुए थे और शांति की उम्मीद कर रहे थे, लेकिन आखिरकार 4 जुलाई, 1776 को महाद्वीपीय कांग्रेस ने एक दस्तावेज को स्वीकार किया जिसमें स्वतंत्रता की घोषणा की गई। इस घोषणा का मुख्य विचार यह

था कि लोगों के पास एक प्रकार के अहरणीय अधिकार हैं और इसमें जेफरसन ने स्पष्ट किया कि यदि सरकार इन अधिकारों की अवहलेना करती है तो यह शासन के अधिकार को खो देती है। जेफरसन ने इसे इस प्रकार स्पष्ट किया कि लोगों को इस सरकार को उखाड़ फेंकने का अधिकार है और इस उद्देश्य के लिए बल प्रयोग उचित था। वे एक अपनी स्वयं की सरकार बना सकते हैं, जो उनके अधिकारों की रक्षा करेगी और उनको मान्यता देगी। जब जेफरसन ने 'लोगों' की बात की, तो उनके दिमाग में केवल मुक्त गोरे लोग थे। महिलाओं और दासों को किसी भी अधिकार से वंचित कर दिया गया था। इसलिए घोषणा एक तरह से प्रतिबंधात्मक थी कि सभी लोगों के साथ समान व्यवहार नहीं किया गया था। घोषणा ने ब्रिटेन के साथ सम्बंध तोड़ने और उपनिवेशों को स्वतंत्र राज्य घोषित करने के कारणों को भी समझाया।

बोध प्रश्न 2

1) ब्रिटिश राज और इसके अमेरिकी उपनिवेशों के बीच बढ़ती शत्रुता की प्रक्रिया पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) ब्रिटिश राज के खिलाफ अमेरिकी उपनिवेशों के लोगों के प्रतिरोध की प्रकृति की जाँच कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

10.10 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि अमेरिकी उपनिवेशों की प्रकृति दुनिया के बाकी हिस्सों के उपनिवेशों से कैसे अलग थी और उन्हें कुछ हद तक स्वायत्तता और स्व-शासन प्राप्त था। फ्रांस के साथ ब्रिटेन के सप्तवर्षीय युद्ध के बाद यह सम्बंध बदल गया। इस महायुद्ध के बाद पैदा हुई आर्थिक परेशानियाँ धीरे-धीरे ब्रिटिश राज और अमेरिकी उपनिवेशों के बीच बढ़ती शत्रुता का कारण बनी। उपनिवेशों की जातीय और धार्मिक संरचना ने इस शत्रुता को एक विशिष्टता प्रदान की। यह अमेरिकी उपनिवेशों में विकसित हुए विरोध और प्रतिरोध की पृष्ठभूमि थी। यह अंततः एक क्रांतिकारी युद्ध और संयुक्त राज्य अमेरिका के निर्माण का अंतिम कारण बना। यद्यपि एक गणतंत्र अमेरिका के क्रांतिकारी युद्ध के बाद पैदा हुआ था, यह वास्तव में सम्पत्तिवान गोरे पुरुषों का एक गणंतत्र था, जिस पर इस गणतंत्र के जन्म पर सामाजिक पदानुक्रमों

की पूरी छाप थी। यह एक सीमा-बंधन था जिसके खिलाफ लोकतांत्रिक और नागरिक अधिकारों को बाद में संघर्ष करना पड़ा।

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 10.2 देखें।

2) भाग 10.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 10.5 देखें।

2) भाग 10.6, 10.7 और 10.8 देखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 11 यूरोप में कृषि और जनसांख्यिकीय परिवर्तन*

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 यूरोपीय महाद्वीप में कृषि की स्थिति

- 11.2.1 फ्रांस
- 11.2.2 जर्मनी
- 11.2.3 नीदरलैंड्स
- 11.2.4 रूस

11.3 ब्रिटेन में कृषि व्यवस्था और कृषि क्रांति

11.4 जनसांख्यिकीय प्रवृत्तियाँ

11.5 मृत्यु दर : अकाल, महामारियाँ और युद्ध

11.6 विवाह प्रतिमान : जन्मक्षमता, जन्म और मृत्यु दर

11.7 सारांश

11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने पर आप समझ पायेंगे;

- कृषि की दृष्टि से अठाहरवीं शताब्दी का महत्व,
- उत्तर-पश्चिमी यूरोपीय देशों में कृषि परिवर्तन,
- फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैंडस् तथा कुछ अन्य देशों में कृषि स्तर और विविधता,
- ब्रिटेन की 'कृषि क्रांति' का स्वरूप और परिणाम,
- कृषि परिवर्तन और जनसांख्यिकीय वृद्धि के बीच सम्बन्ध,
- आबादी की प्रवृत्ति को निर्धारित करने वाले तत्व, और
- अर्थव्यवस्था में उद्योग और वाणिज्य की तुलना में किस प्रकार कृषि का अंश रोज़गार और धन उत्पादन के संदर्भ में घट रहा था।

11.1 प्रस्तावना

पूर्व-आधुनिक यूरोप की अर्थव्यवस्था में कृषि सदैव ही मूल खण्ड रहा था। आबादी के प्रमुख भाग को कृषि क्षेत्र में ही रोजगार मिलता था। अठारहवीं शताब्दी तक इंग्लैंड, नीदरलैंडस् और उत्तर-पश्चिमी देशों को छोड़ अधिकांश यूरोप में शायद ही तकनीकी में नयापन लाया गया था। जहाँ कृषि व्यवस्था प्राकृतिक थी या सिर्फ जीविका-केन्द्रित

* इकाई लेखकः प्रो. अरविन्द सिन्हा

अर्थव्यवस्था थी जो प्राकृतिक साधनों पर निर्भर करती थी, वहाँ कृषि और जनसंख्या के बीच घनिष्ट सम्बन्ध थे। यह कहना कठिन है कि आबादी में वृद्धि कृषि उत्पादन के तरीकों में सुधार और अधिक पोषक आहार के कारण हुई थी या बढ़ती हुई जनसंख्या ने कृषि पर दबाव डाला जिससे नयी भूमि को जोतने के लिए जंगल, पहाड़ी क्षेत्र, बंजर भूमि और दलदली क्षेत्र हासिल किए गये। जनसंख्या की बढ़ने की प्रवृत्ति को समझने के लिए उसके कारणों का परीक्षण करना जरूरी है। अठाहरवीं शताब्दी तक भूमि की किस्म या पानी की उपलब्धता कृषि तरीके के इतने महत्वपूर्ण कारण नहीं रहे थे जितना कि बाजार का दबाव, जिसने उत्पादन स्वरूप को परिवर्तित किया। इस काल में कृषि क्रांति ने कृषि बदलाव को और नवोदित औद्योगिक क्षेत्र के योगदान को प्रदर्शित किया। इन सबको जानने के लिए यूरोप में कृषि विविधिता और जनसांख्यिकीय प्रवृत्ति का अध्ययन करना आवश्यक है।

11.2 यूरोपीय महाद्वीप में कृषि की स्थिति

एक शताब्दी की अधोगति और प्रगतिरोध के उपरान्त अठाहरवीं शताब्दी में कई राज्यों की अर्थव्यवस्था विकास और विस्तार प्रदर्शित करती थी। उत्तर-पश्चिमी देशों में कृषि विकास के लक्षण स्पष्ट नजर आ रहे थे यद्यपि अधिकांश यूरोप सामंतीय प्रणाली से बंधा था। वस्तु निर्माण ग्रामीण कुटीर उद्योग और पूंजीवादी संबंध की दिशा में परिवर्तित हो रहा था। सत्रहवीं शताब्दी यूरोप के मध्य और दक्षिण क्षेत्रों में मंदी का काल चल रहा था। इंग्लैंड में कृषि क्षेत्र का रूपान्तरण तकनीकी उन्नति के साथ आरम्भ हो गया था जो अगली शताब्दी में भी चलता रहा जिसने उत्पादकता की वृद्धि में योगदान दिया। यूरोपीय कृषि उन्नींसवीं शताब्दी के आरम्भ तक असमानता का चित्र प्रस्तुत करती थी जहाँ उत्तर एवं पश्चिमी यूरोप में कृषि प्रणाली पूंजीवादी ढाँचे की ओर जा चुकी थी, परन्तु मध्य, पूर्वी और दक्षिणी क्षेत्रों में अभी भी सामंतवादी रुकावटों के विरुद्ध संघर्ष चल रहा था। आपने पहली इकाई में यूरोप के विभिन्न भागों में कृषि की स्थिति का अध्ययन कर रखा है। इस इकाई में हम कुछ प्रमुख देशों में अठाहरवीं शताब्दी के दौरान कृषि का मूल्यांकन करेंगे।

11.2.1 फ्रांस

क्षेत्रीय दृष्टि से फ्रांस इंग्लैंड के कुल क्षेत्रफल से लगभग चार गुणा अधिक है। पूर्व-आधुनिक फ्रांस के विद्वानों ने अठाहरवीं शताब्दी की अर्थव्यवस्थाओं को दो प्रमुख भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित किया है – क) उत्तर का फ्रांस जो अनाज के उत्पादन का विशिष्टीकरण हासिल किए था और ख) दक्षिण फ्रांस के अंगूर बागान और वाइन उत्पादन क्षेत्र। फ्रांस का अटलांटिक महासागर और भू-मध्यसागर के साथ लम्बा समुद्रीय तट था। औपनिवेशिक व्यापार के बढ़ने से तटीय क्षेत्र में शहरों और उद्योगों का विस्तार हुआ परन्तु फ्रांस के आन्तरिक प्रान्त सामंतीय कृषि व्यवस्था में बंधे रहे जहाँ उत्पादकता बहुत कम थी। इसके बावजूद पेरिस के समीप सिन घाटी (Seine Valley) आर्थिक रूप से काफी अग्रिम क्षेत्र था जहाँ पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध उभर रहे थे। शेष फ्रांस में सामंतीय ज़मीदारी व्यवस्था कृषि जीवन की प्रबल पहलू थी। यह ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों का आधार था तथा पुरानी सत्ता के आर्थिक ढाँचे का अभिन्न अंग था।

फ्रांस में किसान स्तरित समुदाय में गठित थे और वे बहुत ही गरीब थे। वे अर्ध-श्रमिक समुदाय के रूप में थे और अलग-अलग नाम से जाने जाते थे – जैसे मानूवरिय, जूर्नालिटा इत्यादि। इनके पास भूमि की छोटी-छोटी इकाइयाँ थीं जो उनकी आजीविका के लिए पर्याप्त नहीं थीं। इसलिए उन्हें दूसरों की भूमि पर काम करना आवश्यक हो जाता था। किसी भी प्रकार का संकट उन्हें मजदूरों की श्रेणी में धकेल देता था। प्रायः ये सामंतीय व्यवस्था का शोषित वर्ग था और इनका शोषण का रूप एक स्थान से दूसरे स्थान में भिन्न था। सामान्य रूप से इन्हें स्वामित्व अधिकार नहीं था परन्तु शताब्दियों से एक ही भूमि पर जोतदार बने रहने से ये मालिकाना स्तर में गिने जाने लगे थे। फ्रांस की सरकार ने भी अपने कर बढ़ाने के उद्देश्य से इन्हें सुरक्षित कर रखा था। कृषि क्षेत्र के मध्य वर्ग को *आरीकोतीय* कहा जाता था जो *मानूवरिय* से बेहतर स्थिति में थे। सब से धनी और सम्पन्न समुदाय *ग्रो फर्मिये* थे जिनके पास जोतने के लिए विशाल भूमि थी और खेती के साधन थे। जब सरकार ने 1763 और 1766 के अधिनियमों से वन और दलदली क्षेत्र से हासिल किए गए भूमि को कर मुक्त किया तो इस का प्रथम लाभ *ग्रो फर्मिये* ने उठाया था। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब अनाज के मूल्य बढ़ते जा रहे थे तो भूमि समामेलन से इसी वर्ग को लाभ हुआ था। भूमिपति वर्ग ने अनाज की कीमतों में वृद्धि और बढ़ते किराये का लाभ उठा कर किसानों पर नये कर लगा दिये। उन्होंने ग्रामीण उपज पर अपने अधिकारों को मजबूत कर लिया। किसानों की तीखी प्रतिक्रिया दो प्रकार के भूमि समामेलन पर देखी गयीः

क) ग्रामीण भूस्वामियों ने धीरे-धीरे अपनी भू-संपत्ति का विस्तार आसपास की जमीन खरीद कर या मोचन-निषेध के द्वारा हासिल कर लिया था तथा,

ख) बिखरे खेतों को छोटे किसानों से एक-एक करके हासिल किया गया।

इंग्लैंड के ग्रामीण दृश्य के विपरीत जहाँ मध्य श्रेणी के किसान नये जमींदार बन गये थे, फ्रांस का कृषि सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में अभी भी छोटे किसानों का ही संख्या की दृष्टि से आधिपत्य था। ऐल्फ्रेद सोबूल के अनुसार भू-सम्पत्ति अधिकार के बने रहने के कारण फ्रेंच कृषि ढाँचें का पुनर्गठन नहीं हो सका। वहाँ का सामंतीय ढाँचा शक्तिशाली राजतंत्र द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया और इस कारण कृषि संपत्ति का हस्तान्तरण कठिन हो गया। सामंतीय जागीरदारों द्वारा विशेष गैर-आर्थिक दमन के कारण कृषि परिवर्तन लाने में रुकावट हुई।

यह भी एक तथ्य है कि अठाहरवीं शताब्दी के दौरान ग्रामीण फ्रांस में कुछ परिवर्तन नजर आ रहे थे जैसे कि नई भूमि की प्राप्ति, ऊसर भूमि में कमी, उपज अनुपात का बढ़ना, कृषि व्यवस्था और कृषि तकनीकी में कुछ नयापन। हालांकि परिवर्तन की गति बहुत धीमी थी और केवल कुछ विशेष क्षेत्रों तक ही सीमित थी। इंग्लैंड जैसी कृषि क्रांति यहाँ नहीं हुई। शताब्दी के अधिकांश भाग में उत्पादन बढ़ती आबादी के साथ साथ चला परन्तु तकनीक और उत्पादकता को बदले बिना। इसी कारण मिशल मोरिनो का मानना है कि फ्रेंच कृषि का विस्तार, 'ठहराव में विकास' था। फिर भी पूंजीपति तत्व उन कुछ क्षेत्रों में उभर रहे थे जहाँ जमीन की उत्पादकता कुछ नये तरीकों और खाद्य के अधिक प्रयोग के अपनाने से बढ़ने लगी थी। उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों, जैसे कि फ्रेंच फ्लेंडरस् में कुछ सुधार देखा गया जहाँ बेलजियम और नीदरलैंड में प्रचलित कृषि के कुछ नए तरीकों को अपनाया गया। दुआमेल घू मोंसो ने 1751 ओर 1760 के बीच 6 खण्डों में 'कृषि सुधार की प्रस्तावना' प्रकाशित की। यह अधिकतर

इंग्लैंड में प्रचलित विचारों से लिए गए थे। इन विचारों को, विशेषकर तूर्गो और नेमूर जैसे *फ़िज़्योक्रेटिक* विचारकों द्वारा प्रचलित किए गये थे जो पूंजीवादी नमूने पर कृषि सुधार की वकालत कर रहे थे।

ग्रामीण फ्रांस में एक और उल्लेखनीय परिवर्तन था 'प्रबंधक' या 'फर्मीये जेनेयो' जैसे पेशेवर वर्ग का उत्कर्ष। वे पूंजीपति थे जो एक या अधिक भूमिपतियों से जमीन लेते थे और सामंतीय करों और अन्य शुल्कों और चर्च के करों को एकत्र करने की जिम्मेदारी निभाते थे और उससे अपना हिस्सा रखते थे। इंग्लैंड की तरह फ्रांस में भूमिबंदी आंदोलन नहीं था। अठारहवीं शताब्दी के मध्य से कुछ भूमिपतियों ने निजी स्तर पर फ्रेंच सरकार से अपने भूखण्ड के चारों ओर घेराबन्दी करने की माँग रखी थी परन्तु लुई पन्द्रहवें ने इस में दिलचस्पी नहीं दिखाई। फिर भी कुछ भूमिपतियों ने निजी रूप से छितरे भू-खण्डों को एकत्र किया जिससे कई भूस्वामी या जोतदारों को उनकी भूमि से बाहर कर दिया गया। यहां भूपतियों ने आधुनिक फार्म-प्रबन्ध लागू किया। जार्ज लेफेब्र ने इन्हें ग्रामीण बुर्जुआ वर्ग कहा। ये परम्परागत सामंतीय जागीरदारों से अलग थे क्योंकि इन्होंने भूमि का प्रयोग उत्पाद से लाभ लेने के लिए किया जबकि जागीरदार सिर्फ कर बढ़ाते रहते थे।

अठारहवीं शताब्दी के दौरान बढ़ती आबादी के दबाव और इसके साथ अनाज के बढ़ते मूल्य के कारण सामंतीय जागीरदारों की प्रतिक्रिया अपने खो रहे अधिकारों को पुनः स्थापित करने के रूप में हुई। उन्होंने सामंतीय शुल्क को और बढ़ाना शुरू किया। फ़सल शुल्क किसानों के लिए सबसे भारी साबित हुए। सम्पत्ति हस्तांतरण शुल्क जैसे कि लोद, वैंत और राशे जैसे कर प्रस्तावित किए गये, हालांकि सामंतीय प्रतिक्रिया एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में अलग-अलग थी। लिस और सोली के अनुसार, किसानों को लगभग 25 से 30 प्रतिशत उपज को थोड़े से सामंतीय भूपतियों को देनी पड़ती थी। 1720-29 और 1780-89 के बीच लगान 142 प्रतिशत बढ़ा जबकि कृषि वस्तुओं के मूल्य केवल 60 प्रतिशत बढ़े।

फ्रांस के अधिकांश भाग में लगभग तीन-चौथाई किसानों के पास पाँच हैक्टेयर से भी कम क्षेत्रफल की भूमि थी जो किसानों की स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए न्यूनतम थी। इनमें लगभग 25 प्रतिशत किसानों के पास जोतने के लिए मुश्किल से एक हैक्टेयर भूमि ही थी। इनके अतिरिक्त, किसान तेई (राज्य द्वारा भूमि कर), *तीथ* (चर्च द्वारा उत्पादन का 8 से 12.5 प्रतिशत वसूला जाना) तथा *कोर्वी* (सामंतों द्वारा सेवा कर लेना जो बाद में नकद में लिया जाने लगा) ने भूमि सुधार के प्रयत्नों को विफल कर दिया। बड़ी संख्या में छोटे-छोटे किसानों की उपस्थिति और सामंतीय ज़मीदारों द्वारा अधिकाधिक लगान वसूली ने भूमि प्रबन्ध और तकनीकी सुधार द्वारा उत्पादन बढ़ाने के प्रयास को रोके रखा। इतिहासकारों का मानना है कि अठाहरवीं शताब्दी में ग्रामीण मजदूरों और अर्ध मजदूरों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। लिस और सोली के अनुसार दैनिक मजदूरों का कुल ग्रामीण आबादी में अनुपात (1696 में) 12 प्रतिशत से बढ़कर (1789 में) 23.3 प्रतिशत हो गया। फ्रांस में औद्योगीकरण की गति बहुत धीमी थीं जिससे किसानों के इस समुदाय को काफी मुश्किलें सहनी पड़ी होंगी।

अठाहरवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रेंच ग्रामीण क्षेत्र में आर्थिक और सामाजिक विकास के प्रमुख मुद्दों पर विवाद है। मुख्य विवाद है कि सक्रमण काल में कृषि उत्पादन में ठहराव था या प्रगति थी। जां क्लोद तूतैन का कहना है कि 1750 और 1790 के बीच कृषि उत्पादन में 1.4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई जो कई अकालों के बावजूद इस काल

में कुल 60 प्रतिशत बढ़ी। दूसरी ओर मिशल मोरीनो ने इन आँकड़ों की क्रमबद्धता पर सवाल उठाया है। इनका मानना है कि पहली राष्ट्रीय स्तर पर जनगणना 1840 में की गयी थी जो दर्शाती है कि कृषि क्षेत्र में कुछ खास प्रगति नहीं हुई थी। उनके अनुसार कृषि क्षेत्र बहुत कमजोर और उतार-चढ़ाव की दृष्टि से असुरक्षित था, भारी करों के दबाव में था, कृषकों की भूमि सम्पत्ति छोटी छोटी इकाइयों में बंटी हुई थी जिसने मजदूरों का शहर की ओर स्थानांतरण को रोका।

एमानुअल ल रॉय लादूरी इस तर्क को अस्वीकार करते हैं और दावा करते हैं कि 1700-09 और 1780-89 के बीच उत्पादन में मुश्किल से 25 से 40 प्रतिशत वृद्धि हुई थी। लादूरी का यह कहना भी है कि फ्रांस में कृषि क्रांति अनुभव नहीं की गयी थी। यद्यपि उत्पादन तो बढ़ा, परन्तु उत्पादकता (जिसे नई फसल, नई तकनीक प्रति एकड़ उत्पादन वृद्धि में नापा जा सकता है) में कोई परिवर्तन नहीं आया।

अठाहरवीं शताब्दी में कृषि जीवन का सबसे अधिक विवादप्रद पहलू था, ग्रामीण सामूहिक भूमि। इसने ग्रामीण जीवन के सामूहिक स्वरूप को पुनः स्थापित किया। यह व्यक्तिगत स्वामित्व के स्थान पर सामंतवादी, 'संयुक्त प्रयोग' के सिद्धान्त पर आधारित था। अठाहरवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वाणिज्यवादी नियंत्रण के समर्थक और उनके कट्टर विरोधी फ़िज़्योक्रेट्स, जिसमें प्रमुख रूप से शामिल थे, वेन्सैंट द गूर्ने, कज़्ने, नेभूर इत्यादि, के बीच एक कड़वी बहस हुई। गूर्ने ने *ऐन्साईक्लोपेडिया* (1756-57) में छपे लेख में फ्रेंच कृषि के पतन के कारण दो बातों में ढूंढे हैं – भारी करों और विदेशी व्यापार पर प्रतिबंध के कारण अनाज की गिरी हुई कीमत। गूर्ने ने बड़े स्तर की खेती, कृषकों की सम्पन्नता और कृषि क्षेत्र में पूंजी निवेश की वकालत की। फ़िज़्योक्रेटस् कृषि को धन का वास्तविक स्रोत मानते थे ओर वे अर्थव्यवस्था को प्राकृतिक नियमों के अनुरूप बनाना चाहते थे। वे बड़े पैमाने पर पूंजीवादी खेती पद्धति की वकालत करते थे, निजी सम्पत्ति को बढ़ावा देते थे, श्रेणी विभाजन और सामंतवादी व्यवस्था से उत्पादकों को मुक्त करना चाहते थे, भूमि को काश्तकारी बुर्जुवा रूप में विकसित करने, सामंतीय परम्पराओं से मुक्ति और पूंजीवादी लगान के पक्ष में थे। यह विद्वान समुदाय सरकारी नियंत्रण के विरोधी थे और इनमें से वित्त मंत्री नेकर ने 1776 में अनाज के मूल्यों को सरकारी नियंत्रण से मुक्त कर दिया। उस समय के प्रसिद्ध कृषि अर्थशास्त्रकार हेनरी लियोनार्द बर्तिन ने सामूहिक प्रथाओं को भंग करने और सामूहिक भू-काश्तकारी को 1761 और 1766 के अध्यादेशों द्वारा समाप्त करने का प्रयास किया। लांगदोक में 1770 का भूमि निकासी-विक्रय कानून कृषि क्षेत्र में व्यक्तिवादी सिद्धान्त की विशेष वैधानिक विजय थी।

फ्रेंच कृषि के विषय में दो विपरीत चित्र प्रस्तुत किये गये हैं – एक आर्थर यंग द्वारा जो प्रसिद्ध अंग्रेज यात्री और विद्वान था जिसने 1787 और 1789 के दौरान फ्रांस का भ्रमण किया था। दूसरा ऐलेर्स द तोकविय, जो 1840 और 1850 के दशकों में मंत्री, लेखक और इतिहासकार था। अपनी पुस्तक 'ट्रेवलस् इन फ्रांस' में आर्थर यंग ने लिखा कि फ्रांस एक ऐसा देश है जिसमें विशेष अधिकार और गरीबी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। 1788 में उनका कथन था कि उप-विभाजन और जोत क्षेत्र के फैलाव ने फसल की विविधता और चयनात्मक प्रजनन में अधिकतम् बाधाएँ उत्पन्न की हैं। जहाँ आर्थर यंग ने फ्रेंच कृषि की उदासीन तस्वीर प्रस्तुत की जिसमें निर्धनता और पिछड़ेपन को प्रस्तुत किया गया, तोकवीय ने कि कृषि क्षेत्र की उन्नति को उजागर किया।

फ्रेंच क्रान्ति ने 1789 और 1793 के कानूनों द्वारा सामंतीय ढाँचे को अचानक तोड़कर बदलाव लाया और साथ ही सामंतीय सत्ता का विघटन कर दिया जो सामंतों के विशेषाधिकार और कर प्राप्ति के अधिकार पर आधारित थी। यद्यपि इसका परिणाम तुरन्त महसूस नहीं किया गया और ग्रामीण फ्रांस का वास्तविक पुनर्गठन उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक उभरकर आया जब नयी प्रकार की संचार व्यवस्था, रेलमार्ग और विशाल उद्योगों का आगमन हुआ जिन्होंने राष्ट्रीय बाजार की स्थापना की और फ्रांस के आन्तरिक और दूरगामी क्षेत्रों को आपस में जोड़ा।

11.2.2 जर्मनी

जर्मनी में कृषि वैसी ही हालत में थी जैसी फ्रांस में क्रांति के पहले थी। जर्मनी ने कुलीनों की प्रबुद्धवादी लेखकों द्वारा निरन्तर आलोचना की जाती रही परन्तु इसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। कृषि सुधार की गति अत्यंत धीमी थी तथा कृषक दासों की उन्मुक्ति के बावजूद सामंतीय सम्बन्ध टूटे नहीं थे। वास्तविक परिवर्तन उन्नीसवीं शताब्दी में ही पाया।

अठारहवीं शताब्दी के दौरान जर्मनी में सामजिक-आर्थिक परिवर्तन के लक्षण नजर आ रहे थे, जो कृषि समाज को धीमी गति से बदल रहा था। 1756 के बाद आबादी में वृद्धि साफ नजर आ रही थी। इससे पहले 1740 के दशक में ऑस्ट्रिया के उत्तराधिकार युद्ध और सातवर्षीय युद्ध के कारण वृद्धि में रुकावट आ गयी थी। औद्योगिक उत्पादन में तथा आबादी में वृद्धि ने अनाज की और कच्चे माल की माँग से कृषि को बढ़ावा दिया और इससे मार्केट का विस्तार हुआ। शहरों के बढ़ने से और शहरीकरण की प्रक्रिया ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर दबाव डाला। कृषि परिवर्तन की उत्प्रेरक थी आबादी वृद्धि जैसा इंग्लैंड में हुआ था, मगर जर्मनी में परिवर्तन बहुत देर से आया था। खाली भूमि को खेतीबाड़ी में लाने और कृषि सुधारों ने उत्पादन बढ़ाने में योगदान दिया। प्रबुद्धवादी विचारधारा ने जर्मन शासकों को राज्य प्रयासों में सुधार लाने के लिए प्रोत्साहित किया। बढ़ती आबादी का पेट भरने में त्री खेतीय व्यवस्था (Three field system) ने और फसल की अदला-बदली से प्रति एकड़ भूमि उत्पादन में वृद्धि ने योगदान दिया। नयी फसलों में मक्का था जिसने परम्परागत अनाज को जर्मनी में बेडेन, वुहेनबर्ग, पैलाटाइन इत्यादि राज्यों में अनुपूरित किया। आलू की फसल की वकालत राज्य सरकारों द्वारा की गयी परन्तु इस का शुरू में किसानों द्वारा विरोध किया गया था हालांकि अनुभव से इसके लाभ नजर आने लगे। ये फसल अनुपजाऊ भूमि में और प्रतिकूल जलवायु में भी लगाई जा सकती थी। जब 1770-71 में अकाल पड़ा और पर्याप्त अनाज नहीं उगाया जा सका तब आलू की खेती ने जीवन रक्षक की भूमिका निभायी।

जर्मनी की खेती ने औद्योगीकरण में कच्चा माल प्रदान किया, जैसे कि फ्लैक्स, सन, कासनी, हेम्प, तम्बाकू, और वाइन के लिए अंगूर इत्यादि। हेम्प द्वारा रस्सी बनायी जाती थी; इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग रोजमर्रा खुरदरा कपड़ा बनाने के लिए भी किया जाता था और तेल निकालने के लिए भी। फ्लैक्स उच्च किस्म के कपड़े बनाने के लिए प्रयोग होता जो साइलेशिया, वेस्टफेलिया, हेनोवर और बोहेमिया में उगाया जाता था। कसानी का प्रयोग कॉफी के बदले किया जाता था और तम्बाकू का उत्पादन सरकार द्वारा प्रोत्साहित किया गया परन्तु विशेष सफलता नहीं मिली। अठाहरवीं शताब्दी के अन्त तक इनमें से किसी भी फसल में जर्मनी ने विशिष्टीकरण हासिल नहीं किया या अन्तर्राष्ट्रीय मार्केट में जर्मनी को उच्च स्थान नहीं मिला। यूरोप

के कई भागों में सत्रहवीं शताब्दी के अन्त से घास के मैदानों का विस्तार अपने में एक विशेष घटनाक्रम था। इसने पशुपालन को प्रोत्साहित किया और बड़ी मात्रा में खाद प्रदान किया जिसने कृषि को मदद की। अठाहरवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों के दौरान कृषि पद्धति में कुछ सुधार आया जैसे कि खाली भूमि में खेती, नाइट्रोजन-स्थाईकर (nitrogen-fixing plants) पौधें लगाना और घास स्थल व पशुपालन को बढ़ावा देना। भूमि का सही उपयोग एक अन्य विकास था जो अठाहरवीं शताब्दी में आरम्भ हुआ परन्तु इसका फल अलग शताब्दी में दिखाई। मेथी, सब्जियों के पौध और आलू, शलगम जैसी जमीन के नीचे लगाने वाली फसलों के आने से खाली भूमि रखने की प्रथा और त्री खेतीय प्रणाली लुप्त होने लगी। परती छोड़ी हुई भूमि को कृषि योग्य बनाया गया। प्रबुद्ध शासकों द्वारा शक्तिशाली कुलीनों के विशेषाधिकार सीमित कर दिये गये और सीमित रूप से बाड़बंदी का आरम्भ हो गया। लेकिन सामंतीय ढाँचे का विघटन आरम्भ नहीं हुआ।

इंग्लैंड के समान जर्मनी में भी भूमि सम्बन्ध पर मार्केट शक्तियों का प्रभाव पड़ने लगा था परन्तु कुलीन वर्ग की समाप्ति अकेले शासक नहीं कर सके थे। नए भूमिपति वर्ग का पूंजीपतियों और सैनिक तत्वों के साथ उत्थान उन्नीसवीं शताब्दी में ही संभव हो सका जब वो संयुक्त जर्मनी की शक्ति के मुख्य स्तंभ बन गये। अठाहरवीं शताब्दी में ऐल्ब नदी के पूर्व और पश्चिमी भागों की कृषि व्यवस्था में धीरे-धीरे अन्तर उभरने लगा था। पश्चिमी क्षेत्र में सीमित रूप से वाणिज्यीकरण और कृषि क्षेत्र के तीव्रीकरण का अनुभव किया जा रहा था। दूसरी ओर पूर्वी क्षेत्र सामंतीय शासक और कुलीनों के घनिष्ठ जाल में बंधे रहे। इन्होंने पूंजीवादी मार्केट पद्धति के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न की। जर्मनी में भूमिपति परिवार प्रथम विश्व युद्ध तक राजनैतिक शक्ति के भागीदार बने रहे।

11.2.3 नींदरलैंड्स

इंग्लैंड के समान अठारहवीं शताब्दी में नीदरलैंड्स के भूमिपतियों ने कृषि समस्याओं पर काबू कर के खेती करने के नये तरीके और नई तकनीकी को अपनाया। इनमें खुली भूमि की घेराबन्दी/बाड़बन्दी और फसल को अदल-बदल कर लगाना सबसे महत्वपूर्ण था। भू-सम्पदा-अर्थव्यवस्था के प्रयोग केन्द्र दक्षिण नींदरलैंड्स, फ्लेंडर्स् और ब्राबांत में केन्द्रित थे जहाँ आनुपातिक रूप से यूरोप की अधिकतम् पैदावार हासिल किया गया। यह उच्च श्रमगहन खेती, अच्छी किस्म की खाद, फसल की अदल-बदल के नये तरीके, अच्छे किस्म का चारा और मार्केट के लिए वाणिज्य फसल द्वारा सम्भव हुआ। इसके परिणामस्वरूप अठाहरवीं शताब्दी के मध्य में यह क्षेत्र अनाज के कुल वार्षिक उत्पादन का 5 प्रतिशत निर्यात कर रहा था।

हालैंड को छोड़ अनाज की उपज नींदरलैंड्स के अधिकांश भाग में की जाने लगी थी। हालांकि चावल वहाँ की मुख्य फसल थी। इसका जिन और ब्रेड के लिए प्रयोग किया जाने लगा था। खाद्य की कमी में इसका प्रयोग ओटस् और अन्य अन्न के साथ मिलाकर ब्रेड बनाने में किया जा सकता था। अठाहरवीं शताब्दी में गेंहूँ के ब्रेड के उपभोक्ता बढ़ गए थे। जीलैंड जैसे क्षेत्र में माँग बढ़ने के कारण गेंहूँ की खेती की जाने लगी थी। परन्तु गेंहूँ का निर्यात घटने लगा और मूल्यों में अचानक वृद्धि से गेंहूँ का प्रयोग घटता गया। अन्य क्षेत्रों में राई की खेती किसानों में लोकप्रिय थी। कुट्टू जैसे खाद्य पदार्थ गेंहूँ का स्थान ले रहे थे और 1798 तक जे. ए. वैन हूत के अनुसार, हालैंड के कुल अनाज उपभोग का 17 प्रतिशत कुट्टू हो गया था।

आलू एक अन्य फसल थी जो ब्रबांत, जीलैंड, उट्रेच और फीसलैंड में तेजी से लोकप्रिय हो रही थी। इसकी लोकप्रियता का कारण था अकाल के समय अनाज की ऊँची कीमत। किसान आलू को इसलिए भी पसंद करते थे क्योंकि वो तीथ तथा अन्य बढ़ते हुए करों से मुक्त था। अठाहरवीं शताब्दी में फ्लेक्स, सन, हेम्प, तम्बाकू जैसी फसलें कई राज्यों में उगाई जा रही थी। इस क्षेत्र में 1750 के बाद इस कपड़ा उद्योग के पतन से फ्लैक्स की खेती पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

फ्लेंडर्स् में आबादी का घनत्व अधिक और छोटे भू-स्वामित्व होने के बावजूद फसलों की अदला-बदली ने इस क्षेत्र की खेतीबाड़ी को तीव्रता प्रदान किया। यह नवाचार यहाँ से इंग्लैंड ने लिया था। फ्लेंडरस् ने पड़ोसी देशों को घनी खेती (intensive cultivation) के महत्व का फसल की अदला-बदली द्वारा दर्शाया। यह प्रक्रिया ऐंटवर्प, कैंम्पियर और उत्तरी ब्राबांत समेत कई क्षेत्रों में अपनायी गई। यह प्रक्रिया छोटे किसानों और बड़े भूमिपतियों द्वारा समान रूप से अपनाई गयी। खराब भूमि का प्रयोग चारा उगाने या आलू की खेती के लिए प्रयोग किया जा सकता था जो भूमि की छोटी इकाइयों पर किया जाने लगा। लिस और सोली के अनुसार, एक हेक्टर से कम के छोटे फार्म का अनुपात 1711 में 49 प्रतिशत था जो 1790 तक बढ़कर 66 प्रतिशत हो गया था। फ्लैंड्र्स में परम्परागत व्यवस्था टूटती जा रही थी क्योंकि भूमिपतियों ने आबादी के बढ़ते दबाव का लाभ उठाकर लगान बढ़ाने शुरू कर दिये थे और दूसरी तरफ व्यापारियों और निर्माताओं ने मजदूर वेतन को नीचे दबाए रखा। सत्रहवीं शताब्दी से लिनन उत्पादन क्षेत्र में प्रोटो-औद्योगीकरण के विस्तार से निर्माण कार्य शहरों से ग्रामीण क्षेत्रों की ओर खिसक गया जिससे शहरी श्रेणी व्यवस्था (गिल्ड व्यवस्था) के अड़ियलपन से बचा जा सके।

11.2.4 रूस

रूस के समस्या अन्य देशों से भिन्न थी। विशाल क्षेत्रफल और आबादी के घनत्व में बहुत कमी रूस की सरकार की एक प्रमुख समस्या थी। उसे किसानों की अत्यधिक संख्या की आवश्यकता थी जिनसे कर हासिल किए जा सके और सेना में भर्ती किया जा सके। यही कारण था कि सरकार द्वारा सामंतवादी सर्फ या भूदास प्रणाली ऊपर से थोपी गयी थी। इस की रूपरेखा, 1649 की कानून संहिता में शामिल की गयी थी (उलोज़ेनिऊ) जिसमें जबरन मजदूरी (बार्शचीना) भी सम्मिलित थी जिसके फलस्वरूप ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था (मिर) लुप्त हो गयी। व्यापक भूमिक्षेत्र की उपलब्धता और कठोर तरीकों से किसानों के शोषण के फलस्वरूप किसानों का निरन्तर पलायन होता रहा। गाँव एक दूसरे से पृथक थे और किसान सदैव परेशानी में थे। दक्षिणी रूस में 1667 से 1671 डकैती शुरू हुई जो बाद में सामंतवाद-विरोधी विद्रोह बन गया।

रूस में सामंतवाद जोर जबर्दस्ती की अलग-अलग सीमाओं के साथ चलता रहा जिसमें कर वसूली और श्रम सेवायें जागीरदारी अधिकार का भाग थीं। रूसी शासक जार और जमीदारों के आपसी हितों के जुड़ने से मजबूत हो गए थे। रूसी कृषकदासों की संख्या बढ़ती जा रही थी परंतु अठाहरवीं शताब्दी में वे बहुत असुरक्षित थे। उन्हें नए-नए प्रदेशों में भूमि जोतने के लिए भेजा जाता था। केथरीन महान् रूसी साम्राज्ञी एक प्रमुख प्रबुद्धवादी हस्ती थी परन्तु उसने 800,000 अर्ध-कृषक दासों को निजी स्वामित्व के अधीन कर दिया था। ये किसान अपनी इच्छा से विवाह नहीं कर सकते थे, या स्वयं अपने व्यवसाय का चयन बिना अपने स्वामी की अनुमति के नहीं कर सकते थे। अंतः जब उत्तर पश्चिमी यूरोप में सामंतीय ढांचा टूट गया था, रूस में सामंतीकरण

की प्रक्रिया का आरम्भ देर से हुआ जो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक चलता रहा।

11.3 ब्रिटेन में कृषि व्यवस्था और कृषि क्रान्ति

आर्थिक दृष्टि से ब्रिटेन कृषि और औद्योगिक क्षेत्र में नेतृत्व प्रदान करने लगा। इ. एच. हॉब्सबॉम के अनुसार, इंग्लैंड में कृषि का महत्व दो कारण से था – पहला, वो उद्योग का अपरिहार्य आधार था, और दूसरा, भूमिपतियों के हित ब्रिटिश राजनीति तथा समाज पर छाये रहते थे।

इंग्लिश कृषि ढाँचे में मुख्य परिवर्तन सत्रहवीं शताब्दी के मध्य की बुर्जुआ क्रांति के उपरान्त अनुभव किये गये। इस से भूमि सम्बन्धों में पूंजीवाद का आगमन हुआ जिसने भू-काश्तकारी सहित सामंतीय आर्थिक ढाँचे को समाप्त कर दिया। देश के सम्पूर्ण रोजगार में कृषि का योग पूरी शताब्दी में निरन्तर घटता गया जो 1700 में 80 प्रतिशत था परन्तु 1800 तक लगभग 40 प्रतिशत रह गया। इस घटते श्रेय के बावजूद कृषि शक्ति बढ़ती आबादी की खाद्य पूर्ति करती रही।

सोलहवीं शताब्दी कृषि प्रणाली में निर्णायक बदलाव आरम्भ हो चुका था। रॉबर्ट ब्रेनर के अनुसार इंग्लैंड का शासक वर्ग तमाम् यूरोप में अधिकतम् स्व-संगठित था तथा कृषकों का शोषण करने का सामर्थ रखता था। अठाहरवीं सदी तक उसने किसानों को बाड़ाबन्दी से उनकी भूमि के बाहर कर दिया। भूमिपतियों ने अपने सम्पत्ति अधिकारों का फायदा उठा कर छोटे किसानों के परम्परागत अधिकारों और पट्टेदारियों को सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में कमजोर कर दिया और जिसने भूमि की जोताई को पूंजीवादी दिशा में संगठित की।

फिलिस डीन का मानना है कि ब्रिटेन की कृषि क्रांति की चार प्रमुख विशेषताएँ थीं। पहली बात की अब खेतीबाड़ी चकबन्दी इकाइयों में की जाने लगी बजाय कि मध्य-कालीन खुले खेती में। दूसरा, खेती विस्तृत कृष्य भूमि पर की जाने लगी बजाय कि बंजर भूमि पर और गहन पशुधन कृषिकर्म कार्य अपनाया गया। तीसरा, इसका मतलब था कि आत्मनिर्भर ग्रामीण समुदाय के किसानों को बदल कर मज़दूर और दूरस्थ बाजारों पर आश्रित समुदाय बना दिया गया। चौथे, इससे कृषि उत्पादकता को बढ़ाया जा सका। ये सभी विशेषताएँ अठाहरवीं शताब्दी तक नजर आने लगी थीं।

बाड़बन्दी

ग्रामीण जीवन को बदलने में बाड़बन्दी आन्दोलन एक महत्वपूर्ण कारण था, जिसने इंग्लैंड में 'कृषि क्रान्ति' लाने में योगदान दिया। अठाहरवीं सदी तक खेत जोतने की पद्धति एक से दूसरे क्षेत्र में भिन्न थी। खुली भूमि में खेती के चलते रहने या उसे बाड़ाबंदी में परिवर्तित होना बहुत से कारणों पर निर्भर करता था जैसे कि भूमि की किस्म, फसल और मार्केट से दूरी। अठाहरवीं शताब्दी में भी इंग्लैंड की लगभग आधी कृषि-भूमि में खुली खेती पद्धति का मिश्रित रूप ही चल रहा था।

बड़े-बड़े भू-खन्डों के किसान अपनी भूमि की चकबन्दी करना चाहते थे, जिससे वे नए तरीकों को अपना कर मुनाफा कमा सके। मध्य काल से ग्रामीण इंग्लैंड में खुली खेती का प्रभुत्व था। बड़े जमीदारों के खेत छितरे हुए थे और इधर उधर थे और उनके बीच उनके पड़ोसियों के निजी खेत थे। इस तरह के भूमिपति अपने बिखरे खेतों के

कारण परम्परावादी तरीकों से ही खेतीबाड़ी करते थे। खुले खेतों के कारण उत्पादन के नये तरीकों और तकनीकी को अपनाने में बाधा हो रही थी क्योंकि ग्रामीण समुदाय ही निर्धारित करता था कि कौन-सी फसल लगायी जायेगी या प्रत्येक सदस्य कितने पशु चराने ले जा सकता था या वन से कितनी लकड़ी ले सकता था।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त से निजी बाड़ाबंदी की शुरुआत हो गयी थी परन्तु चकबंदी की प्रक्रिया को संसद द्वारा कानूनी रूप अठारहवीं सदी में प्रदान किया गया। सोलहवीं शताब्दी में टयूडर शासकों ने बाड़बन्दी को प्रोत्साहन नहीं दिया क्योंकि उन्हें सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल का भय था। उनके हित किसानों को भूमि से बाँधे रखने में ही थी क्योंकि बाड़बन्दी से बड़े पैमाने पर किसानों को भूमि से बाहर होना पड़ता। बाड़बन्दी के प्रति जोश सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक रूका रहा और फिर राजनीतिक शक्ति नए भूमिपति वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के हाथों आ गयी। स्वेच्छा से बाड़बन्दी के प्रयासों को पूरा करना बहुत मुश्किल था क्योंकि पिछले कानूनों में अनिवार्य था कि बाड़बन्दी करने के पहले गाँव के गरीब किसानों सहित सभी ग्रामीण सदस्यों की स्वीकृति हो। अब संसद प्रायः बाड़बन्दी कानून गांव के पैटशिन के जवाब में पारित करती थी जिसे 4/5 भूमि के धार्मिक भूमिपतियों सहित भू-मालिकों का समर्थन प्राप्त होता था। भूमि की बाड़बन्दी प्रक्रिया बहुत कठिन और महंगी थी। भूमि का सर्वेक्षण और पुनःवितरण पुराने जोत क्षेत्र के अनुपात में ही किया जा सकता था।

बाड़बन्दी का पहला संसदीय कानून 1710 में लाया गया था परन्तु इस दिशा में प्रगति बहुत धीमी थी। इसकी गति 1760 के बाद ही बढ़ सकी। 1750 और 1760 के बीच संसद ने 156 बाड़बन्दी के कानून पास किए जो 1810 तक 906 हो गये। लिस और सोली के अनुसार 1761 और 1815 के दौरान 600,000 हैक्टेयर सामूहिक और परती भूमि की बाड़बन्दी की गयी थी। इतिहासकारों का मानना है कि संसदीय कानूनों द्वारा खेतों की बाड़बन्दी इंग्लैंड के कृषि परिवर्तन का सब से उग्र पहलू था। बाड़बन्दी प्रक्रिया वैसे तो सोलहवीं शताब्दी से शुरू हो गयी थी परन्तु अठारहवीं शताब्दी में इसने गति पकड़ी। इतिहासकारों में बाड़बन्दी के सामाजिक-आर्थिक महत्व को लेकर काफी बहस है।

एक धारणा है कि इस का महत्व शहरों के औद्योगीकरण की पूर्वशर्त के रूप में था। यह भी सुझाया गया है कि इससे कृषि संगठन और पशु पालन में निश्चित सुधार आया जिसने इंग्लैंड को यूरोप के देशों से आगे पहुँचा दिया। इंग्लैंड का कृषि उत्पादन 1750 के पश्चात् न केवल घर की माँग पूरी कर रहा था बल्कि अधिशेष का निर्यात करने लगा। कृषि वस्तुओं के मूल्यों में निरन्तर वृद्धि तथा बढ़ती हुई जनसंख्या ने पूंजीवादी कृषि पद्धति को बढ़ावा दिया। गेहूँ का निर्यात लगातार बढ़ता रहा और 1730 के दशक में उसने अचानक उछाल ली जो 1710 से 1719 तक 109,000 क्वाटर से बढ़कर 1720 से 1729 तक 116,000 तक हो गया और 1730 से 1739 तक 296,000 क्वाटर तक पहुँच गया (cwt या hundred weight)[1]।

तथापि, बाड़बन्दी के लाभ को वास्तविकता से अधिक नहीं आँका जाना चाहिए। इस का एक काला पहलू भी था। बाड़बन्दी को कृषि उत्पादकता बढ़ाने का एकमात्र कारण नहीं माना जाना चाहिए। इसने निश्चित रूप से तकनीकी प्रगति के मार्ग की बाधाओं को हटाया। लेकिन इसने परम्परागत अर्थव्यवस्था और छोटे किसानों की सुरक्षा को

[1] एक टन = 19.68 सी.डब्लू.टी.।

क्षति पहुँचाया। बाड़बन्दी कानूनों के द्वारा छोटे किसान और भूपति, जिन्होंने कानूनी रूप से स्वामित्व अधिकार प्राप्त कर रखा था, बाहर कर दिये गये। जो किसान बचे रह गये थे, उन्हें अपने धनी पड़ोसियों के सामने भूमि में पूंजी निवेश की होड़ में टिकना बहुत कठिन था। उन्हें अपनी जीविका कमाने शहर की ओर पलायन करना पड़ा। फिलिस डीन का कहना है कि खाने का उपभोक्ता स्तर ग्रामीण गरीबों में अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गिरने लगा था। छोटे किसानों की खुराक ब्रेड और चीज तक सीमित रह गयी थी। बाड़बन्दी ने उनसे चारागह और इन्धन व तालाबों में मछली पकड़ने के अधिकार छीन लिए थे, जो अब घेराबन्द भूमि के भीतर आ गये। गांव के प्राकृतिक अविर्भाव और सामाजिक भूदृश्य में व्यापक परिवर्तन आ गया। बड़े किसान के अपनी भूमि पर खेती करने के दृश्य लुप्त होते गये और उनका स्थान विशाल खेतों ने ले लिया जहाँ कटी हुई बाड़ ने भूमि के चारों ओर घेराबन्दी कर रखी थी। विशाल भू-सम्पदा और भव्य मेनर गृह, बगीचे और पार्क इत्यादि ने ग्रामीण क्षेत्र का दृश्य ही बदल दिया था।

बाड़बन्दी कानूनों के अतिरिक्त अठारहवीं सदी में कृषि क्रांति की कुछ विशेषताएँ थीं जिनसे इंग्लैंड का कृषि ढाँचा ही बदल गया। पहले भूमि की लगातार खेती करने से उसकी उत्कर्ष शक्ति घटती जाती थी और इस समस्या से निपटने के लिए भूमि को हर खेती के बाद खाली छोड़ने का प्रचलन हो गया जो बाद में दो या त्री-खेतीय पद्धति के रूप में अपनाई जाने लगी। इससे भूमि में नाइट्रोजन हासिल की जा सकती थी। किसानों में गरीबी के कारण उन्हे अधिक पशु रखना संभव नहीं था जिससे खाद प्राप्त की जा सके। बहरहाल सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक इंग्लिश कृषि प्रणाली अधिकांश रूप से परम्परागत बनी रही। कृषि तकनीकी में सुधार लाने में उत्पादकता में परिवर्तन आया। प्रथम प्रारम्भिक तकनीकी प्रयोग जिनसे उत्पादकता बढ़ी उनमें जेथरो टल द्वारा आवष्कृित एक औजार था। उन्होंने घोड़े द्वारा खींचे जाने वाला फावड़ा और यांत्रिक बीजाब्रज तैयार किया था जिससे किसान सीधी पंक्ति में बीजारोपण कर सकते थे। इसने फसल की कटाई भी आसान बना दी। इससे खेती श्रमगहन और अधिक उत्पादक बना दिया। लार्ड टाउनशेंड ने शलगम, मेथी तथा अन्य फसलों को अदल-बदल कर चक्रानुक्रम का महत्व दर्शाया। इस फसल के चक्रानुक्रम पद्धति के द्वारा बिना उत्कर्ष शक्ति खोये भूमि का निरन्तर प्रयोग कर सकते थे। विलियम कोक ने अनेकों पुस्तिकाओं में घास के खेत, नए उर्वरक जैसे खली और अस्थिरचूर्ण तथा कुशल भूमि-प्रबंध के लाभ के विषय में लिखा था। आर्थर यंग ने अपनी 1784 की पुस्तक 'अनाल्स ऑफ ऐग्रीकल्चर' में नए कृषि सम्बन्धी विचारों को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने किसानों के बीच नये विचारों पर आधारित प्रतिस्पर्धाएँ आयोजित की और कृषकों के क्लब आयोजित किये। इंग्लैंड के शासक जार्ज तृतीय स्वयं इन नए विचारों से बहुत प्रभावित थे और उन्होंने विंडसर में आदर्श फार्म बनायी जहाँ मैरीनों नस्ल की भेड़ पैदा करना आरम्भ किया। पूर्व में नॉर्फोक का नाम 'उच्च फार्म' की तकनीकी के कारण जाना गया जबकि पूर्वी केंट और वॉरसेस्टरशायिर ने फलों के बागान और हॉप के मैदानों को विकसित किया व ससैक्स और सर्रे ने कुछ कलहंस और खस्सी मुर्गो को मीट और अंडों के लिए पैदा करना आरम्भ किया

कृषि क्रांति के परिणामस्वरूप कृषि उत्पादकता और तकनीकी विकास सम्भव हुआ। सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों ने पहले के स्तर की अपेक्षा कहीं अधिक आबादी को बढ़ने दिया और इंग्लैंड को यूरोप में औद्योगिक प्रभुत्व स्थापित करने का मार्ग खोल

दिया। ब्रिटेन ने अधिकतम कृषि उत्पादकता का दर्जा हासिल कर लिया जो उन्नीसवीं सदी में यूरोपीय महाद्वीप के औसत से 80 प्रतिशत अधिक था।

कुछ विद्वान यह तर्क भी रखते हैं कि खाद सप्लाई में वृद्धि होने से इंग्लैंड और वेल्स में जनसंख्या वृद्धि हो पायी जो 1700 में 5.5 मिलियन से बढ़कर 1801 तक 9 मिलियन से अधिक हो गयी। कृषि उत्पादकता का बढ़ना और कुल श्रमशक्ति में कृषि क्षेत्र का हिस्सा घटना साथ-साथ हो रहा था क्योंकि नये साधनों को अपनाने से अधिकतम खाद उत्पादन संभव था जिसके कारण कृषि में मानव शक्ति का प्रयोग घट रहा था। घेराबंदी या बाड़बन्दी ने छोटे किसानों को खेतों से बाहर कर दिया था और उन्हें शहरी उद्योगों में मजदूरों में बदल दिया था। इस नए कृषि ढाँचे ने कृषि वस्तुओं के लिए विशाल राष्ट्रीय स्तर का बाजार तैयार कर दिया।

अठाहरवीं शताब्दी के अन्त तक उत्तर-पश्चिमी यूरोप में तेजी से जनसंख्या बढ़ी। बेल्जियम और नीदरलैंड्स ने कृषि उत्पादकता का ऊंचा स्तर हासिल कर लिया था। इंग्लैंड के बाद यही क्षेत्र यूरोप की सब से विकसित अर्थव्यवस्था बन गया था। 1800 तक इंग्लैंड ने सबसे कम ग्रामीण आबादी दर्ज की थी – 51 प्रतिशत जब कि स्पेन में यह 79 प्रतिशत थी तथा इटली में 74 प्रतिशत थी। 1700 सी. ई. में मुश्किल से 15 प्रतिशत यूरोपीय निवासी शहरों में रह रहे थे यद्यपि यह आँकड़े एक देश से दूसरे देशों में भिन्न थे।

बोध प्रश्न 1

1) सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के दौरान फ्रांस और जर्मनी में कृषि की स्थिति की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) इंग्लैंड में बाड़बन्दी आन्दोलन पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

11.4 जनसांख्यिकीय प्रवृत्तियाँ

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त से जनसांख्यिकीय इतिहास ने वृद्धि, पतन या ठहराव और फिर वृद्धि की अदल-बदल देखी जो हर क्षेत्र में भिन्न था। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त से जनसांख्यिकीय चढ़ाव आरम्भ हुई जो सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ तक चली। इस के बात यूरोप के अधिकांश भागों में पतन या मंदी का दौर चला। अठाहरवीं शताब्दी

के आरम्भ से तीव्र वृद्धि हुई। यह अनुमान लगाया जाता है कि आबादी की वार्षिक वृद्धि 0.6 प्रति हजार थी परन्तु 1700 और 1850 के दौरान यह दुगनी हो गई। सत्रहवीं शताब्दी से बीसवीं सदी के अन्त तक वृद्धि दर बढ़कर 5.3 प्रति हज़ार हो गयी। पाओलो मालानीमा के अनुसार, अठारहवीं शताब्दी में वृद्धि दर 4 प्रति हजार थी। ये सभी आँकड़े मोटे अनुमान पर आधारित हैं जो प्रत्येक लेखक द्वारा अपने अपने तरीकों से गणना किए गये हैं। प्रति दशक की जनगणना 1801 में शुरू की गयी जिस पर प्रसिद्ध जनसंख्या विशेषज्ञ और अर्थशास्त्रकार थॉमस मालथस, का प्रभाव था।

यूरोपीय देशों की जनसंख्या वृद्धि का अनुमान (मिलियन में)

वर्ष	1700	1750	1800	1850
बेल्जियम	1.75	2.25	3.25	4.50
ब्रिटेन	5.75	6.00	9.25	18.00
फ्रांस	22.00	24.00	29.00	36.00
जर्मनी	13.00	15.00	18.00	27.00
इटली	13.00	15.00	19.00	25.00

रूस समेत पूरे यूरोपीय आबादी का मोटा-मोटा अनुमान बताता है कि 1600 में जनसंख्या 107.05 मिलियन थी, 1700 में यह 114.85 मिलियन, 1750 में यह बढ़कर 143.23 मिलियन और 1800 तक बढ़ 188.30 मिलियन पहुँच गयी। उत्तर-पश्चिमी यूरोप की आबादी 1700 के बाद तेजी से बढ़ी। इंग्लैंड और वेल्स की 1600 में 4.4 मिलियन आबादी 1700 तक 5.45 मिलियन पहुँच गई, 1750 में 6.3 जो 1800 में छलांग लगाकर 9.25 मिलियन हो गयी। इसी तरह नीदरलैंडस भी 1.5 मिलियन आबादी (1600 में) से बढ़कर 1700 में 1.95 मिलियन हो गयी और 1750 तक 2.1 मिलियन पहुँच गयी। बेल्जियम की आबादी 1600 में 1.3 मिलियन से 1.9 मिलियन 1700 में बढ़ी और 1800 में 2.9 मिलियन पहुँच गयी। फ्रांस की आबादी 18.5 मिलियन 1700 में थी जो 1800 तक 29 मिलियन के लगभग जा पहुँची। मध्य यूरोप में आबादी अधिक तेजी से नहीं बढ़ी। उदाहरण के तौर पर, जर्मनी के सभी राज्यों की कुल आबादी 1600 में 16.2 से घटकर 1700 में 14.1 मिलियन हो गयी जिसका मुख्य कारण तीस वर्षीय युद्ध (1618 से 1648 तक) तथा सत्रहवीं शताब्दी का सामान्य संकट था। किन्तु 1800 तक यहाँ की आबादी 24.5 मिलियन हो गयी। दक्षिणी यूरोप में सोलहवीं शताब्दी तक आर्थिक दृष्टि से अग्रिम क्षेत्र इटली की आबादी 1600 में 13.3 मिलियन थी परन्तु 1700 तक इसमें ठहराव आ गया और वो 13.5 मिलियन रही परन्तु अठारहवीं शताब्दी में बढ़त आने से यह 1800 तक 18.1 मिलियन पहुँची। स्पेन की आबादी 1600 में 6.8 से 1800 तक 10.5 मिलियन हो गयी। हालांकि ये आँकड़े अधिक भरोसेमंद नहीं माने जा सकते और पाओलो मालानिमा ने अपने अन्दाज़ पर तैयार किए हैं, फिर भी ये जनसांख्यिक परिवर्तन की ओर इशारा करते हैं। मध्य और दक्षिण यूरोप के जनसांख्यिकीय आँकड़े निरन्तर युद्ध और प्राकृतिक अर्थव्यवस्था में उत्पादन संकट रूपी परिणाम को दर्शाते हैं। बढ़ती हुई आबादी के फलस्वरूप आबादी का घनत्व बहुत बढ़ गया। 1700 के लगभग यूरोप का औसत घनत्व 11 व्यक्ति प्रति किलोमीटर या जो 150 वर्षो में दस गुणा बढ़ गया। पश्चिमी और मध्य यूरोप के कई क्षेत्रों में औसत घनत्व लगभग 50 व्यक्ति था, स्पेन में लगभग 20 था, प्रशा और पोलैंड में 14 और रूस में सब से कम 3 व्यक्ति प्रति किलोमीटर था। प्राकृतिक अर्थव्यवस्थाओं में आबादी

और कृषि व्यवस्था के बीच घनिष्ट सम्बन्ध होता है जैसाकि थामस रोबर्ट माल्थस (प्रसिद्ध जनसंख्या अध्ययन के सिद्धान्तवादी) ने अपनी पुस्तक *'ऐन ऐसे औन द प्रिन्सिप्लस् ऑफ पोपुलेशन;* (1798 प्रकाशन) में इंग्लैंड की सत्ता को सचेत किया कि तेजी से बढ़ती आबादी का परिणाम घातक होगा क्योंकि आबादी ज्यामितीय गति से बढ़ती है जबकि खाद्य उत्पादन अंकगणित की गति से। माल्थस ने पूर्व-औद्योगिक समाज की सामाजिक-जनसांख्यिकीय गति-विज्ञान को उजागर किया। उनका सुझाव था कि आबादी वृद्धि मजदूरों की सप्लाई बढ़ाती है जिसका परिणाम होता है गिरती हुई मजदूरी दर। अर्थात् निरन्तर आबादी वृद्धि का परिणाम या निर्धनता। माल्थस के तर्क ने 1800 के जनगणना कानून पास करने में योगदान दिया। उनके लेखन ने जनसंख्या वृद्धि के विषय पर विवाद को जन्म दिया। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के क्लासिकी अर्थशास्त्रकार माल्थस के विचारों से इत्तफाक रखते थे जब कि हाल के आर्थिक इतिहासकार इन विचारों को स्वीकार नहीं करते हैं और तकनीकी प्रगति के प्रभाव को दर्शाते हैं। ये माल्थस के तर्क की खामियों को उजागर करते हैं और आबादी और भूमि के बीच सम्बन्धों की इतनी सरल व्याख्या पर आपत्ति करते हैं, जिसे स्वीडन और आयरलैंड के अनुभव उजागर करते हैं। रिगले और शोफील्ड माल्थस के मॉडल को उल्टा कर के प्रस्तुत करते हैं। इन सब आलोचनाओं के बावजूद माल्थस के सिद्धांतों को पूरी तरह खारिज नहीं किया जा सकता है, खासकर पूर्व आधुनिक कृषि समाज के संदर्भ में। माल्थस ने और अधिक आधुनिक जनसांख्यिकी सिद्धान्तों की दृष्टि से नए मार्ग खोल दिये, जो अठारहवीं शताब्दी के बाद के काल पर लागू किए जाते हैं।

11.5 मृत्यु दर : अकाल, महामारियाँ और युद्ध

अकाल और महामारियों ने जनसंख्या के आयाम को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सत्रहवीं शताब्दी में जनसांख्यिक और कृषि विकास में अकाल का प्रभाव था। आर्थिक इतिहासकार अकाल और मर्त्यता (मृत्यु दर) के परस्पर सम्बन्धों पर जोर देते हैं। यूरोप की पूर्व-औद्योगिक कृषि संगठन तकनीकी विकास की अनुपस्थिति में अस्थिर संतुलन बनाए थी। अकालों से भी जनसंख्या पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। इस व्याख्या का वैज्ञानिक लेखकों ने विरोध किया है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि पौष्टिकता की कमी से लोग संक्रमण और रोग के प्रति संवेदनशील हो गए।

इस विचारधारा के आलोचक का मानना है चेचक, मलेरिया, डिप्थेरिया, ऐनसेफ लाइटस और प्लेग जैसी बीमारियों और आहार में पौष्टिकता के बीच परस्पर संबंध नहीं था। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के उदय से चेचक जैसी महामारियों के विरुद्ध सुरक्षा देना संभव हुआ। चेचक के विरुद्ध टीका अठारहवीं शताब्दी में इ. जेन्नर द्वारा निकाला गया जिसका सकारात्मक परिणाम हुआ। सबसे खतरनाक महामारियों में प्लेग को सबसे गंभीर माना गया। माना जाता है कि यह बीमारी प्राचीन काल में देखी गयी थी परन्तु फिर आठवीं शताब्दी तक लुप्त रही। यह भी ध्यान देने योग्य है कि 1347 से 1352 के दौरान प्लेग से यूरोप की एक-तिहाई आबादी खत्म हो गयी। यह महामारी यूरोप के अलग-अलग देशों में बार-बार उभरती रही। ब्रिटेन में प्लेग से 1665-66 में मृतकों की संख्या 70,000 के लगभग थी। फ्रांस में मार्सेइ (1720), रूस में युकरेन (1737), और मास्को (1789) के बाद प्लेग यूरोप से गायब हो रही थी। प्लेग के गायब होने के स्पष्ट कारण बताना कठिन है। विद्वानों ने इसके विविध कारण बताए हैं जैसे

स्वास्थ्य तथा सफाई के प्रयास, घर निर्माण की सामग्री में लकड़ी के स्थान पर ईटों, व पत्थरों का प्रयोग और चूहों से बचाव।

11.6 विवाह प्रतिमान : जन्मक्षमता, जन्म और मृत्यु दर

पूर्व-आधुनिक काल में जनसांख्यिकी दिशाएँ जन्म और मृत्यु दर पर निर्भर करती थीं जो इस समय की मौलिक विशेषता थी। जनसंख्यिकीय मॉडल के पहले चरण को पूर्व औद्योगिक समाज पर लागू किया जा सकता है, जिसमें बताया जाता है कि किस प्रकार जन्म और मृत्यु आबादी की वृद्धि दर को प्रभावित करते हैं। पहले चरण में उच्च जन्म दर और उच्च मृत्यु दर आबादी को स्थिर और नियंत्रित रखता है। इसके बाद के काल में उच्च जन्म दर और मृत्यु दर में गिरावट का परिणाम आबादी में तेजी से वृद्धि का होना होता था जैसा अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देखा गया। इस काल में सामान्य मृत्यु दर लगभग 35 प्रति हजार थी जो महामारियों और अकाल में बढ़ जाता था। जन्म दर शिशु मृत्यु दर से 1 या 2 इकाई अधिक थी। जन्म दर और मृत्यु दर के बीच मामूली अन्तर से जनसंख्या में थोड़ी वृद्धि देखी गयी। मृत्यु दर जनसंख्यकीय और प्राकृतिक संरचना में संतुलन बनाए रखने में मुख्य यन्त्र था। यह आबादी को नियंत्रित रखने में एक महत्वपूर्ण तत्व साबित हुआ। आबादी वृद्धि को नियंत्रित रखने में एक और तत्व था युवा वर्ग में विवाह की आयु। देर से विवाह बच्चे पैदा करने की अवधि को कम करते थे या महिलाओं का प्रजनन काल को घटाते थे।

यद्यपि यह बात स्पष्ट नहीं है कि परिवार नियोजन पूर्व-आधुनिक युग में अपनाया जाता था या नहीं। यूरोप के कुछ भागों में सम्भवतः परिवार नियोजन के कुछ तरीके मौजूद थे, विशेषकर उच्च वर्ग धार्मिक अलपसंख्यक और शहर के निवासियों में। पाओलो मालानीमा ने अपने तर्क के लिए मेरजारिओं में कानूनी कार्यवाही का प्रमाण प्रस्तुत किया है, जिसमें कहा गया कि अठारहवीं शताब्दी के दौरान फ्रांस तथा हंगरी में परिवार नियोजन अपनाया जाता था।

हाल के जनसांख्यिकीय अनुसंधान में विशेषज्ञों का मानना है कि जन्म और मृत्यु दर के उतार-चढ़ाव की जनसांख्यिकीय परिवर्तन में निर्णायक भूमिका रहती है। विशेषज्ञ मानते हैं कि उर्वरता प्रजनन शक्ति और फीकन्डती पर निर्भर करती है। इसमें पूर्व-आधुनिक काल में अधिक उताव-चढ़ाव नहीं हुआ। बहुजननता अर्थात् तीव्र प्रजनन क्षमता अधिक महत्वपूर्ण तत्व है जिस पर गर्भधारण और बच्चा जनने की क्षमता शारीरिक विकास के स्तर पर निर्भर करती है जैसे आहार में पौष्टिकता और स्वास्थ्य सेवा का स्तर। साथ ही यह बात ध्यान रखने योग्य है कि खान-पान की पौष्टिकता में सुधार का तत्व साधारण जन के संदर्भ में लागू नहीं होता।

जन्म नियंत्रण के इन बातों के अतिरिक्त स्तनपान गर्भनिरोध का एक आम पुराना तरीका था जो महिलाओं में प्राय 2-3 साल तक प्रभावशाली रहता। हाल के पूर्व-आधुनिक जनसांख्यिक प्रवृत्ति शोध कार्य में पर यह दिखाया गया है कि इसमें विवाह-आयु का महत्व और वैवाहित दम्पत्तियों में उर्वरकता नियंत्रण महत्वपूर्ण है।

पूर्व-औद्योगिक समाजों में जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण संतति-विग्रह और महामारियों से उतना ही होता था जितना देरी से विवाह करने के द्वारा। लगभग 2 प्रतिशत आबादी धार्मिक कारणों से विवाह नहीं करती थी जैसे कि ब्रह्मचर्य या पादरी या नन का जीवन धारण कर या भिक्षु बनकर। एशियाई समाज की तुलना में, जहाँ सभी सदस्य

से विवाह की अपेक्षा रखा जाती थी, यूरोप में काफी लोग विवाह नहीं करते थे, और विधवा और विधुर शायद ही विवाह करते थे। महिलाओं में अविवाहित रहने का प्रचलन कहीं अधिक था, लगभग 15 से 20 प्रतिशत तक। देर से विवाह करना आबादी वृद्धि को नियंत्रित करने का सहज और प्रभावकारी तरीका था। पश्चिम यूरोप के विवाह के पैटर्न पर अनेकों अध्ययन किये गये हैं। एशियाई समाज के विपरीत पश्चिमी यूरोपीय समाज में देर से विवाह करने का प्रचलन था। पूर्व-औद्योगिक युग में विवाह आयु एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में अलग-अलग थी। यह आयु 25 के लगभग थी। 1750 के पूर्व फ्रांस में महिलाओं की औसत आयु 24.6 वर्ष थी, इंग्लैंड और बैल्जियम में 25 वर्ष, स्कैन्डिनेविया देशों में 26.7 और जर्मनी में 26.4। जनसांख्यिकीय विद्वानों का यह मानना है कि अठारहवीं शताब्दी में मृत्युदर में गिरावट आयी थी, खासतौर पर अर्थव्यवस्था और जनसंख्या के परस्पर सम्बन्धों के कारण। यह एक आम धारणा थी कि अठारहवीं शताब्दी में मृत्युदर में गिरावट अकाल और महामारियों की कमी से हुआ जो वास्तव में अच्छे पौष्टिक आहार से संभव हुआ था। यह कृषि क्षेत्र में सुधार का परिणाम था जिससे उत्पादकता बढ़ी तथा अकाल के प्रभाव घटे। अच्छे आहार से बीमारी से लड़ने की क्षमता बढ़ी। अठारहवीं शताब्दी में प्रति व्यक्ति कृषि उपज की खपत के बढ़ने से जनसंख्या में वृद्धि संभव हुई। कई इतिहासकार इस तर्क से सहमत नहीं हैं और इस व्याख्या को अत्यधिक सरल मानते हैं। यूरोप की 1700 से 1800 के बीच 5 करोड़ जनसंख्या वृद्धि को व्यापक ढंग से समझने की आवश्यकता है।

हथियारों की तकनीकी मध्यकाल से फ्रांसीसी क्रांति तक तेजी से बदली। पुराने हथियारों के विविध रूपान्तर अधिकतम विध्वंसक और विनाशक रूप धारण कर चुके थे। युद्ध निजी बहादुरी पर आधारित नहीं रहे थे बल्कि सैनिक संगठन पर निर्भर करने लगे थे। बड़ी संख्या में गैर-सैनिक आबादी फ्रेंच धार्मिक युद्ध, डच विद्रोह, तीस वर्षीय युद्ध इत्यादि में मारी गयी थी। इस के अतिरिक्त फसल सैनिकों के मार्च से बुरी तरह नष्ट हुई थी तथा फसल के दहन से पशुधन नष्ट हुआ और विशाल मैदानी क्षेत्रों को तबाह किया गया। बड़ी संख्या में युद्ध से आबादी को नुकसान पहुँचा जो जर्मनी, मध्य यूरोप, पोलैंड और मासोविया इत्यादि क्षेत्र में क्षति 40 प्रतिशत के करीब थी। इस प्रकार युद्धों का नकारात्मक प्रभाव पड़ा।

बोध प्रश्न 2

1) सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में यूरोप में जनसांख्यिकीय प्रवृत्ति की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) अठारहवीं शताब्दी में यूरोप में विवाह के रुझान का विश्लेषण कीजिए।

.....

.....

.....

.....

11.7 सारांश

इस अध्याय में हमने पढ़ाः

- यूरोप के विभिन्न देशों के कृषि संगठनों में गहरी विविधता थी।
- विभिन्न क्षेत्रों में विविधता के मुख्य कारणों को समझना।
- यूरोप के उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों के कृषि व्यवस्था के पूंजीवादी दिशा में रूपान्तरण और वाणिज्यीकरण के कारण जानना।
- इंग्लैंड में कृषि ढाँचे के रूपान्तर ने कैसे अर्थव्यवस्था को बदल दिया और पूंजीवादी ढाँचा स्थापित किया।
- जनसांख्यिकीय दिशा और पूर्व-आधुनिक कृषि अर्थव्यवस्था के बीच गहरा सम्बन्ध था।
- हमने अध्ययन किया कि अठारहवीं शताब्दी में परिवर्तन के स्वरूप के विविध तत्व जैसे जन्म-मृत्यु दर, उर्वरता, विवाह आयु इत्यादि जनसंख्या की दिशा को निर्धारित करते हैं।

11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उपभाग 11.2.1 और 11.2.2 देखिए।
2) भाग 11.3 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 11.4 देखिए।
2) भाग 11.6 देखिए।

इकाई 12 उपभोग और उत्पादन के प्रारूप*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 'उद्यमशील' क्रान्ति

12.3 यूरोपीय विवाह प्रारूप की भूमिका

12.4 उद्यमशीलता का मूल्यांकन

12.5 प्रारम्भिक आधुनिक यूरोप में आद्य-औद्योगीकरण

12.6 आद्य-औद्योगीकरण के सिद्धान्तों की आलोचना

12.7 प्रारम्भिक आधुनिक यूरोप में पुस्तक उत्पादन, साक्षरता और मानव पूँजी निर्माण

12.8 सारांश

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप प्रारम्भिक यूरोप में उपभोग और उत्पादन के निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगेः

- 'उद्यमशील' क्रांति की अवधारणा और इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन,
- यूरोपीय विवाह प्रारूप की भूमिका और अर्थव्यवस्था की प्रकृति पर इसका प्रभाव,
- आद्य-औद्योगीकरण की अवधारणा और उसका मूल्यांकन, तथा
- साक्षरता, पुस्तक-उत्पादन और मानव पूँजी निर्माण की प्रकृति।

12.1 प्रस्तावना

पारम्परिक इतिहास में, औद्योगिक क्रान्ति को सबसे महत्वपूर्ण घटना माना गया। हालांकि, हाल के शोधों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह 'क्रान्ति' आर्थिक विकास की गति में आकस्मिक वृद्धि नहीं थी, बल्कि एक क्रमिक विकास की ओर बढ़ना था, जिसे वास्तव में एक स्पष्ट क्रान्ति के रूप में नहीं देखा जा सकता है। आद्य-उद्योग जिसमें ग्रामीण, छोटे पैमाने के उद्योगों ने श्रम शक्ति के माध्यम से कृषि गतिविधियों और औद्योगिक क्रियाकलापों को विश्व बाजार से जोड़ दिया। इसे औद्योगिक और जनसांख्यिकीय विकास के एक इंजन के रूप में देखा गया था, जो औद्योगिक परिवर्तन से पहले की घटना थी। यूरोप में विशेष रूप से पश्चिम भाग में उत्तरी सागर की सीमा के क्षेत्र में प्रारम्भिक आधुनिक काल-अवधि गतिहीन काल-अवधि नहीं थी, बल्कि यह एक गतिशील अवस्था थी जिसके कारण शहरीकरण में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, लम्बी दूरी के व्यापार और वित्त में तेजी से विकास हुआ और कृषि क्षेत्र के उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि हुई। इसी तरह, प्रारम्भिक यूरोपीय लोग कैसे

* इकाई लेखक : प्रो. श्रीकृष्ण

उपभोग करते थे, वे क्यों कुछ विशिष्ट वस्तुओं का उपभोग करते थे और इस उपभोग ने समाज को कैसे प्रभावित किया, इस बारे में हमारी समझ भी बदल गई है। पहले के मार्क्सवादी विद्वान स्वाभाविक रूप से उपभोग से अधिक उत्पादन की प्रधानता के पक्षधर थे। यह माना जाता था कि उपभोग में परिवर्तन उत्पादन, वाणिज्य और प्रौद्योगिकी के परिवर्तनों के अनुसार संचालित होते हैं। अब अनेक विद्वानों को लगता है कि उपभोग और इसके प्रारूप प्रारम्भिक आधुनिक निम्नतटीय देशों में सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के लिए महत्वपूर्ण थे। सबसे महत्वपूर्ण तर्क यह है कि प्रारम्भिक आधुनिक निम्नतटीय क्षेत्रों जैसे हालैंड, बेल्जियम आदि देशों में एक 'उपभोक्ता समाज' की शुरुआत ने 'उद्यमशीलता' के विकास को सुविधाजनक बनाया जिससे पूरे पश्चिमी यूरोप में औद्योगिक विकास को बढ़ावा मिला।

12.2 'उद्यमशील' क्रान्ति

जान दी व्रिज ने औद्योगिक क्रांति से पहले आने वाली एक 'उद्यमशील क्रांति' की अभिधारणा पेश की। यह नजरिया प्रारम्भिक आधुनिक यूरोपीय आर्थिक इतिहास की फिर से जाँच के लिए सबसे महत्वपूर्ण नजरियों में से एक बन गया है। 1975 में दी गई व्रिज की परिकल्पना हालैंड के प्रारम्भिक आधुनिक किसानों के उपभोग प्रारूपों पर आधारित थी। उन्होंने तर्क दिया कि इन किसानों में अधिक वस्तुओं की माँग करने की क्षमता थी और उनकी बढ़ती क्रय शक्ति ने उनके लिए अधिकाधिक घरेलू वस्तुओं का उपभोग करना सम्भव बना दिया था। उन्होंने इसका प्रमाण सत्रहवीं और अठाहरवीं शताब्दी में पाया। उन्होंने देखा कि किसानों के घरों में खिड़कियों के पर्दे और अग्नि कोष्ठ के लिए कपड़े के पर्दों का धीरे-धीरे इस्तेमाल होने लगा था। उन्होंने विभिन्न प्रकार की मेज-कुर्सियों, नये तरह के गिलास, टिन और मिट्टी के बर्तनों का उपयोग करना शुरू कर दिया। किसान अब अधिक बार कुर्सियों और रसोई के बर्तनों का इस्तेमाल करते थे और किसानों के घरों में दर्पण, घड़ियों और पुस्तकों का उपयोग आम हो गया। यद्यपि व्यक्तिगत किसान की दृष्टि से इन परिवर्तनों में कुछ भी क्रांतिकारी नहीं था, लेकिन जब हम उन्हें एक साथ लेते हैं तो यह उनके द्वारा शहरी लोगों के उपभोग व्यवहार या उनके सांस्कृतिक व्यवहारों को अपनाने या नकल करने की एक धीमी और स्थिर प्रक्रिया को प्रदर्शित करता है। इन सभी का अंतिम परिणाम डच ग्रामीण इलाकों में उपभोग की एक अलग शैली था। अपने बाद के लेखन में, दी व्रिज ने फिर जोर दिया कि किसानों के बढ़ते उपभोग के स्तर के कारण घरेलू अर्थव्यवस्था की प्रकृति भी बदल गई और इससे आद्य-उद्योगों के विकास को मदद मिली। बाजार में उपभोक्ता वस्तुओं की अधिक आपूर्ति के कारण, परिवारों को अपनी आर्थिक रणनीतियों के बारे में पुनर्विचार करना पड़ा कि बाजार की मौजूदा परिस्थितियों के अनुसार अपने संसाधनों और श्रम को किस प्रकार आवंटित किया जाए। किसान परिवार अब बाजार के लिए अधिक से अधिक उत्पादन करने लगे। वे अपने स्वयं के उपभोग की जरूरतों के लिए बाजार पर अधिक निर्भर हो गए। इस सबके परिणामस्वरूप पहले से अधिक विशिष्टीकरण और श्रम का विभाजन हुआ। इसका अंतिम परिणाम संसाधनों का अधिक उत्पादक उपयोग था और उच्च उत्पादन का मतलब उपलब्ध वस्तुओं का निम्न सापेक्ष मूल्य भी था। इस प्रकार, दी व्रिज के विचार में, यह विशेष रूप से उपभोक्ता इच्छाओं और माँगों में बदलाव था– अर्थात् 'सुखकारिता, आनंद, नवीनता और पहचान (अस्मिता) की तलाश', जो उनकी 'उद्यमशील क्रांति' के 'सक्रिय खोजी उपभोक्ता' को परिभाषित करता है। यह एक

प्रबल परिवर्तन था जो औद्योगिक क्रांति के शुरू होने से पहले हुआ था और जिसने बाद में कारखाने की तर्ज पर बड़े पैमाने पर उत्पादन को जन्म दिया। औद्योगिक क्रांति की दिशा में इन धीमे और लगातार परिवर्तनों से कुछ आर्थिक प्रवृत्तियों जैसे उपभोक्ता माँग में वृद्धि से मदद मिली। यह उपभोक्तावाद की वृद्धि में प्रकट हुआ, जिसमें अधिक से अधिक नई वस्तुओं की मांग शामिल थी और दी ब्रिज के अनुसार, यह सत्रहवीं शताब्दी में, हालैंड और इग्लैंड में, 'उद्यमशीलता' के कारण हुआ था। सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के दौरान टिकाऊ और सामान्य से अलग वस्तुओं के प्रसार ने नई जरूरतों और मांगों का मार्ग प्रशस्त किया, जिसे किसान परिवार केवल अपनी आय का स्तर बढ़ा कर हासिल कर सकते थे। एक किसान परिवार के लिए इसका मतलब तीन चीजें थीं: 1. कि वह लगातार कठोर श्रम करे और इस प्रक्रिया को श्रमगहनता के रूप में स्वीकार किया गया है। 2. कि वे लम्बे समय तक काम करें (श्रम का दीर्घीकरण)। 3. कि वे बाजार में श्रम को अधिक बार बेचें और/या खरीदें, जिससे श्रम बाजारों में उनकी भागीदारी बढ़ जाती है (श्रम प्रवर्धन)।

12.3 यूरोपीय विवाह प्रारूप की भूमिका

यह तर्क दिया गया है कि महिलाओं ने 'उद्यमशील क्रान्ति' में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाजार की वस्तुओं की बढ़ती माँग ने परिवारों और विशेष रूप से महिलाओं को अवकाश और घरेलू उत्पादन से आय-अर्जन के काम के लिए फिर से समय आबंटित करने के लिए प्रेरित किया। कुछ विद्वानों ने तर्क दिया है कि यूरोप में देर से मध्ययुग के अंतिम चरण और प्रारम्भिक आधुनिक काल में एक नया विवाह का प्रारूप उभरा जिसने इसे सुविधाजनक बनाया। यूरोपीय विवाह प्रारूप में महिलाओं को अपना जीवन साथी चुनने में अधिक चयन का अधिकार था और यह पूरी तरह विवाह के लिए एक लड़के और लड़की की सहमति पर आधारित था। बच्चों की स्थिति भी विशेष रूप से जब वे परिवार की आय में योगदान करना शुरू करते हैं, अपेक्षाकृत मजबूत होती है। विवाह के इस प्रारूप की एक और विशेषता यह भी थी कि देर से विवाह आम हो गया क्योंकि एक कन्या को स्वयं अपना पति चुनना पड़ता था और नियमित आय के साथ अपना परिवार स्थापित करना पड़ता था। कुछ लड़कियों के अविवाहित रहने की संभावना थी। यूरोपीय विवाह प्रारूप, रोजगार पाने और ब्लैक डेथ के बाद की शताब्दी में अपेक्षाकृत उच्च मजदूरी की दरों की अवधि में विवाह या अधिक सामान्यतः मानव प्रजनन व्यवहार का एक नया संस्थागत अनुकूलन था। संक्षेप में, इन परिस्थितियों में जब मजदूरी से आय अधिक थी, तब विवाह के प्रारूप भी बदलने लगे। सहमति वाले जीवन साथियों के सम्बंध बदल गए और यह बाजार की शक्तियों से प्रभावित हुआ खासकर क्योंकि श्रम बाजारों के विकास का महत्व बढ़ गया था। मजदूरी का आय घटक घरेलू आय के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। न केवल श्रम बाजारों का विस्तार हो रहा था, बल्कि मजदूरी उपार्जक इन परिवारों को पूँजी बाजार में प्रवेश करने और बाजार से सुलभ उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदने का भी अधिकार था। साथ ही, उन्होंने अपने जीवन की उत्तरजीविता बढ़ाने के लिए और अपने जीवन को नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाने और अपने बच्चों के लिए चौतरफा बाजारों के उभरने के द्वारा उपलब्ध सुअवसरों का उपयोग करने के लिए नई कार्य-प्रणालियों को विकसित किया। पहले के मुकाबले, जब किसी को भी स्कूली शिक्षा और प्रशिक्षण की परवाह नहीं थी, अब मामूली साधनों वाले परिवारों ने भी अपने बच्चों की औपचारिक शिक्षा में अधिक निवेश करना शुरू कर दिया। उन्होंने प्रशिक्षुओं के रूप में था अन्य

लोगों के घरों में नौकरों के रूप में प्रशिक्षण सुविधाओं का उपयोग किया। लोग 'सामाजिक पूँजी' प्राप्त करने के लिए अधिक निवेश क्यों करते हैं? नई विवाह प्रणाली में, विस्तारित बड़े परिवारों के पारम्परिक सम्बंध टूटने शुरू हो गए और लोगों को वृद्धावस्था या एकल पितृत्व/मातृत्व से उत्पन्न समस्याओं का हल करने के लिए अनुकूलन करना पड़ा। इसलिए शिक्षा और प्रशिक्षण में इस तरह के निवेश से उन्हें अधिक कमाने के अवसरों को बेहतर बनाने में मदद मिली होगी। यह सामाजिक पुनर्गठन और समाज को फिर से नए प्रतिमान में ढालने का काम मध्यकाल के अंत में, इंग्लैंड और विशेषकर निम्न तटीय देशों में चल रहा था।

उत्तरी सागर क्षेत्र में, ब्लैक डेथ के बाद, मजदूरी की दरें अपेक्षाकृत अधिक थी, और कोई आसानी से नौकरी पाने के लिए श्रम बाजार के विस्तार का उपयोग कर सकता था। हालांकि पुरुषों की तुलना में महिलाओं को अभी भी श्रमशक्ति के क्षेत्र में एक गंभीर परेशानी का सामना करना पड़ता था। इस संदर्भ में, मध्ययुगीन काल के अंत में यूरोपीय विवाह प्रारूप का उदय हुआ। ये उत्प्रेरक थे : कैथोलिक चर्च द्वारा पढ़ाये गये मूल्य, संसाधनों की पारिवारिक विरासत के माध्यम से पीढ़ियों के मध्य हस्तांतरण की व्यवस्था, परिवार के बाहर मजदूरी के लिए लोगों के रोजगार के कारण श्रम-बाजारों का निर्माण और ब्लैक डेथ के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव।

इन परिस्थितियों में यूरोप में विकसित होने वाली नई विवाह प्रणाली में बच्चों पर उनके माता-पिता की शक्ति और सत्ता और महिलाओं पर पुरुषों की सत्ता में गिरावट आई। श्रम और उत्पादों के लिए उभरती वाणिज्यिक गतिविधियों और बाजारों ने भी इस तथाकथित 'यूरोपीय विवाह प्रारूप' को सुविधाजनक बनाया। परिवार केवल पति-पत्नी और बच्चों के साथ छोटे और एकल परिवार बन गये और यह ज्यादातर मजदूरी पर निर्भर हो गये। साख बाजारों का उपयोग और परेशानी के समय कुछ पैसे बचाने का प्रयास लोगों के जीवित रहने के लिए आवश्यक हो गया। जनसंख्या की प्रकृति और संरचना में परिवर्तन, इसका रोजगार, श्रम का विभाजन और श्रम और साख बाजारों का निर्माण साथ-साथ चला। यह इस युग में अर्थव्यवस्था और समाज के बढ़ते वाणिज्यीकरण का परिणाम था। यह अनुमान लगाया जाता है कि बड़ी संख्या में लोग (आबादी का लगभग एक तिहाई से दो तिहाई) मजदूर बन गये और इस तरीके से आजीविका अर्जित करना जीवन और उसकी परिस्थितियों की एक सामान्य बात बन गई। मध्यकाल के अन्त और प्रारम्भिक आधुनिक यूरोप में बाजारों का असाधारण विस्तार विशेष रूप से उत्तरी सागर के आसपास के क्षेत्र में, इसकी रोशनी में देखा जाना चाहिए। 'यूरोपीय विवाह प्रारूप' के उभरने के अन्य दीर्घकालिक प्रभाव थे। इस नयी विवाह प्रणाली के परिणामस्वरूप पीढ़ियों के बीच आय और संसाधनों का हस्तानांतरण मौलिक रूप से बदल गया। सर्वप्रथम, इससे युवा लोगों को लाभ हुआ क्योंकि उनके माता-पिता ने अब उनमें अधिक निवेश किया था ताकि उनके मूल्य में वृद्धि हो सके, दूसरे शब्दों में, माता-पिता उस निवेश में वृद्धि कर रहे थे, जिसे आजकल हम 'मानव पूँजी' कहते हैं। दूसरा, कुछ हद तक 'यूरोपीय विवाह प्रारूप' ने विवाह की आयु को बढ़ा दिया और इस तरह बच्चों की संख्या सीमित हो गई जो उन दिनों के छोटे जीवन काल में सम्भव हो सकते थे। कम बच्चों के साथ, माता-पिता ने उनकी शिक्षा और प्रशिक्षण के माध्यम से जीवन में उनके अवसरों को बेहतर बनाने के लिए अधिक निवेश किया। औपचारिक स्कूली शिक्षा और नौकरी के दौरान प्रशिक्षण के माध्यम से 'मानव पूँजी' में निवेश एक नया अनुभव था जो अब युवा पुरुषों और महिलाओं के जीवन चक्र में शामिल था, जिससे उनके विवाह के बाजार में प्रवेश में भी

देरी हुई होगी। इस प्रकार पीछे की तरफ दृष्टि रखने की बजाए, अर्थात् वंशावली और बूढ़े आश्रित माता-पिता की देखभाल की बजाए, परिवार इस मायने में प्रगतिशील हो गया कि वह अब बच्चों में अधिक से अधिक निवेश करने लगा। ऐसे परिवारों में वृद्ध लोग, इन नये जनसांख्यिकीय और सामाजिक परिवर्तन के सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण पीड़ित लोग थे। परिवार के वृद्ध सदस्यों की शक्ति और सत्ता कमजोर हो गई थी। वे पुराने प्रकार के व्यवस्थित विवाह प्रणाली में कुछ संसाधन प्राप्त करते थे, लेकिन अब जब विवाह दो सहमत वयस्कों के बीच काफी हद तक एक मुक्त विकल्प बन गया तो उनके पुराने पितृसत्तात्मक विशेषाधिकार का यह स्रोत गायब हो गया। उनके लिए अब अपनी कमाई से बचत सम्भव थी जो अब उच्च मजदूरी के कारण अच्छी थी और इससे उन्हें कुछ सुरक्षा मिल सकती थी। कुछ लोगों को लगता है कि मध्यकाल के अन्त में पश्चिमी यूरोप में 'यूरोपीय विवाह प्रारूप' के उद्भव और पूँजी बाजारों के उद्भव के बीच कुछ सह-सम्बन्ध हो सकता है। अब लोगों ने वृद्धावस्था की सुरक्षा के लिए पैसा बचाना शुरू कर दिया होगा और वे नई उभरती संयुक्त पूँजी कम्पनियों में निवेश कर रहे थे। हालांकि नये विवाह प्रारूप ने एक नया सामाजिक सुरक्षा जोखिम पैदा कर दिया क्योंकि जैसे-जैसे परिवार छोटे होते गये माता-पिता में से किसी एक की समय से पहले मृत्यु होने की सम्भावना अधिक थी। इसलिए साथ-साथ नये सामाजिक प्रबन्ध सामने आए जिन्होंने वृद्धों, बच्चों और दिव्यांगों के लिए कुछ हद तक सामाजिक सुरक्षा प्रदान की। हम कह सकते हैं कि 'उद्यमशील क्रांति' अनेक सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों का परिणाम थी जो मध्य काल के अन्त में फलीभूत हुई। प्रारम्भिक आधुनिक काल में उन परिवारों की अधिमुखता में बदलाव आया जिन्होंने बाजार के सुअवसरों का लाभ उठाया, जिसके परिणामस्वरूप श्रम की आपूर्ति में वृद्धि हुई। जान दी व्रिज मानते हैं कि ये परिवर्तन अठाहरवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति से पहले हुए थे और उनका तर्क है कि उत्तरी समुद्र क्षेत्र में होने वाले आर्थिक परिवर्तनों को समझने के लिए महिलाओं और किशोरों/किशोरियों का श्रम महत्वपूर्ण था। सत्रहवीं शताब्दी का तथाकथित 'डच स्वर्णिम काल' इस आर्थिक परिवर्तन द्वारा निर्मित किया गया था। श्रम बाजारों के माध्यम से महिलाओं और बच्चों के रोजगार में वृद्धि, शिक्षा और प्रशिक्षण में निवेश का उच्च स्तर और श्रम और पूँजी बाजारों का सामान्य विकास स्पष्ट रूप से 'यूरोपीय विवाह प्रारूप' के आने से जुड़ा हुआ था।

12.4 उद्यमशीलता का मूल्यांकन

यहाँ यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि दी व्रिज ने सामाजिक अनुकरण के मॉडल/प्रतिमान को अस्वीकार कर दिया है जो इस परिकल्पना पर आधारित है कि उच्च सामाजिक समूह या वर्ग का उपभोग प्रारूप जो उसकी अभिरुचियों या जरूरतों में परिलक्षित होता है, उसे एक सामाजिक वर्ग द्वारा दूसरे को हस्तांतरित और अनुकरण किया जाता है। इससे यह सवाल उठता है कि सत्रहवीं शताब्दी में ये नई उपयोग इच्छाएँ कैसे अकस्मात उभर कर आई? और कैसे उद्यमशीलता श्रमिकों की अकर्मण्यता या पारम्परिक अवकाश को नष्ट करने में सक्षम थी? चूँकि औद्योगिक क्रान्ति से पहले सामान्य आबादी के बीच नयी अभिरुचियों और नई भोग-विलास की वस्तुओं के किसी बड़े पैमाने पर प्रसार का कोई सबूत नही हैं, दी व्रिज ने अपनी कहानी और विषेष रूप से इसकी विकास की समय-रेखा को अच्छे अनुभवजन्य साक्ष्य पर कम और नैतिक तर्कों, दार्शनिक अटकलबाजी और समकालीन लेखकों की प्रचलित राजनीतिक आर्थिक सोच के इर्द-गिर्द बुना है।

दूसरे शब्दों में, एक वास्तविक 'उद्यमशील-उपभोक्ता क्रांति' की समय-रेखा को प्रदर्शित करने के लिए शायद ही कोई भौतिक प्रमाण हैं, इसलिए वह अनेक प्रकार के साहित्यिक सबूत देना पसंद करते हैं। ये साहित्यिक साक्ष्य, केवल व्ययसाध्यता, उद्यमशीलता और आलस्य के अर्थों में बदलाव दिखाते हैं। उन्हें उपभोग की प्रकृति और तीव्रता में अचानक परिवर्तन के प्रमाण के रूप में नहीं लिया जा सकता है। मध्यकाल के अंत और सोलहवीं शताब्दी के वाणिज्यिक विनिमय और घरेलू अधिकार में वस्तुओं पर कई अध्ययन हैं। वे इंग्लैंड में और तथाकथित 'निम्नतटीय देशों' और आयरलैंड और डेनमार्क में भी शानदार घरेलू उपभोग में उल्लेखनीय वृद्धि के संकेतक हैं। यह उससे पहले हुआ जिसे बाद में 'उपभोक्ता क्रांति' के रूप में वर्णित किया गया था। लेकिन निम्न वर्गों और सामाजिक स्तरों के बीच उपभोक्तावादी व्यवहार के प्रवेश के प्रमाण बहुत कम हैं। यह तर्कसंगत था क्योंकि ऐसे ऐतिहासिक साक्ष्य हैं, जिनसे पता चलता है कि मजदूरी वास्तविक रूप में कम हो रही थी और यह प्रवृत्ति पश्चिमी यूरोप में अधिकांश सत्रहवीं और अठाहरवीं शताब्दी में बनी रही। जान दी व्रिज की 'उद्यमशील क्रांति' हमें एक अलग स्पष्टीकरण प्रदान करती है। उनके विचार में, वास्तविक रूप में मजदूरी गिरावट, निम्न सामाजिक वर्गों के बीच उपभोग के स्तर में वृद्धि के साथ-साथ चली। इन विरोधाभासी रुझानों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए, वह इनके साथ बढ़ते हुए उत्पादक सामग्री और श्रम की गहनता का तर्क देते हैं। अन्य विद्वानों ने उनके खिलाफ इस आधार पर तर्क दिया है कि अंग्रेजी ग्रामीण मजदूरों के लिए, तथाकथित 'उद्यमशील क्रांति' का मतलब उपभोग स्तर की वृद्धि के बजाय अधिक आर्थिक कष्ट रहा होगा। यूरोप में सोलहवीं शताब्दी की वाणिज्यिक क्रांति के बाद एक लम्बे समय तक आर्थिक गतिहीनता भी थी। थोड़ा बहुत शोध उपभोग मानकों की जाँच के लिए परीक्षण वस्तुसूचियों पर किए गये हैं। लेकिन वे प्रारम्भिक आधुनिक समाज में निम्न सामाजिक समूहों के जीवन स्तर के बारे में जानकारी प्रदान करने में बहुत उपयोगी नहीं हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि ऐसी वस्तुसूचियाँ अपेक्षाकृत बेहतर सामाजिक समूहों और वर्गों के उपभोग के बारे में अधिक जानकारी प्रदान करती हैं। ये वर्ग साक्षर थे और अपने उपभोग की ऐसी वस्तुसूचियाँ बनाते हैं जबकि निम्न वर्गों में हम शायद ही ऐसी वस्तुसूचियों का अस्तित्व पाते हैं। इसलिए वस्तुसूची के माध्यम से जाँच किये गये उपभोग के स्तर का प्रमाण मध्य सामाजिक समूहों और उच्च वर्गों की ओर झुका हुआ है। इसलिए, वस्तुसूचियों के विद्वानों ने निम्न सामाजिक स्तर के सम्बन्ध में उपभोक्ता व्यवहार में बदलाव के बारे में कोई लम्बा-चौड़ा दावा नहीं किया है। हालांकि कुछ विद्वानों का विश्वास है कि उपभोक्ताओं के व्यवहार में बदलाव अधिक व्यापक था और यह गरीब श्रमिक वर्गों के बीच भी हुआ था। लेकिन यह बिना जोखिम के कहा जा सकता है कि औद्योगिक क्रांति से पहले समाज के निम्न सामाजिक समूहों के बीच उपभोग के विस्तार की बहुत कम पुष्टि हुई है और इसके लिए पुष्टिकारक सबूतों की कमी है।

'उद्यमशील' क्रान्ति और 'उपभोक्ता क्रान्ति' से निकले विचारों ने मजदूरों के लिए एक निश्चित कार्यवर्ष की धारणा पर सवाल उठाया। वे प्रतिवर्ष काम किए गए दिनों की संख्या में वृद्धि की कल्पना करते हैं क्योंकि लोगों ने चाय, चीनी, किताबों और घड़ियों जैसी नयी उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदने के लिए अतिरिक्त धन अर्जित किया। यदि इस तरह से कार्यवर्ष में वृद्धि हुई, तो श्रम निवेश जनसंख्या की तुलना में अधिक तेजी से बढ़े, जिससे पूर्व-आधुनिक काल में आर्थिक विकास हुआ। वास्तविक मजदूरी साहित्य में सामान्य दृष्टिकोण के विपरीत, जो मानता है कि कार्यशील वर्ष स्थायी था

और फिर गणना करता है कि नियत मजदूरी और मूल्यों में बदलाव से वार्षिक उपभोग में कितना परिवर्तन आया, 1300-1830 के बीच इंग्लैंड के श्रमिकों के एक अनुभवजन्य अध्ययन में राबर्ट सी. एलन और जैकब एल वेसडॉर्फ (2010) ने यह माना कि श्रमिक समय के साथ अपना उपभोग स्थिर कर लेते हैं और उन्होंने यह गणना की कि वेतन और मूल्यों में परिवर्तन प्राप्त करने के लिए कार्यशील वर्ष को कितना बदलना पड़ेगा। विशेष रूप से, उन्होंने एक विश्लेशात्मक उपकरण का इस्तेमाल किया जिसे उन्होंने 'बुनियादी उपभोग की वस्तुओं की एक टोकरी (Basket)' कहा और ग्रामीण और शहरी दिहाड़ी मजदूरों के कार्यवर्ष की गणना इस कार्य की आवश्यकता के आधार पर की अगर वे इस टोकरी की वस्तुएँ खरीदना चाहते थे। उन्होंने अपने नतीजे की वास्तविक कार्यवर्ष के स्वतन्त्र अनुमानों से तुलना की और पाया कि ग्रामीण श्रमिकों के बीच दो 'उद्यमशील क्रान्तियों' के उदाहरण थे। उनके विश्लेषण में हालांकि दोनों आर्थिक कठिनाइयों के परिणाम थे और किसी भी 'उपभोक्ता क्रान्ति' का कोई संकेत नहीं था। ग्रामीण मजदूरों की तुलना में शहरी मजदूरों के लिए सबूत अलग थे। उनके वास्तविक कार्यवर्ष और बुनियादी वस्तुओं की टोकरी (Basket) को खरीदने के लिए आवश्यक कार्यदिनों की संख्या में चौड़ी खाई थी। इसलिए शहरी क्षेत्रों में एक उपभोक्ता क्रांति के लिए अवसर था। यह अध्ययन दिहाड़ी मजदूरों के दो समूहों के लिए किया गया थाः दक्षिणी इंग्लैंड के खेतिहर और लंदन के भवन निर्माण करने वाले मजदूर। खेत-मजदूरों के लिए बुनियादी वस्तुओं की खरीदने के लिए आवश्यक कार्यवर्ष की वास्तविक कार्यवर्ष के स्वतंत्र अनुमानों के साथ यथोचित रूप से सहमति है। वे जिन बुनियादी वस्तुओं का उपयोग करते हैं, उस उपभोग की टोकरी में कोई नयी वस्तु (चीनी, तम्बाकू, चाय, कॉफी आदि) नहीं थी बल्कि केवल दैनिक उपभोग की वस्तुएँ जो कि प्रारम्भिक आधुनिक इंग्लैंड में आसानी से उपलब्ध थीं, केवल वही मौजूद थीं। इस तथ्य से कि वे काफी हद तक वास्तविक कार्यवर्ष से मेल खाते थे, यह प्रतीत होता है पूर्व औद्योगिक खेतिहर श्रमिकों के बीच उपभोक्ता क्रान्ति नहीं हुई। इसके विपरीत, लंदन के निर्माण श्रमिकों के लिए, उनके वास्तविक कार्यवर्ष और टोकरी को खरीदने के लिए आवश्यक कार्यवर्ष और दिनों के बीच एक बड़ी और चौड़ी खाई यह बताती है कि औद्योगिक क्रान्ति तक पहुँचने में उपभोक्ता क्रान्ति की पूरी गुंजाइश थी जो दोनों अवधारणाओं 'उद्यमशील क्रान्ति' और 'उपभोक्ता क्रान्ति' से मेल खाती हैं। इस अध्ययन में किये गए अनुभवजन्य अभ्यास ने पूर्व-औद्योगिक दिहाड़ी मजदूरों के कार्यों के तरीकों में अन्य अन्तर्दृष्टियाँ प्रदान किया। खेतिहर श्रमिकों के लिए, उन्हें काम की आवश्यकताओं में वृद्धि के दो सोपान मिले : एक 1540 और 1616 के बीच, दूसरा 1750 और 1818 के बीच। श्रम निवेष में शुरुआती उभार इंग्लैंड में 49 पवित्र (Holy) दिनों (Days) को हटाने के साथ-साथ मेल खाता है, जो कि 1536 में लागू किये गये 'प्रोटेस्टेन्ट सुधार' का हिस्सा था। यदि पवित्र दिनों (Holy days) के इस उन्मूलन का उद्देश्य गरीबों को पूरे वर्ष में अधिक दिन काम करने की अनुमति देकर उनके उपभोग को बनाए रखने में मदद करना था, तो इससे श्रमिकों के अधिक सम्पन्न समूहों, जैसे शहरी मजदूरों को भी उच्च वांछित उपभोग के स्तर को प्राप्त करने में मदद मिली होगी जो बदले में विनिर्माण क्षेत्र के लिए एक प्रोत्साहन हो सकता था। अपने अध्ययन में खेत-मजदूरों के बीच अवास्तविक उद्यमशीलता, हालांकि समय के साथ अधिक श्रम की आपूर्ति करने वाले परिवारों के विचार का समर्थन करती है परन्तु उपभोग के लिए नयी और अधिक वस्तुओं का उनकी उपभोग-टोकरी में प्रवेश करने का विचार या उपभोक्ता क्रान्ति का विचार तर्क संगत नहीं लगता। बल्कि खेत श्रमिकों का अतिरिक्त श्रम-निवेश इस तथ्य से उपजा है कि दैनिक

उपभोग की वस्तुएँ आर्थिक रूप से प्राप्त करना और कठिन हो जाता है। खेत मजदूरों के लिए वस्तुओं की एक समान टोकरी प्राप्त करने के लिए 1500 और 1616 के बीच लगभग 160 से 300 से थोड़ा अधिक बढ़कर कार्य दिवसों की आवश्यकता प्रतिवर्ष होती थी।

बोध प्रश्न 1

1) 'उद्यमशील क्रांति' शब्द से आप क्या समझते हैं? प्रारम्भिक आधुनिक यूरोप की अर्थव्यवस्था और समाज पर इसके प्रभाव का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) प्रारम्भिक आधुनिक यूरोप के आर्थिक और सामाजिक जीवन में 'यूरोपीय विवाह प्रणाली' की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

12.5 प्रारम्भिक आधुनिक यूरोप में आद्य-औद्योगीकरण

आद्य-औद्योगीकरण एक धारणा थी जिसने उन घरेलू उद्योगों के विकास का संकेत दिया जो दूर के बाजारों के लिए वस्तुओं का उत्पादन करते थे। इस तरह के उद्योगों का विकास यूरोप के कई क्षेत्रों में सोलहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के बीच देखा गया था। ये तथाकथित आद्य उद्योग ज्यादातर गामीण इलाकों में उभरे थे, जहाँ वे कृषि के साथ-साथ पनपते हैं। उन्होंने किसी उन्नत तकनीकी का इस्तेमाल नहीं किया। इस तरह के उद्योगों में कारखाना-निर्माण के रूप में श्रम शक्ति को भी केन्द्रीयकृत नहीं किया गया था। प्रारम्भिक आधुनिक यूरोप में घरेलू क्षेत्र में, इस व्यापक औद्योगिक विकास ने लम्बे समय से अध्ययन के विषय में रुचियाँ जगाई हैं हालांकि यह एक विवादास्पद विषय भी था। लेकिन 1970 के दशक में इसमें फिर से रुचि जगी और शोधकर्त्ताओं नें 'आद्य-इंडस्ट्री' पर ध्यान केन्द्रित किया। यह सामंतवाद से पूँजीवाद में संक्रमण और कारखानों के रूप में औद्योगीकरण का एक स्पष्टीकरण बन गया।

परिभाषिक पद 'आद्य-औद्योगीकरण' का इस्तेमाल फैंकलिन मेंडेल्स पहली बार 1969 में फ्लेमिश (उत्तर और पश्चिमी बेल्जियम के) लिनन (कपड़ा) उद्योग पर शोध में करते हैं। फ्रेंकलिन मेंडेल्स ने इस शोध पर एक प्रसिद्ध लेख 1981 में प्रकाशित किया। फ्रेंकलिन मेंडेल्स ने तर्क दिया कि आद्य-उद्योग ने जनसंख्या में इस जनसांख्यिकीय परिवर्तन का आगे विस्तार किया जिसके कारण आद्य-उद्योगों का और विस्तार हुआ

और जिससे एक प्रकार का स्व-पोषित विकास हुआ। मेंडेल्स ने तर्क दिया कि घरेलू उद्योग में इस स्व-पोषित वृद्धि ने कारखाना उत्पादन के लिए आवश्यक आर्थिक बदलावों जैसे कृषि के वाणिज्यीकरण, पूंजी के संचय, उद्यमशीलता के विकास, विदेशी बाजारों पर नियंत्रण और एक औद्योगिक श्रम शक्ति के निर्माण के लिए आवश्यक कई परिवर्तन किए। मेंडेल्स ने दावा किया कि आद्य-औद्योगीकरण, औद्योगीकरण की शुरुआत थी। अठारहवीं शताब्दी में, सभी पूर्व-आधुनिक कृषि समाजों की तरह, कृषि संचालन मौसमी था और इस तरह की कृषि ने यूरोप में ग्रामीणों के लिए एक मौसमी बेरोजगारी पैदा की। लेकिन जो नया था वह यह था कि अब अनेक ग्रामीण लोगों ने घरेलू शिल्प के माध्यम से उत्पादन करना शुरू कर दिया और उन्होंने अपनी उत्पादित वस्तुओं को अपने नजदीकी बाजारों और क्षेत्रों से दूर के बाजारों में निर्यात करना शुरू कर दिया। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप पारम्परिक शहरी संस्थाएँ जैसे श्रेणियाँ (guilds) जिन्होंने पहले औद्योगिक विकास को सीमित किया हुआ था, अब उन्होंने अपनी प्रासंगिकता खोना शुरू कर दिया और वे गायब होने लगीं। इस प्रक्रिया ने एक साथ ग्रामीण संस्थाओं जैसे कि उत्तराधिकार प्रणाली, सामुदायिक संस्थाओं जैसे कम्यून और जागीर प्रणाली (Manorial System) को कमजोर कर दिया। पारम्परिक समाज में, जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक संसाधनों में एक अलग तरह का संतुलन और समायोजन था। अब वह संतुलन बाधित हो गया। 1974 में डेविड लेविन ने भी आद्य-इंडस्ट्री के विकास में जनसंख्या के रूप में जनसांख्यिकीय परिवर्तन की भूमिका पर जोर दिया। उन्होंने औद्योगिक पूंजीवाद के लिए मजदूरी पर निर्भर 'सर्वहारा' के निर्माण के लिए इन विकासों की भूमिका के लिए तर्क दिया। 1976 में जॉयल मोकिर ने इन अधिकांश तर्कों को खारिज करते हुए दावा किया कि पारम्परिक क्षेत्र में आद्य-उद्योगों ने आधुनिक क्षेत्र के लिए सस्ते अधिशेष श्रम के एक समूह का निर्माण किया। अंत में, 1977 में, तीन जर्मन इतिहासकारों, पीटर क्रायरे, हांस मेडिक और जुर्गन श्लूमबोहम ने औद्योगीकरण से ध्यान हटाकर यह तर्क दिया कि आद्य-उद्योगों ने विकास के लिए पारम्परिक यूरोपीय समाज में पूंजीवादी और आधुनिक उद्योग के विकास में जनसांख्यिकीय, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं को तोड़ दिया। प्रारम्भ में मेंडेल्स के अठाहरवीं शताब्दी के फ्लैन्डर्स के अध्ययन और उन्नीसवीं सदी के लीसेस्टरशायर के लेविन के केवल दो प्रमुख अनुभवजन्य अध्ययन इस विषय पर थे।

डियोन और मेंडेल्स ने आद्य-औद्योगीकरण के चार मुख्य प्रभावों को सूचीबद्ध किया। सबसे पहले, आद्य-उद्योगों ने जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहन दिया और ग्रामीण आबादी पर कम्यून, जमींदारों और विरासत प्रणालियों के पारम्परिक नियन्त्रण को कम करने के परिणामस्वरूप इसकी परिणति भूमि विखंडन के रूप में हुई। दूसरा, आद्य-औद्योगिक उत्पादन से अर्जित मुनाफे से कारखाना औद्योगीकरण के लिए पूँजी के संचय में भी मदद मिली। तीसरा, 'आद्य-उद्योगों' ने व्यापारियों और श्रमिकों को उद्यमशीलता कौशल में प्रशिक्षित किया जो कारखाना औद्योगीकरण के लिए आवश्यक था। अंत में आद्य-औद्योगीकरण कृषि के लिए भी एक उत्प्रेरक था और इसने वाणिज्यीकरण को प्रोत्साहित किया। कृषि वस्तुओं के लिए एक विशाल बाजार के बिना, स्थाई आधार पर शहरीकरण और औद्योगीकरण को बनाए रखना असंभव रहा होता। इस तरह से आद्य-उद्योग ने कारखाना उद्योग का मार्ग प्रशस्त किया। यद्यपि लेखकों ने कभी-कभी इसके उद्योगों के विनाश के विपरीत प्रभाव भी स्वीकार किए (मेंडेल्स, 1982)।

12.6 आद्य-औद्योगीकरण के सिद्धान्तों की आलोचना

विद्वानों द्वारा आद्य-औद्योगीकरण के सिद्धान्तों की कई आधारों पर आलोचना की गई है। इस सिद्धान्त के साथ पहली समस्या यह है कि इसमें एक उत्पादन इकाई सटीक क्षेत्रीय आकार और प्रकृति के रूप में ठीक से परिभाषित नहीं है। आद्य-उद्योग अपने क्षेत्रीय विस्तार में भिन्न हो सकते हैं और अक्सर एक बाजार शहर के आर्थिक क्षेत्र से परे चले जाते हैं या दूसरी ओर उनमें एक विशिष्ट क्षेत्र में स्थित केवल एक या दो समुदाय के लोगों की सीमित संख्या के द्वारा उत्पादन शामिल था। इस अर्थ में, हम एक विशेष क्षेत्र के आद्य उद्योग को एक भौगोलिक क्षेत्र के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जहाँ लोग दूर के बाजारों में विक्रय के लिए वस्तुओं के उत्पादन में लगे हुए थे लेकिन यह विश्लेषणात्मक कठोरता के बिना बहुत अस्पष्ट परिभाषा प्रतीत होती है। दूसरा, विद्वानों में किसी विशेष क्षेत्र के श्रम के रोजगार के प्रतिशत के मुद्दे पर आम सहमति नहीं है जिसे गैर कृषि क्षेत्र में नियोजित किया जाना चाहिए ताकि इसे आद्य-औद्योगिक क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया जा सके। औद्योगिक उत्पादन में तीव्रता और श्रम रोजगार की मात्रा में परिवर्तन के बारे में भी स्पष्ट नहीं है कि आद्य-औद्योगीकरण के उदाहरण के रूप में इसे योग्य बनाने के लिए, उस विशेष आर्थिक गतिविधि में ऐसे श्रम बल को कितना चिरस्थायी होना चाहिए। आद्य-औद्योगीकरण के लिए निर्यात बाजारों का निहितार्थ भी समस्यामूलक है। क्या स्थायी निर्यात बाजारों के स्थायित्व के बिना 'आद्य-औद्योगीकरण' स्वयं को बनाए रख सकता है? या क्या निर्यात बाजार आद्य-उद्योगों के विकास के लिए नितांत आवश्यक हैं या कुल औद्योगिक उत्पादन के किस अंश को 'आद्य-उद्योग' के रूप में नामित करने के लिए निर्यात करने की आवश्यकता है? फिर निर्यात बाजारों और 'आद्य-औद्योगिक' क्षेत्र से उनकी दूरी को स्थानीय के बजाए बड़ा क्षेत्रीय या निर्यात बाजार के रूप में चिह्नित करने के लिए क्या लक्षण होना चाहिए? ये सवाल अनुत्तरित रहे। स्थानीय शिल्प और निर्यात उन्मुख आद्य-उद्योगों के बीच विभेदीकरण भी सिद्धांत के समर्थकों के बीच विवादास्पद बना रहा। ऐसी श्रेणियों में विश्लेषणात्मक कठोरता को नजरअंदाज किया जाना स्पष्ट था। 'आद्य-औद्योगीकरण' के सिद्धान्त ने अन्य प्रकार के औद्योगिक उत्पादन की भी अनदेखी की। पूर्व-औद्योगिक विनिर्माण केवल कुटीर उद्योग पर आधारित नहीं था। शिल्प उत्पादन पर आधारित 'आद्य-उद्योग' में इस्तेमाल की जाने वाली तकनीक आदिम किस्म की नहीं थी। अधिक तकनीकी रूप से उन्नत शिल्प पर आधारित केन्द्रीयकृत कारखाना जो कुशल श्रमिकों को नियोजित करते हैं और शहरी केन्द्रों और निर्यात के लिए उत्पादन पर आधारित थे, पूर्व-औद्योगिक प्रारम्भिक आधुनिक काल में भी अस्तित्व में थे। कुछ इतिहासकारों ने तर्क दिया है कि पूर्व औद्योगिक विनिर्माण विविध रूपों में मौजूद थे और औद्योगिक क्रांति की शुरुआत से पहले अर्थव्यवस्था पर औद्योगिक उत्पादन के प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए सभी प्रकार के औद्योगिक उत्पादन पर विचार किया जाना चाहिए। दूसरों ने तर्क दिया कि शहरों में आधारित बड़े निर्यात उद्योग जो कारीगरों को अग्रिम धनराशि या कच्चा माल आदि देकर उत्पादन करवाते थे, उनको और अधिक परिष्कृत केन्द्रीयकृत औद्योगिक इकाइयों को भी औद्योगिक उत्पादन की मात्रा में जोड़ा जाना चाहिए। विभिन्न प्रकार के पूर्व-औद्योगिक विनिर्माणों को बनाए रखने में तकनीकी कारकों और भौतिक भूगोल की भूमिका की अनदेखी एक अन्य प्रमुख आलोचना का आधार थी। मेंडेल्स ने एक विशिष्ट उत्पादन करने के लिए आवश्यक न्यूनतम् उत्पादन सामग्री (जिसे समकालीन अर्थशास्त्री 'उत्पादन फलन्' कहते हैं) और

परिवहन लागत के महत्व को बताने के लिए एक क्षणिक संदर्भ दिया लेकिन विस्तार से इन कारकों की भूमि का एक अज्ञात क्षेत्र बना रहा। संक्षेप में, आलोचकों ने तकनीकी, भौगोलिक और संस्थागत कारकों की भूमिका को कम करके आँकने की ओर संकेत दिया।

इन सिद्धान्तों में 'पारम्परिक समाजों' के बारे में पूर्वाग्रहपूर्ण दृष्टिकोण था जिनमें आद्य-उद्योग के विकास ने परिवर्तन शुरू किये थे, और इन पूर्व धारणाओं को चुनौती दी गई थी। 'आद्य-औद्योगीकरण की परिकल्पना अलेक्जेंडर छायानोव के विचारों से बिना आलोचना के उधार ली गई थी। छायानोव ने किसानों को विवेकरहित मनुष्यों के रूप में माना जो लागत और मुनाफे की गणना करने में सक्षम नहीं थे। बाजारों में उनका धन का उपयोग या लेन-देन तर्कसंगत दृष्टिकोण पर आधारित नहीं था (छायानोव, 1966)। लेकिन प्रारम्भिक आधुनिक काल के किसान और अन्य गैर-कृषि उत्पादकों की यह अनुभूति किसी भी तरह के सत्य-साधनीय अनुभवजन्य अध्ययन पर आधारित नहीं थी। ग्रामीण उत्पादकों और उपभोक्ताओं का निर्वाह के प्रति उन्मुखीकरण को वैसे ही स्वीकार कर लिया था। किसान और यहाँ तक कि आद्य-औद्योगिक श्रमिक एक साथ कई भूमिकाओं जैसे व्यापारियों, बिचौलियों, अग्रिम राशि देकर अन्य शिल्पियों द्वारा उत्पादन करवाने और कभी-कभी विनिर्माताओं के रूप में कार्यरत थे। पूर्व आधुनिक उत्पादकों के आर्थिक निर्णय और उत्पादक विकल्प जनसांख्यिकीय और आर्थिक कारकों के कारण बदल रहे थे। उनके दृष्टिकोण और अनुभूतियाँ बदल सकती थी और उन पर अपरिवर्तनीय 'पारम्परिक मानसिकता' का वर्चस्व नहीं था। उनके आसपास के सामाजिक परिवर्तनों ने उन्हें आर्थिक गणना के संदर्भ में सोचने के लिए मजबूर किया उनके निर्णय तर्कसंगत आर्थिक विकल्पों द्वारा निर्देशित और शासित होने लगे और उन्होंने बाजार की शक्तियों के प्रभाव को महसूस किया। सिद्धांतों की जनसांख्यिकीय भविष्यवाणियाँ भी मिथ्या पाई गई, जैसे-जैसे इस विषय पर अधिकाधिक अनुभवजन्य अध्ययन आने शुरू हुए। इसी तरह 'आद्य-उद्योग' का प्रभाव भी एकसमान नहीं था और यह वर्ग, लिंग, क्षेत्र तथा अन्य जनसांख्यिकीय कारकों के अनुसार भिन्न था। इसका प्रभाव यूरोपीय समाजों में जनसांख्यिकीय चर राशियों जैसे विवाह, प्रजनन, मृत्यु दर और प्रवासन पर काफी भिन्न-भिन्न था। यह अभिधारणा दी गई थी कि उन सभी क्षेत्रों ने जिन्होंने 'आद्य-उद्योगों' के विकास का अनुभव किया, वहाँ निरपेक्ष संख्या और प्रति इकाई घनत्व के रूप में जनसंख्या में वृद्धि का भी अनुभव किया और वे विवाह योग्य आयु के कम होने और प्रजनन दर में वृद्धि आदि को भी प्रदर्शित करते हैं। हालांकि, वास्तविक अनुभवजन्य अनुभवों ने विविधताओं की एक विस्तृत श्रृंखला का प्रदर्शन किया। इसके अलावा, इन जनसांख्यिकीय परिवर्तनों और 'आद्य उद्योग' की वृद्धि के बीच कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था। कृषि के वाणिज्यीकरण और 'आद्य-उद्योग' के बीच का सम्बन्ध भी अनिश्चित था। 'आद्य-उद्योगों' के क्षेत्रों में कृषि सम्बन्धों में भी कोई समरूपता नहीं थी। ये क्षेत्र निर्वाह के लिए खेती से लेकर बाजार केन्द्रित वाणिज्यिक खेती तक भिन्न-भिन्न थे और क्षेत्रों का एक बड़ा हिस्सा अभी भी सामन्ती वर्चस्व के तहत था और उसका संचालन कृषि दासों के श्रम द्वारा होता था। आद्य-उद्योगों के कारीगर कई मामलों में कृषि पर भी आंशिक रूप से निर्भर थे। वे शहरी श्रमिकों की तरह केवल कृषि उपज के उपभोक्ता नहीं थे। क्षेत्रों के बीच पारम्परिक कृषि संस्थाओं के जीवित रहने और ग्रामीण सामाजिक संरचना में भी अन्तर थे। कुछ में वे बिखरने लगे थे लेकिन दूसरे क्षेत्रों में वे लम्बे समय तक अप्रभावित अस्तित्व में रहे। इसलिए सामाजिक, राजनैतिक

संरचनाओं की भूमिका को भी सकारात्मक रूप से संशोधित किया गया है। अब पारम्परिक सामाजिक संरचना के स्थायित्व और निरंतरता और धीरे-धीरे बाजारों के प्रवेश को स्वीकृति मिली है। विद्वान अब श्रेणियों और उनके विशेषाधिकारों से सम्बन्धित संरचनाओं, ग्राम समुदायों और जागीरों की संस्थाओं के लम्बे समय तक बने रहने में विश्वास करते हैं। एक अन्तिम प्रमुख आलोचना ने कारखाने के उत्पादन और औद्योगकीकरण का मार्ग प्रशस्त करने में या औद्योगिक क्रांति के अग्रगामी के रूप में कार्य करने में आद्य उद्योग की भूमिका पर सवाल उठाया है।

12.7 प्रारम्भिक आधुनिक यूरोप में पुस्तक उत्पादन, साक्षरता और मानव पूँजी निर्माण

मध्यकालीन युग के अन्तिम चरण में उत्तरी सागर क्षेत्र में पहले से ही मानव पूँजी में निवेश के लिए शिल्पकारों के कला कौशल और समग्र साक्षरता (और शायद सामान्य शिक्षा) दोनों में उत्साहजनक स्थितियाँ थीं। उसी समय, पंद्रहवीं शताब्दी के दौरान, जिस तरह से ज्ञान का पुनरुत्पादन किया गया था, उसमें पुस्तकों की कीमतों में बहुत तेज गिरावट आई, जिसके फलस्वरूप 'शैक्षिक' ज्ञान की पुस्तकों के उत्पादन और पुनरुत्पादन के लिए सकारात्मक प्रतिक्रिया मिली। 1455 के बाद के दशकों और शताब्दियों में पुस्तक उत्पादन में भारी वृद्धि हुई। तब पहले से ही सूचना प्रसार की एक नई प्रणाली अस्तित्व में थी। प्रारम्भिक आधुनिक काल की शुरुआत को परिभाषित करने वाली दो प्रमुख घटनाएँ विचारों से जुड़ी हुई थीं। पहला तकनीकी था : पहला टाइप के द्वारा मुद्रण का विकास। सदियों से विचार पांडुलिपियों में प्रसारित हो रहे थे, लेकिन मुद्रण के यन्त्र ने बहुत बड़ी संख्या में ग्रन्थों की प्रतिलिपि तैयार करने का एक अतिरिक्त साधन प्रस्तुत किया। सस्ते और महँगे दोनों संस्करणों में पुस्तकों का उत्पादन किया गया। सस्ते संस्करणों का उत्पादन, उन लोगों की बढ़ती संख्या के साथ मिलकर जो पढ़ने और लिखने में सक्षम थे, इसका मतलब था कि समाज के सभी वर्गों के लोग पढ़ रहे थे – अमीर, मध्यम वर्ग और यहाँ तक कि कुछ श्रमिक जनों की भी पुस्तकों और विचारों तक पहुँच थी। मुद्रण ने जीवन के लिए, सस्ती पुस्तकों की उपलब्धता का धर्म और संस्कृति पर बड़ा प्रभाव डाला होगा। प्रोटेस्टेंट विचारों के प्रभाव के लिए पुस्तकें और पर्चे महत्वपूर्ण थे। पढ़ना और लिखना यूरोपीय मध्ययुग और एशियाई साम्राज्यों में मौजूद था, लेकिन यह मोटे तौर पर पादरी और मध्ययुगीन मुंशियों तक ही सीमित था, जिन्होंने अथक नकल की और फिर से नकल की। साक्षरता एक विशिष्ट विशेषाधिकार बनी रही और 1500 सी. ई. तक, सबसे अधिक सम्भावना नहीं थी कि दुनिया की जनसंख्या के 10 प्रतिशत से अधिक लोग पढ़ या लिख सकते थे। फिर क्या बदला? प्रारम्भिक आधुनिक पश्चिम में, निश्चित रूप से गुटेनबर्ग के मुद्रण यंत्र और चलनशील टाइप का आगमन हुआ। गुटेनबर्ग के मुद्रण यंत्र के आविष्कार होने तक पाठ को पुनः पेश करने का एकमात्र तरीका हाथ से नकल करना था, जो एक दुश्कर कार्य था। मुद्रण यन्त्र ने पुस्तकों को एक व्यापक वस्तु बना दिया, और ठीक उसी कारण से, साक्षरता एक व्यापक घटना बन गई। 'पुस्तक' के सामाजिक इतिहास की रूपरेखा रोजर चार्टियर ने प्रस्तुत की है। मानकीकृत टाइप आकृति ने पढ़ने को आसान बना दिया, क्योंकि पाठकों को अब किसी अन्य व्यक्ति की लिखावट की विलक्षणता से नहीं जूझना पड़ता था। लिपिकीय नकल करने वालों द्वारा अक्सर की जाने वाली त्रुटियों को समाप्त कर दिया गया और इस प्रकार हजारों लोगों को एक मूलग्रंथ के एक समान, संभवतः त्रुटिमुक्त ''मानक

संस्करण'' तक पहुँच प्राप्त हो सकती थी। इसने लिखित शब्द के उत्पादन, प्रसारण और अभिग्रहण के नये तरीके पेश किए। हालांकि पूर्व-औद्योगिक समाजों और प्रारम्भिक आधुनिक यूरोप में साक्षरता के प्रसार पर संदेह नहीं किया जा सकता है। साक्षरता का भूगोल उत्तर और उत्तर-पश्चिम यूरोप में उच्च साक्षरता का संकेत देता है, हालांकि इसमें लिंग, व्यवसाय और सम्पदा के आधार पर असमानताएँ थी। साक्षरता मुख्य रूप से एक व्यक्ति के कार्य और सामाजिक स्थिति से जुड़ी हुई थी।

अंत में इसी क्षेत्र में साक्षरता में उल्लेखनीय वृद्धि से सामान्य श्रमिकों तथा मानसिक श्रम और बौद्धिक गतिविधियों में लगे लोगों के बीच की खाई को पाट दिया गया, यह प्रक्रिया संभवतः तटीय देशों (और उत्तरी फ्रांस और शायद जर्मनी और इटली के कुछ हिस्सों में) ब्लैक डैथ की घटना के बाद डेढ़ शताब्दी के दौरान शुरू हुई और सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी तक इंग्लैंड में फैल गई। इस काल के अंत में, उत्तरी सागर क्षेत्र में लगभग सभी कुशल कारीगर संभवतः साक्षर थे, वे निश्चित रूप से तटीय देशों में पढ़ने और लिखने में सक्षम थे और ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी और फ्रांस में यह प्रक्रिया तेजी से बढ़ रही थी, कुशल प्रशिक्षण संस्थानों ने मानव पूँजी निर्माण के अपेक्षाकृत उच्च स्तर का उत्पादन किया। गिरती हुई पुस्तकों की कीमतों और साक्षरता में साथ-साथ वृद्धि हुई। मुद्रण में क्रांति के कई अन्य सामाजिक आर्थिक परिणाम थे। समाज और अर्थव्यवस्था में कई नई भूमिकाएँ सामने आई : 1) बुद्धिजीवी, जो अपनी कलम से जीते थे, यानि अपनी पुस्तकों की आय से (इरास्मस इसका शायद पहला उदाहरण था) और 2) प्रकाशक/मुद्रक, जिन्होंने अक्सर नई पुस्तक को शुरू करने और नई परियोजनाओं के विकास में और शिक्षाविदों को एक साथ लाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अखबार और पत्रिका का आविष्कार बाद में हुआ।

बोध प्रश्न 2

1) क्या आद्य-औद्योगीकरण औद्योगिक क्रांति का अग्रदूत था? इस पर अपनी स्थिति स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) पुस्तक-उत्पादन की प्रकृति पर संक्षेप में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

12.8 सारांश

इस इकाई में, हमने मूल रूप से यह प्रदर्शित किया है कि आधुनिक कारखानों प्रणाली के रूप में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के कारण बनने वाले आधार स्तम्भों में परिवर्तन कैसे धीमी गति से प्रारम्भिक आधुनिक यूरोप में आमतौर पर तटीय देशों में हो रहे थे। उपभोग और उत्पादन के प्रारूपों को क्रमशः कुछ विद्वानों द्वारा 'उद्यमशील क्रांति' और 'आद्य-औद्योगीकरण'' के रूप में अवधारणाबद्ध किया गया है। ये इतिहास में वैचारिक रूप से विवादस्पद विषय हैं। इस विषय में बड़े शैक्षणिक निवेश के बावजूद अनुभवजन्य प्रमाण भी निर्णायक नहीं हैं। लेकिन एक बात निश्चित है कि शेष विश्व अर्थव्यवस्था की तुलना में उत्तरी सागर से सटे देशों के समाज और अर्थव्यवस्था में कुछ विभिन्नता दिखाई दे रही थी। उपभोग और उत्पादन के बदलते प्रारूप और संस्थाओं का विकास इसकी भिन्नता के संकेतक हैं।

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 12.2 तथा भाग 12.4 देखें।

2) भाग 12.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 12.5 तथा भाग 12.6 के आधार पर उत्तर दें।

2) भाग 12.7 देखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 13 व्यापार के प्रारूप, उपनिवेशवाद और अठारहवीं शताब्दी में विचलन*

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 यूरोप का व्यापार और अमेरिका

13.3 एशिया में व्यापार और उपनिवेशवाद

13.4 उपनिवेश और पूंजीवाद

13.5 महान विचलन

13.6 कृषि और औद्योगिक क्रान्ति

13.7 युद्ध और सैन्य राजकोषीय कारक

13.8 विज्ञान और औद्योगिक प्रबोधन

13.9 मजदूरी और कारक मूल्य

13.10 महान और लघु विचलन – पश्चिम यूरोप और शेष विश्व

13.11 सारांश

13.12 शब्दावली

13.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बातों को समझेंगे:

- यूरोप और उपनिवेशों के बीच व्यापार की प्रकृति,
- पूंजीवाद के उद्‌भव में औपनिवेशिक व्यापार की भूमिका,
- औद्योगिक पूंजीवाद के उदय के लिए परिस्थितियाँ, और
- यूरोप और शेष दुनिया के बीच परिस्थितियों के अन्तर की मौजूदगी और प्रकृति पर विभिन्न दृष्टिकोण।

13.1 प्रस्तावना

स्पेन और पूर्तगाल के निवासियों द्वारा अमेरिका की खोज और औपनिवेशीकरण के बाद विश्व व्यापार में एक बहुत बड़ा विस्तार हुआ। 18वीं शताब्दी तक डच, ब्रिट्रिश और फ्रांसीसी प्रमुख नौसैनिक, व्यापारिक और औपनिवेशिक शक्तियाँ बन गये थे। यूरोपीय राज्यों की वाणिज्यवादी नीतियों द्वारा समर्पित व्यापार और औपनिवेशिक विस्तार की अगुवाई व्यापारिक कम्पनियों द्वारा की गई थी जिन्हें दुनिया की पहली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के रूप में माना जाता है। यूरोप की मुख्यधारा के वर्णन के

* इकाई लेखक : डॉ. रोहित वान्चू

अनुसार यह 1500 और 1800 के बीच की अवधि में घटित हुआ कि यूरोप में औद्योगिक क्रांति के लिए परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई। ये परिस्थितियाँ कहीं और मौजूद नहीं थीं और इनसे यूरोप का दुनिया में वर्चस्व स्थापित हुआ। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पश्चिम के उत्थान की एक भव्य आख्यान जो प्रभावशाली था, उसकी आलोचना वर्ष 2000 में किनेथ पॉमरांज की रचना *द ग्रेट डायवर्जन* में की गई थी। उन्होंने इसका एक मजबूत प्रकरण बनाया कि यूरोप और चीन के बीच का अन्तर केवल 18वीं शताब्दी में उभरा था। तीसरी दुनिया के राष्ट्रवादियों, मार्क्सवादियों, निर्भरता सिद्धान्तकारों और साम्राज्य के विस्तार के आलोचकों ने यूरोपीय पूंजीवाद की भूमिका पर जोर दिया है। कई विद्वानों जैसे जॉन डी. ब्रीज, रिगले, ओब्रायन, मोकिर और एलन आदि ने ब्रिटेन और यूरोप में होने वाले अन्तर्जात विकासों पर प्रकाश डाला है – कृषि पूंजीवाद का उद्‌भव, औद्योगिक परिवर्तन, उपयुक्त वित्तीय नीतियाँ, कोयले द्वारा लकड़ी का प्रतिस्थापन और श्रम और पूँजी के सापेक्ष मूल्य आदि इनमें शामिल हैं। चूँकि प्रसानन पार्थसारथी जैसे कुछ विद्वानों में 18वीं शताब्दी से कुछ पहले चीन और भारत की अर्थव्यवस्थाओं में पूंजीवाद और गतिशीलता के तत्वों की खोज की है, इसलिए विचलन पर वाद-विवाद अब भी जारी है।

13.2 यूरोप का व्यापार और अमेरिका

एड़म स्मिथ ने *द वेल्थ ऑफ नेशन्स* में लिखा था कि 'अमेरिका की खोज और आशान्तरिप से होकर पूर्वी इंडीज के लिए मार्ग की खोज मानव जाति के इतिहास में दर्ज की गई दो सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं'। स्पेन का साम्राज्य यूरोप में चाँदी, सोना, नई फसलों और वस्तुओं को लाया। वेस्टइंडीज, अमेरिका के दक्षिणी उपनिवेश, क्यूबा और ब्राजील में सस्ती श्रम की माँग के कारण गुलामों का व्यापार फला-फूला। 1700 के बाद अमेरिका के दक्षिण भागों में अफ्रीकी गुलामों ने कुल आबादी के लगभग 2/5वें हिस्से का गठन किया। वेस्टइंडीज में दास आधारित चीनी का उत्पादन एक शताब्दी से भी अधिक समय तक स्पेनिशवासियों, फ्रांसीसियों और ब्रिट्रिश के लिए महत्वपूर्ण था। कुछ विद्वानों ने ब्रिट्रिश औद्योगिक क्रान्ति के लिए आवश्यक पूँजी के प्रारंभिक संचय में वेस्टइंडीज के योगदान पर प्रकाश डाला है। अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में कपास की खेती के विस्तार ने ब्रिटेन और अमेरिका में पूंजीवाद के उदय में योगदान दिया। लगभग सभी गुलामों का आधा भाग – 46 प्रतिशत – 1492 और 1888 के बीच बेचे गए गुलाम 1780 के बाद के वर्षों में वहाँ लाए गए जब ब्रिटिश औद्योगिक क्रांति तेजी से आगे बढ़ी।

18वीं शताब्दी में अनेक समकालीनों का मानना था कि 1760 और 1770 के दशकों में उपनिवेशों के मामले में फ्रासींसी अंग्रेजों से बेहतर थे। हाइति में क्रांति आने से पहले तक सेन्ट डोमिंग्यू दुनिया के सबसे संपन्न क्षेत्रों में से एक था। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति के साथ इसने कई दशकों तक फ्रांस के विकास को पीछे धकेल दिया। अंग्रेजों की अन्तिम सफलता 17वीं शताब्दी के मध्य के नौ परिवहन अधिनियमों के सफल उपयोग पर आधारित थी जिसके द्वारा इसने अपने उपनिवेशों के साथ व्यापार पर एकाधिकार बना लिया। ब्रिटिश उपभोक्ता को इस वाणिज्यवादी नीति की एक कीमत चुकानी पड़ी लेकिन इसने ब्रिटिश जहाजरानी की प्रतिस्पर्धात्मक धार को बढ़ा दिया। वाणिज्यवादी नीतियों ने ब्रिटिश नौ-सेना और सामुद्रिक शक्ति को मजबूत बनाया। एडम स्मिथ ने महसूस किया कि अंग्रेजों ने भौतिक लाभ की तुलना में प्रतिरक्षा को अधिक महत्व दिया। स्पेनिश और पुर्तगालियों ने अपनी प्रारंभिक लाभप्रद स्थिति को

गँवा दिया। हालांकि क्यूबा चीनी के सबसे महत्वपूर्ण उत्पादकों में से एक रहा। डच सैन्य रूप से कमजोर थे और उन्होंने अमेरिका में व्यापारिक सफलता पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया, हालांकि वे इंडोनेशिया में अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सक्षम रहे। फ्रांसीसी, जो अंग्रेजों के सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी थे, अन्ततः 19वीं शताब्दी की शुरुआत में उनकी शक्ति क्षीण हो गई थी।

1451 और 1790 के बीच यूरोपीय उपनिवेशवादियों द्वारा आयात किये गये 6,658,400 दासों में से केवल 802,800 काले दासों को स्पेनिश अमेरिका में भेजा गया था जो कुल दासों का लगभग 12 प्रतिशत था। मैक्सिको और पेरू में, पर्याप्त मूलनिवासी इंडियन आबादी के साथ थे, उनकी भूमिका बहुत कम महत्वपूर्ण थी और उन्होंने शहरों में घरेलू श्रम और कारीगरों के रूप में काम किया। निम्न क्षेत्रों और तटीय क्षेत्रों में दास अधिक महत्वपूर्ण थे क्योंकि इन क्षेत्रों में एमरीइंडियन्स का बड़ी तादाद में विनाश हुआ था। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कोलम्बिया, वेनेजुएला और ग्वाटेमाला में चीनी, चावल, कपास और कोको का उत्पादन करने वाले दास आधारित बागान विकसित हुए, लेकिन 19वीं शताब्दी में वे पतनशील थे। 18वीं शताब्दी में पश्चिम अफ्रीका से लगभग 50 लाख दासों का निर्यात किया गया। 16वीं शताब्दी के बाद से, सशस्त्र यूरोपीय पूंजीपतियों और यूरोपीय राज्यों के संयुक्त बल ने युद्ध पूंजीवाद का निर्माण किया जिसके कारण औद्योगिक क्रांति हुई। राज्य को वैश्विक बाजारों का निर्माण करना था और उन्हें संरक्षित रखना था, साथ ही साथ उसे भूमि में निजी सम्पत्ति के अधिकारों को बनाना और बलपूर्वक लागू करवाना था। इसे लम्बी दूरियों पर अनुबंध करवाने थे, लोगों पर कर लगाना था और एक ऐसा ढाँचा तैयार करना था जो मजदूरी भुगतान के माध्यम से श्रम को जुटा सके।

यह अनुमान लगाया गया है कि 1493 और 1700 के बीच 51000 मिट्रिक टन से अधिक चाँदी यूरोप पहुँची जो विश्व भंडार का 81 प्रतिशत था। स्पेन में इस चाँदी के अन्तरवाह ने स्पेन से ज्यादा अन्य यूरोपीय देशों, विशेषकर नीदरलैंड और ब्रिटेन को लाभ पहुँचाया। चाँदी का उपयोग भारत से कपड़ा खरीदने के लिए, इंडोनेशिया से मसाले और चीन से चाय और रेशम खरीदने के लिए किया जाता था। इन उत्पादों का यूरोप में पुनर्निर्यात किया जाता था और इससे यूरोप में उपभोग के स्तर में वृद्धि हुई थी। पश्चिम अफ्रीका में गुलामों के भुगतान के लिए भी भारत से आयातित वस्तुओं का उपयोग किया जाता था। देशी अफ्रीकी राज्यों में अपने दुश्मनों को गुलाम बनाने की प्रथा थी लेकिन ये गुलाम सेनाओं या प्रशासन में सेवा करके अपने सामाजिक जीवन में ऊपर उठ सकते थे। अफ्रीका में शासकों ने भूमि का संचय करने की बजाय गुलामों का संचय करके अपनी शक्ति बढ़ाने की कोशिश की क्योंकि भूमि पर अर्ध-सामुदायिक नियंत्रण था। समय के साथ दासों के लिए भुगतान के लिए आग्नेय अस्त्रों का उपयोग किया गया और इसने इस क्षेत्र में अधिक सैन्यवृत्त राज्यों के लिए आधार तैयार किया। इसके बाद आग्नेय अस्त्रों के भुगतान के लिए इन सैन्यकृत राज्यों द्वारा ज्यादा से ज्यादा गुलामों को अन्दरूनी क्षेत्रों से पकड़कर लाया जाने लगा। 18वीं शताब्दी में अमेरिका में दासों की बढ़ती माँग दास-व्यापारियों द्वारा पूरी की गई थी जिनको सैन्यकृत अफ्रीकी राज्यों के बीच होने वाली प्रतिस्पर्धा का लाभ मिला था। अमेरिका की चाँदी ने भारत और चीन के साथ व्यापार का विस्तार भी किया जो अन्यथा यूरोपीय कम्पनियों के साथ व्यापार करने के लिए उतने उत्सुक नहीं थे। यह तर्क दिया जाता है कि चीन में चाँदी की भारी माँग के कारण अमेरिका में चाँदी का उत्पादन बढ़ा।

13.3 एशिया में व्यापार और उपनिवेशवाद

एशिया में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों ने न केवल दक्षिण एशिया में बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया में भी 18वीं शताब्दी में काफी बढ़ोत्तरी की। के. एन. चौधरी के अनुसार 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से भारतीय वस्त्रों – सूती और रेशमी – की यूरोपीय माँग ने भारतीय तटीय क्षेत्रों में कारीगरी उत्पादन के विकास को प्रोत्साहित किया। क्रिस्टोफर बेली जैसे विद्वानों ने तर्क दिया है कि भारतीय वस्तुओं की यूरोपीय माँग ने कारीगरी उत्पादन और कृषि के वाणिज्यीकरण दोनों को प्रोत्साहित किया जो 18वीं शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था की गतिशीलता में योगदान देता है। चूँकि भारत में यूरोपीय वस्तुओं की माँग बहुत कम थी इसलिए भारत से होने वाले आयातों का भुगतान उन्हें बहुमूल्य धातुओं और चाँदी के रूप में करना पड़ता था। इन बहुमूल्य धातुओं ने भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए उत्प्रेरक का काम किया और ब्रिटेन में ईस्ट इंडिया कम्पनी के आलोचकों द्वारा इस पर भारत को धन की निकासी का आरोप लगाया गया। कई संशोधनवादी विद्वानों ने तर्क दिया है कि 1757 में प्लासी के युद्ध में अंग्रेजी जीत के बाद भी बंगाल की अर्थव्यवस्था को महत्वपूर्ण गिरावट नहीं झेलना पड़ा था।

दूसरी ओर, इरफान हबीब और सुशील चौधुरी जैसे अन्य इतिहासकारों ने तर्क दिया है कि ईस्ट इंडिया कंपनी को 1765 में मुगल सम्राट द्वारा दीवानी दिये जाने के बाद इसने बंगाल के राजस्व पर नियन्त्रण हासिल कर लिया था। इसलिए अंग्रेजों को अब 1765 के बाद धनराशि के आयात करने की जरूरत नहीं थी और वे भारी मात्रा में ब्रिटेन को वस्तुएँ स्थानांतरित कर सकते थे। इसने ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के शुरूआती चरणों में आवश्यक पूँजी के पर्याप्त अनुपात का भाग बनाया। युद्ध और विजय ने, भारतीय सैनिकों और संसाधनों के उपयोग ने, और प्रायः किसी भारतीय शक्ति के साथ गठबंधन ने अंग्रेजों को भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित करने में मदद की। 18वीं शताब्दी के अन्त तक पूर्वी और दक्षिण भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रभुत्व ने व्यापार को प्रोत्साहन दिया और इसके कारण भारत से धन की निकासी हुई। अफीम और शोरा जैसी वस्तुओं की खरीदारी के लिए एकाधिकार बनाकर अंग्रेजों ने अपनी आय और शक्ति दोनों में वृद्धि की। अफीम की बलपूर्वक लादी गई खेती से उच्च दर्जे के लाभ प्राप्त हुए और चीन को अफीम का निर्यात करने से उसे चाय और रेशम का भुगतान करने में मदद मिली जिसका आयात ब्रिटेन वहाँ से कर रहा था। यह त्रिकोणीय व्यापार था जो चीन को चाँदी दिए जाने को कम करने के लिए भारतीय अफीम का उपयोग करता था। राजस्व अधिशेष का उपयोग ब्रिटेन में बिक्री के लिए वस्तुओं का क्रय करके ब्रिटेन को धन भेजने के लिए भी किया जाता था।

अमेरिका और एशिया के साथ यूरोपीय देशों का व्यापार 1800 तक तीन शताब्दियों में लगभग एक प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ा। क्योंकि पश्चिमी यूरोप की जीडीपी में 1500 और 1820 के बीच प्रतिवर्ष 0.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसलिए जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) की तुलना में अन्तर्महाद्वीपीय व्यापार का अनुपात तेजी से बढ़ रहा था। इंग्लैंड, फ्रांस, नीदरलैंड और स्पेन जो अटलांटिक व्यापार में शामिल थे, उनमें 1500 और 1800 के बीच अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में शहरीकरण और जीडीपी अधिक तेजी से बढ़ा। स्पेन में संसाधनों के अन्तर्वाह ने निरंकुशतावादी शासन को मजबूत किया और विनिर्माण क्षेत्र की प्रतिस्पर्धा को नुकसान पहुँचाया। फ्रांस में 1715 और 1790 के मध्य विदेश व्यापार से होने वाले शुद्ध पुनर्निवेशित मुनाफे फ्रांसीसी जीडीपी की प्रति व्यक्ति विकास दर का 7 प्रतिशत भाग होता था। अगर यह मान लिया जाए

कि विदेशों से प्राप्त मुनाफे ने पूरी अर्थव्यवस्था में निवेश को प्रोत्साहित किया, तब वे शायद 'फ्रांसीसी विकास के एक तिहाई भाग के लिए जिम्मेदार रहे होंगे'। *केम्ब्रिज इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ यूरोप*, भाग-I ने 1982 के ओब्रायन के अनुमान का हवाला दिया है कि परिधि के देशों ने 1784-1786 की अवधि में ब्रिटिश सकल निवेश में केवल 15 प्रतिशत का योगदान दिया। लेकिन लेखक यह भी बताते है कि ब्रिटेन का घरेलू बाजार चीन और भारत जितना बड़ा नहीं था और यह अपनी औद्योगिक वस्तुओं के लिए बढ़ते निर्यात पर निर्भर था। 1780 और 1801 के बीच निर्यात में वृद्धि जीडीपी में कुल वृद्धि के 21 प्रतिशत के बराबर थी और यह इसी अवधि के दौरान अतिरिक्त औद्योगिक उत्पादन का 50 प्रतिशत से अधिक, और 1815 और 1841 के बीच अतिरिक्त कपड़ा उत्पादन का 7 प्रतिशत से अधिक था। इसके अलावा, 1780 और 1801 के बीच अमेरिका में लगभग 60 प्रतिशत अतिरिक्त ब्रिटिश निर्यात हुआ। इसलिए, औपनिवेशिक बाजारों ने ब्रिटेन के उत्थान में अनिवार्य भूमिका निभाई, लेकिन पर्याप्त भूमिका नहीं।

13.4 उपनिवेश और पूंजीवाद

औपनिवेशिक दुनिया ने यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं को औद्योगीकरण के लिए पूँजी प्रदान की, कच्चे माल के स्रोत उपलब्ध कराये और विनिर्मित वस्तुओं के लिए बाजार उपलब्ध कराए। सस्ती खाद्य सामग्री के आयात से जीवन स्तर भी सुधरे। इरफान हबीब ने अनुमान लगाया है कि 1800 के आसपास भारत की ओर से दिये गये नजराने ने ब्रिटेन में पूँजी में तब्दील होने वाली कुल राष्ट्रीय बचत में लगभग 30 प्रतिशत का योगदान दिया था। यह भारत से ब्रिटेन को नजराने के आकलन पर आधारित है जो राष्ट्रीय आय का 2 प्रतिशत था और जो राष्ट्रीय आय के लगभग 7 प्रतिशत की पूँजी-निर्माण की दर पर आधारित था। उत्सा पटनायक ने 1801 में ब्रिटेन की जीडीपी में उपनिवेशों से प्राप्त नजराने का योगदान 6 प्रतिशत होने का अनुमान लगाया है जो उस वर्ष में सकल पूँजी निर्माण का 46.36 प्रतिशत था। हबीब के अनुसार, इन एक तरफा आयातों से प्राप्त धनराशि को बाद में उद्योग में निवेश किया जा सकता था, भले ही वह शुरुआत में बागान मालिकों और नवाबों के हाथ में थी।

एक अनुमान के अनुसार, 1770 में दास व्यापार से मुनाफों ने ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय का 0.5 प्रतिशत, कुल निवेश का 8 प्रतिशत और वाणिज्यिक और औद्योगिक निवेश का 39 प्रतिशत भाग का निर्माण किया। 18वीं शताब्दी के दौरान औपनिवेशिक संपत्तियों से आय ब्रिटेन में ब्याज दरों को कम करने के लिए एक महत्वपूर्ण कारक थी। अमेरिकी दास-बागानों से सस्ते कपास के आयात ने ब्रिटेन को पश्चिम अफ्रीका में और अमेरिका में बागानों के दासों को अपने वस्त्र उत्पादों को बेचने में सक्षम बनाया। ब्रिटिश वस्त्र विनिर्माण उद्योग के विकास में ब्रिटिश मिलों में उत्पादित कपड़े के लिए औपनिवेशिक बाजार एक महत्वपूर्ण कारक था। 1750-1800 की अवधि के दौरान औपनिवेशिक व्यापार ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय का 15 प्रतिशत था। दास आधारित बागानों द्वारा प्रदान की गई लाभप्रद स्थिति के बिना ब्रिटिश कपड़ा उद्योग 18वीं शताब्दी में भारतीय वस्त्रों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता था। इसके अलावा, चीनी, तम्बाकू, कॉफी जैसी वस्तुओं के आयात ने ब्रिटेन में उपभोग के स्तर और जीवन-स्तर को ऊपर उठाया। इसने अधिक कुशलता से उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहन भी प्रदान किया। लीवरपुल और ब्रिस्टल जैसे बन्दरगाह शहरों का निर्माण और मेनचेस्टर जैसे कपड़ा विनिर्माण केन्द्र का उभरना दास व्यापार और बागानों से जुड़ा हुआ है। बारक्लेस और लायड्स

जैसे बैंकों का विकास दासता या दास व्यापार के मुनाफे से हुआ था और इन्होंने बाद में उद्योगों को वित्त देने में मदद की।

उपनिवेशों से साम्राज्यिक महानगरों तक संसाधनों का प्रवाह सभी औपनिवेशिक शक्तियों के लिए विभिन्न स्तरों पर महत्वपूर्ण था। हालांकि प्रमुख दृष्टिकोण यह है कि स्पेन ने अपने उपनिवेशों का बेरहमी से शोषण किया था। लेकिन हाल की कृति ने बताया है कि स्पेन के एक उपनिवेश से दूसरे उपनिवेश के बीच पर्याप्त स्थानांतरण थे। यह अनुमान लगाया गया है कि 19वीं शताब्दी की शुरुआत में स्पेन को उसके उपनिवेशों की स्वतंत्रता की वजह से जो नुकसान हुआ, वह उसकी राष्ट्रीय आय का 8 प्रतिशत भाग था। और यह इस धारणा पर आधारित है कि पर्याप्त राजस्व का उपयोग उत्पादक रूप में किया गया था। औपनिवेशिक व्यापार से होने वाले मुनाफे का 1784-1796 के दौरान स्पेन के कुल पूँजी-निर्माण में 18 प्रतिशत से अधिक योगदान नहीं था। ग्राफ और इरिगोइन का तर्क है कि हालांकि 18वीं सदी के अन्त तक अमेरिका से निकाले गये राजस्व का भाग बढ़कर 13 प्रतिशत हो गया, लेकिन एकत्र किया गया वास्तविक भाग 11 प्रतिशत (1729-33) से गिरकर 4.8 प्रतिशत (1785-89) हो गया जो 1796-1800 में थोड़ा बढ़कर 5.2 प्रतिशत हो गया और यह अन्तः औपनिवेशिक हस्तान्तरण के कारण हुआ।

13.5 महान विचलन

विचलन पर बहस के तीन मुद्दे शामिल हैं। सबसे पहले, यूरोप में औद्योगिक पूंजीवाद के उदय के कारण क्या थे और ब्रिटेन पहला औद्योगिक राष्ट्र क्यों बना? दूसरा मुद्दा यह निर्धारित करने का है कि पश्चिम की प्रधानता किस समय से उभरी, और तीसरा यह है कि चीन और भारत पश्चिमी यूरोप से क्यों पिछड़ गये? केनेथ पोमरांज ने तर्क दिया है कि चीन के यांगशी डेल्टा और दक्षिण इंग्लैंड का जीवन स्तर समान था और इनके प्रति व्यक्ति आय, शहरीकरण और कृषि में श्रय उत्पादकता के स्तर तुलना योग्य थे। यह नई दुनिया की भूमि और श्रम तक पश्चिमी यूरोप की पहुँच थी जिसके कारण दोनों क्षेत्रों के बाद के आर्थिक प्रक्षेप-पथ में महत्वपूर्ण अन्तर आ गया। अमेरिका के महाद्वीप वित्तीय विकास के लिए पूँजी प्रवाह के कारण महत्वपूर्ण नहीं थे बल्कि वे इसलिए महत्वपूर्ण थे कि उन्होंने ब्रिटेन को एक पारिस्थितिक बाध्यता और एक पूर्वाभासी माल्थसवादी समस्या से निजात दिलाई। यह खाद्य सामग्री और कच्चे माल के आयात के आधार पर शहरीकरण और औद्योगीकरण कर सकता था। यह विकास उतना ही महत्वपूर्ण था जितना कि ई.ए. रिगले द्वारा उजागर किया गया लकड़ी से कोयले के रूप में ऊर्जा उपयोग में परिवर्तन। हाल के शोध कार्यों ने पोमरांज के दावों की पुष्टि की है कि यांग्शी डेल्टा और इंग्लैंड में कृषि उत्पादकता के स्तर समान थे। इसलिए उन्होंने प्रमुख 'कृषि कट्टरवाद' पर सवाल उठाया है, जिसमें कहा गया था कि यूरोप में औद्योगीकरण के स्तर कृषि उत्पादकता के स्तर में अन्तर से सम्बन्धित थे। साथ ही साथ पोमरांज ने स्वीकार किया है कि उन्होंने औद्योगीकरण के उदय में युद्ध और सैन्य राजकोषीय राज्य के उदय के महत्व पर विचार नहीं किया था, लेकिन विशेष रूप से विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भूमिका का महत्व बताया था। वह स्वीकार करते हैं कि विचलन 1800 की बजाय 1750 या 1700 में शुरू हो सकता था।

बोध प्रश्न 1

1) पश्चिम यूरोप के औद्योगीकरण में औपनिवेशिक व्यापार की भूमिका की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) पश्चिमी यूरोप की अर्थव्यस्थाओं के विकास में दास व्यापार कैसे महत्वपूर्ण था?

.....

.....

.....

.....

.....

13.6 कृषि और औद्योगिक क्रान्ति

इस अवलोकन के आधार पर औद्योगिक क्रांति से पहले की सदी में वास्तविक मजदूरी में वृद्धि न होने के बावजूद उपभोग में वृद्धि हो रही थी, जॉन डी व्रीज ने एक उद्यमशील क्रान्ति का प्रतिपादन किया। परिवार के आर्थिक व्यवहार के बदलाव ने विपणन योग्य वस्तुओं के अपेक्षाकृत अधिक उत्पाद और काम के घंटों में वृद्धि का आधार तैयार किया। मजदूरी की दरों में वृद्धि नहीं हुई लेकिन महिलाओं और बच्चों सहित परिवारों के उत्पादन और श्रम में वृद्धि ने परिवारों की आय में बढ़ोत्तरी की। ऐसे परिवारों की बढ़ी हुई आय ने चीनी, चाय और तम्बाकू जैसी नई वस्तुओं की माँग को उत्पन्न किया। इसने औद्योगिक क्रान्ति के एक आपूर्ति-पक्ष केन्द्रित व्याख्या, जिसने तकनीकी प्रगति द्वारा संचालित उत्पादन के विस्तार पर ध्यान केन्द्रित किया, के बजाय एक माँग-पक्ष केन्द्रित व्याख्या को उजागर किया। इससे परिवारों के उत्पादन संसाधनों का पुनर्वितरण हुआ और यह सापेक्ष मूल्यों में हो रहे परिवर्तन और अभिरुचियों में परिवर्तन के साथ-साथ विनिमय लागतों में गिरावट के कारण हुआ था। 17वीं शताब्दी के मध्य के बाद से यह परिवर्तन अनुशासन, दबाव या उच्च वर्ग द्वारा आम लोगों को शिक्षित करने के प्रयासों पर आधारित नहीं था बल्कि यह किसान और कोटार परिवारों की आकांक्षाओं पर आधारित था जिन्होंने खाद्य उत्पादन और आद्य-औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाया।

मार्क्सवादी तर्क यह था कि बाड़बन्दी आन्दोलन बड़े खेतों के सुदृढ़ीकरण, भूमिहीनता के उद्‌भव और कृषि में पूँजी निवेश और मजदूरी के आधार पर कृषि में पूंजीवाद के विकास का कारण बना। ब्रेनर ने वर्ग संघर्ष के महत्व और वर्ग संरचना में बदलाव पर जोर दिया है जिसने कृषि में पूंजीवाद के लिए परिस्थितियों और औद्योगिक क्रांति के लिए एक पूर्व शर्त का निर्माण किया। ज्मोलेक ने तर्क दिया है कि 17वीं और 18वीं शताब्दी में कृषि पूंजीवाद के विकास ने धीरे-धीरे कृषि की उत्पादकता में सुधार के

साथ-साथ विनिर्माण क्षेत्र पर भी उत्पादकता बढ़ाने के लिए आर्थिक दबाव डाला। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और प्रौद्योगिकी के विकास जैसे अन्य कारकों को स्वीकार करते हुए वह 'इंग्लैंड और ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति से पहले होने वाले वर्ग सम्बन्धों के परिवर्तन और उसी के सादृश्य एक अभूतपूर्व, एकीकृत और विशेष घरेलू बाजार के विकास'' पर जोर देता है (ज्मोलेक, पृष्ठ 288)।

ऐलन ने तर्क दिया है कि इंग्लैंड और नीदरलैंड जैसे देशों में शहरों और उच्च मजदूरी के विकास से कृषि क्षेत्र में भोजन और श्रम की अधिक माँग हुई। इसके कारण दोनों में कृषि क्रांति का जन्म हुआ और प्रति खेत श्रमिक उत्पादन में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई। नई फसलों के प्रारूप की शुरुआत ने जैसे तिपतिया घास (क्लोवर) की खेती और नई मार्लिंग जैसी उर्वरीकरण की तकनीकों ने उच्च उत्पादकता के विकास में योगदान दिया। इंग्लैंड में कृषि उत्पादकता फ्रांस की तुलना में अधिक थी क्योंकि 1800 में फ्रांस की तुलना में यहाँ दो तिहाई अधिक पशु शक्ति थी। भूमध्य सागरीय क्षेत्र में अश्वशक्ति की उपलब्धता और भी कम थी। ऐलन का तर्क है कि हालांकि नीदरलैंड और इंग्लैंड में कृषि क्रांतियाँ आर्थिक विस्तार के लिए अभिन्न थी, लेकिन शहरों की भूमिका ग्रामीण अंचलों की तुलना में अधिक स्पष्ट थी। यह केवल एक जमींदार कृषि क्रांति ही नहीं थी बल्कि एक भूमिधर क्रांति भी थी। भूमिधर भी शहरी श्रमिकों के लिए उपलब्ध चाय, चीनी, तम्बाकू, घड़ियाँ और उपयोग की अन्य वस्तुएँ खरीदना चाहता था। लंदन और आद्य प्रौद्योगिक केन्द्र ''विकास के इंजन'' थे (ऐलन, 2009)।

13.7 युद्ध और सैन्य राजकोषीय कारक

कई विद्वानों ने बताया है कि यूरोपीय लोगों ने युद्ध पूंजीवाद और सैन्य तकनीक विकसित की थी जिसने उन्हें दुनिया के व्यापक हिस्सों को जीतने और उन पर प्रभुत्व जमाने में सक्षम बनाया था। बारूद प्रौद्योगिकी का उपयोग करके 1800 तक वह विश्व के 33 प्रतिशत भाग को विजित करने और एशिया में व्यापार मार्गों पर प्रभुत्व स्थापित करने में कामयाब रहे थे। यूरोप में सैन्य प्रतिद्वन्द्विता और लगातार चल रहे युद्धों ने राज्यों की प्रौद्योगिकी में सुधार के लिए विवश किया। प्रतिस्पर्धी बाजारों ने नवाचार के लिए परिस्थितियाँ बनाई। हाफमैन ने तर्क दिया है कि जहाँ यूरोप के छोटे राज्य भी बारूद प्रौद्योगिक का उपयोग करके अन्य शक्तियों के साथ युद्ध जीतने के लिए बड़ी मात्रा में धन खर्च कर रहे थे, वहीं विश्व की अन्य शक्तियाँ नहीं कर रही थीं। चीन ने अपने द्वारा विकसित बारूद प्रौद्योगिकी के उपयोग और सुधार करने की कोशिश नहीं की क्योंकि उन्हें खानाबदोशों से लड़ना था, जिनके खिलाफ धनुर्धारी और घुड़सवार सेना अधिक प्रभावशाली थी। भारत और ओटोमन साम्राज्य में भी सेनाओं को बारूद प्रौद्योगिकी को विकसित करने का सीमित प्रोत्साहन था क्योंकि उन्हें खानाबदोशों के खिलाफ घुड़सवार सेना पर निर्भर रहना पड़ता था। यद्यपि ओटोमन यूरोप में प्रमुख बारूद राज्यों से लड़ रहे थे, लेकिन उनका कर राजस्व 18वीं शताब्दी के यूरोपीय राज्यों की तुलना में कम था। इसलिए, वे जीत हासिल करने के लिए पर्याप्त पैमाने पर हथियारों में नवाचार लाने या उनका आयात करने में असमर्थ थे।

ब्रिटेन में सरकार अन्य यूरोपीय राज्यों की तुलना में अधिक कर लगा सकती थी। 17वीं शताब्दी में गृह-युद्ध और अन्तर्काल के बाद अप्रत्यक्ष कराधान महत्वपूर्ण हो गया। 1713 के बाद ब्रिटेन में सभी कर-राजस्व का लगभग तीन चौथाई कर उत्पाद शुल्क

और स्टाम्प शुल्क के रूप में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन पर अप्रत्यक्ष करों के रूप में एकत्र किया गया। सरकार भविष्य में अपेक्षित कर-राजस्व के आधार पर ऋण व्यय कर सकती थी। वाणिज्यीकरण, औपनिवेशीकरण, शहरीकरण और आद्य औद्योगीकरण ने आयात के साथ-साथ ब्रिटेन में उत्पादन पर शुल्कों के लिए अधिक अवसर पैदा किये। प्रमुख यूरोपीय शक्तियाँ शक्तिशाली प्रांतीय सम्पदाओं, बड़े आकार की नौकरशाहियों और महँगे आज्ञाप्रदत्त प्रशासनों के कारण ब्रिटेन की तरह प्रभावी रूप से कर-संग्रह नहीं बढ़ा सकती थी। धनी आभिजात्य वर्ग ने कराधान के उच्च स्तर को स्वीकार कर लिया क्योंकि राज्य द्वारा उठाये गये इन कदमों ने उनके संपत्ति अधिकारों के मूल्य में वृद्धि की। एक अनुकूल वाणिज्यवादी रणनीति ने, जिसने एक विस्तार कर रही वैश्वीकृत व्यवस्था की सेवा करने से लाभ अर्जित किया, उसने तकनीकी विकास में सहायक इंग्लैंड की मजदूरी के स्तर को बढ़ा दिया।

जबकि पूर्वी यूरोप और पश्चिम, दक्षिण और पूर्वी एशिया के बड़े कृषि आधारित राज्यों में प्रतिव्यक्ति और प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में कर की दर कम थी वहीं छोटे यूरोपीय राज्यों ने वाणिज्यवादी नीतियों को अपनाकर अपने संसाधनों को बढ़ाया। भूमि आधारित हितों को करों को न बढ़ाकर बल्कि आयात और घरेलू उत्पादन पर कर बढ़ाकर सहयोगी बनाया गया। राज्य ने विभिन्न तरीकों से बाजारों की भूमिका को मजबूत करने का प्रयास किया। जमींदार और व्यापारी समूहों के बीच बने गठजोड़ ने रेलवे के विकास से पहले खानों, बन्दरगाहों और नहरों में निवेश किया। इन परियोजनाओं ने नई तकनीकों को विकसित करने के अवसर प्रदान किये जो औद्योगिक क्रांति के कारण बने। 1688 की गौरवशाली क्रांति के कारण सीधे तौर पर अधिक कुशल बाजारों और राजकोषीय नीतियों के निर्माण का जन्म नहीं हुआ। जो बदलाव आया वह स्थानीय स्तर पर लगान तलाशी की जगह राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधनों के बदल जाने का था जो संसद में प्रभावशाली हो गये।

13.8 विज्ञान और औद्योगिक प्रबोधन

17वीं शताब्दी में विज्ञान में महान प्रगति को कभी औद्योगिक क्रांति के लिए महत्वपूर्ण माना जाता था। लेकिन कुछ इतिहासकारों ने तर्क दिया है कि 1900 तक उद्योग में उत्पादन प्रक्रियाओं के लिए विज्ञान उतना उपयोगी नहीं था। यूरोप में राजनीतिक विखंडन और राज्यों के बीच लगातार टकराव ने शासकों और धनी अभिजात्य वर्ग द्वारा नई तकनीकों की माँग पैदा की। यूरोप में बौद्धिक और सांस्कृतिक एकता की मौजूदगी ने असंतुष्टों और अन्वेषकों के लिए अन्य क्षेत्रों या प्रतिद्वन्द्वी राज्यों में प्रवास करने की क्षमता का निर्माण किया। यूरोप में प्रबोधन काल के उद्‌भव से पहले जो साहित्यिक गणतन्त्र विकसित हुआ उसने 16वीं शताब्दी के बाद से विचारों के लिए एकीकृत बाजार बनाया। संस्थाओं ने बाजारों का समर्थन किया जबकि साहित्यिक गणराज्य ने विचारों के लिए बाजारों को बनाए रखना। दुनिया के अन्य हिस्सों में वैज्ञानिक विकास असफल हो गये या धीमे पड़ गये। चीनी विज्ञान अपनी व्यावहारिक उपलब्धियों के बावजूद इस बात में पर्याप्त रूप से चिलचस्पी नहीं रखता था कि चीजें कैसे और क्यों काम करती हैं और उनमें बाहर से विचारों को स्वीकार करने की अरुचि थी।

1700 तक हाइड्रोलिक्स, ऑपटिक्स, खगोल शास्त्र, वैज्ञानिक उपकरण और फसलचक्र आदि का ज्ञान यूरोप में काफी बढ़ गया था। प्रस्तावित और निर्देशात्मक ज्ञान के

सम्मिलित विकास ने एक स्वतः सुदृढ़ करने वाले पवित्र चक्र का निर्माण किया। इसलिए 18वीं और 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पश्चिम और पूर्व के बीच अन्तर तेजी से बढ़ा। मोकिर के अनुसार, न्यूटन जैसे वैज्ञानिकों के विचारों से ज्यादा 'सावधानीपूर्वक माप, सटीक सूत्रीकरण, अच्छी तरह परिकल्पित किये गये प्रयोगों, अनुभवजन्य परीक्षण और गणितीयकरण की संस्कृति ने औद्योगिक क्रांति के शुरुआती चरणों में आविष्कार और नई तकनीकों को अपनाने का माहौल तैयार किया। औद्योगिक प्रबोधन ने पश्चिम यूरोप में औद्योगिक क्रांति की नींव रखी हालांकि यह पहली बार ब्रिटेन में शुरू हुई। उनका तर्क है कि सुंग-कालीन चीन और पुनर्जागरण काल यूरोप में पूर्व की 'तकनीकी प्रफुल्लता' ठप्प हो गयी थी और वह बलपूर्वक कहते हैं कि आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने के लिए नवाचार की नई संस्कृति विश्व में एक नई और अनूठी घटना थी।

13.9 मजदूरी और कारक मूल्य

न्यूकोमेन इंजिन, स्टीम इंजिन में सुधार, कोक प्रगलन, स्पीनिंग जेनी और वाटर फ्रेम के आविष्कार ने ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति को जन्म दिया। फिर भी ब्रिटेन एकमात्र ऐसा देश नहीं था जिसने विज्ञान में उन्नति की थी। फ्रांसीसियों ने कागज, वस्त्र, घड़ी बनाने और काँच के उद्योग विकसित किये थे। ब्रिटेन में दुनिया के अन्य भागों की तुलना में मजदूरी की दरें अधिक थी जबकि पूँजी और ऊर्जा के मूल्य कम थे। इसलिए, ब्रिटेन के व्यवसायों में श्रम की बजाए अधिक पूँजी और ऊर्जा का उपयोग करने और प्रौद्योगिकी को सुधारने या आविष्कार करने के लिए एक मजबूत प्रोत्साहन था। उत्पाद नवाचार को प्रोत्साहित किया गया क्योंकि उच्च स्तर की मजदूरी ने उपभोक्ता वस्तुओं के लिए एक व्यापक बाजार का निर्माण किया। उच्च वास्तविक मजदूरी ने ब्रिटेन में अधिक लोगों को अपनी शिक्षा और प्रशिक्षण का भुगतान करने में सक्षम बनाया। साक्षरता और संख्यात्मकता के उच्च स्तर ने मौजूदा प्रौद्योगिकी का आविष्कार करने और सुधार करने की क्षमता में वृद्धि की। ब्रिटेन में मजदूरी और कीमतों की संरचना स्वयं में वाणिज्यीक और साम्राज्यवादी विस्तार में उसकी सफलता का परिणाम थी। भले ही वैज्ञानिक विकास ने औद्योगिक क्रांति में योगदान दिया हो लेकिन अगर आविष्कारों की कोई माँग नहीं होती तो ज्यादा प्रगति नहीं हुई होती। फ्रांस में जैक्वार्ड लूम, जिसने फीता और बुने हुए कपड़े बनाने की लागत को कम कर दिया था, उत्पादन में पर्याप्त विस्तार नहीं कर सका क्योंकि कपास उद्योग की तुलना में इन उत्पादों की माँग सीमित थी।

ऐलन के अनुसार, चार तरीके थे जिनमें अन्य देशों की तुलना में ब्रिटेन में मजदूरी अधिक थी। सर्वप्रथम, विनिमय दर के संदर्भ में, चांदी के मूल्य के संदर्भ में मापी गई मजदूरी या चाँदी-मजदूरी अन्य देशों की तुलना में ब्रिटेन में उच्च जीवन स्तर का संकेत देती है। वे पूँजी के मूल्यों की तुलना में भी अधिक थी और अन्त में कोयले या ऊर्जा की कीमत की तुलना में उत्तरी और पश्चिमी ब्रिटेन में मजदूरी बहुत अधिक थी। सस्ती ऊर्जा ने पूँजी द्वारा श्रम के प्रतिस्थापन को प्रोत्साहित किया। लंदन शहर ने, जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण बढ़ा, कोयले की माँग पैदा की। यह कोयले की बढ़ती हुई माँग थी जिसके कारण कोयला संसाधनों का दोहन हुआ।

13.10 महान और लघु विचलन– पश्चिम यूरोप और शेष विश्व

अनेक लेखकों ने इस पर प्रकाश डाला है कि 17वीं शताब्दी तक आते-आते मजदूरी के रूप में यूरोप और एशिया के बीच और पश्चिम यूरोप और दक्षिण, मध्य और पूर्वी यूरोप के बीच अन्तर बढ़ता जा रहा था। एक अनुमान के अनुसार, 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत में चाँदी-मजदूरी, ब्रिटेन में चाँदी-मजदूरी का लगभग 40 प्रतिशत थी। भारत में अनाज के रूप में मजदूरी 17वीं शताब्दी के अन्त तक ब्रिटेन के ही करीब थी। लेकिन 18वीं शताब्दी में इसमें काफी गिरावट आई। भारत यूरोप के परिधीय देशों के तुलनीय था। यूरोप में उच्च चाँदी की मजदूरी व्यापार की गई वस्तुओं के ऊपर उच्च नियंत्रण, शहरीकरण के उच्च स्तर और गैर-कृषि उत्पादन के ऊँचे स्तर को दर्शाती है। इसी तरह, लंदन और एमस्टर्डम की तुलना में बीजिंग, कैन्टन या सुझाऊ में जीवन स्तर कम था। एक खोज यह थी कि चीनी और जापानी शहरों में पूरी अठारहवीं शताब्दी के दौरान अकुशल श्रमिकों का जीवन स्तर लगभग दक्षिणी यूरोप के अकुशल श्रमिकों के समान था। चूँकि केवल इंग्लैंड और निम्नतटीय देश, और सभी यूरोपीय देश नहीं, प्रारंभिक आधुनिक काल में शेष विश्व से आगे निकल गये थे, इसे महान और लघु विचलन दोनों के प्रमाण के रूप में माना जाता है।

तीर्थंकर राय ने गणना की है कि 1763 में बंगाल में औसत आय इंग्लैंड और वेल्स में आय का एक 15वाँ हिस्सा थी और यह 12.5 रूपये या 1.25 पाउंड थी। इसी प्रकार इन आयों का चाँदी के समतुल्य में भी बराबर का अन्तर था लेकिन अन्न समतुल्य आय इंग्लैंड की आय की तुलना में एक 5वाँ हिस्सा थी। दक्षिण भारत के लिए पार्थसारथी की तरह वह तर्क देते हैं कि बंगाल के किसान की हालत कैलोरी की पर्याप्तता की दृष्टि से यूरोप और यांग्शी डेल्टा की तरह ठीक-ठीक थी। हालांकि चीन के किसानों की तरह बंगाल के किसानों के लिए भी निर्वाह के जोखिम अधिक असुरक्षित थे। भारत और चीन दोनों में पूर्ण निजी सम्पत्ति के अधिकारों की अवधारणा मौजूद नहीं थी लेकिन दोनों देशों में पर्याप्त अनौपचारिक या प्रथागत अधिकार थे। भारत में व्यापारियों के प्रथागत कानून अंतर्राष्ट्रीय कपड़ा बाजार में उनकी एक अग्रणी स्थिति को सुरक्षित करने के लिए काफी अच्छे थे। जो महत्वपूर्ण था वह यह था कि 1670 और 1800 के बीच भारत और चीन में प्रति व्यक्ति कर राजस्व में चाँदी के रूप में 20 से 15 और 7 से 3-4 के बीच गिरावट आई। चीन में प्रति व्यक्ति कर राजस्व 1700 से 1850 तक आधे से भी कम तक गिर गये। वह जो यूरोप में हो रहा था, उसके ठीक विपरीत था। पश्चिम और दक्षिण एशिया के राज्यों ने मुखियाओं, सैन्य कुलीनजनों, और जमींदारों या जागीरदारों के साथ सम्प्रभुता साझा की। बाहरी खतरों से अधिक आन्तरिक विद्रोह से प्रभावित चीन और भारत ने कर स्तरों को मध्यम रखते हुए तुष्टिकरण की नीति अपनाई।

प्रसनन पार्थसारथी ने संकेत किया है कि यद्यपि भारत और चीन में विकास के निराशावादी आकलन कठोर संख्यात्मक पद्धतियों पर आधारित हैं लेकिन वे जिन आँकड़ों पर भरोसा करते हैं, उनकी सीमा या गुणवत्ता अक्सर अधूरी और अपर्याप्त होती है। यह भारत में चाँदी के प्रवाह और जीवन स्तर के आकलन पर लागू होता है। उनके विचार में भारतीय संस्थाओं की अपर्याप्तता को बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है। भारत के अन्न बाजार यूरोप की तुलना में कम एकीकृत थे लेकिन कपास के लिए अच्छी मात्रा में बाजार अधिक एकीकृत था। पूँजी बाजार यूरोप के समान ब्याज की

दरों के साथ कार्य करता था। भारत की राज्यसत्ता ने कृषि में निवेश करके अच्छे समय में खेती और उत्पादन का विस्तार करने और संकरों के बाद उसकी मदद करके सही हालत में लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इसके अलावा, जयपुर, तजौंर और लखनऊ के शासकों के संरक्षण के आधार पर खगोलविज्ञान, धातुकर्म, गणित और विनिर्माण का विकास हुआ।

पार्थसारथी के अनुसार, भारत और चीन के उन्नत क्षेत्रों में कोयला, लोहा और भाप परिसर विकसित नहीं हुआ क्योंकि यहाँ आर्थिक और पारिस्थितिक दबाव और इन चुनौतियों के लिए आर्थिककर्त्ताओं और राज्य की प्रतिक्रियाओं में अन्तर था। ब्रिटेन में राज्यसत्ता सूती कपड़ा उद्योग के लिए बहुत सहायक साबित हुई। व्यवसायी भारतीय वस्त्रों की प्रतिस्पर्धा के प्रति अत्यधिक सचेत थे और प्रौद्योगिकी में महत्वपूर्ण खोजों ने ब्रिटेन को आगे बढ़ने में सक्षम बनाया। यहाँ तक कि एडम स्मिथ ने ब्रिटिश व्यापारियों द्वारा भारतीय वस्त्रों की प्रतियोगिता का सामना करने का उल्लेख किया था। चूँकि घरेलू उपयोग के लिए लंदन कोयले का एक प्रमुख उपभोक्ता था इसलिए उचित कीमत के कोयले की आपूर्ति सुनिश्चित करना राजनैतिक रूप से महत्वपूर्ण था। कोयले पर कर लगाने की क्षमता ने राज्य को कोयला उद्योग को बढ़ावा देने के लिए इच्छुक बनाया। चीन में उत्तर में पाया जाने वाला कोयला मुख्य रूप से यांग्शी क्षेत्र के मुख्य क्षेत्रों से दूर था। चीनी राज्य के राजकोषीय संसाधन सीमित थे और इसने अभाव और अकाल से निपटने के लिए अन्न भंडारों को कायम रखने के लिए भारी रकम आवंटित की। भारत में अलग किस्म के दबाव थे क्योंकि गंगा-यमुना दोआब जैसे सघन आबादी वाले क्षेत्रों में भी 18वीं शताब्दी में पर्याप्त भाग वनों से ढका हुआ था। चूंकि भारत के उन उन्नत क्षेत्रों को पश्चिम और मध्य यूरोप और चीन के कुछ भागों की तरह लकड़ी की कमी का सामना नहीं करना पड़ा इसलिए उनके पास घरेलू या औद्योगिक उद्देश्यों के लिए कोयले और भूरे कोयले (लिग्नाइट) का उपयोग करने के लिए बहुत कम प्रोत्साहन था।

कावेह यजदानी ने तर्क दिया है कि 18वीं शताब्दी का गुजरात और मैसूर ब्रिटिश विजय से पहले, एक परिवर्तन के चरण में था जिसके लिए एक सफल औद्योगीकरण की प्रक्रिया की संभावना खुली, हुई थी। वह निष्कर्ष निकालते हैं कि यद्यपि मैसूर ने एक महान बाजार उन्मुखीकरण को देखा था लेकिन यूरोप के उन्नत भागों की तरह कोई कृषि उपभोक्ता क्रांति नहीं हुई थी। राज्य ने अर्ध-आधुनिकीकरण देखा भले ही पूंजीपति वर्ग कमजोर था और वैज्ञानिक और बौद्धिक विकास अपर्याप्त थे। उन्होंने दावा किया कि अगर औपनिवेशिक शासन नहीं होता तो राज्यसत्ता के नेतृत्व ने बलपूर्वक लादे जाने वाली औद्योगीकरण की प्रक्रिया एक बार स्वदेशी परिस्थितियों के परिपक्व होने के बाद संभव हो सकती थी। 18वीं शताब्दी में गुजरात में एक बड़ा बैकिंग और लघु उद्योग क्षेत्र था, जीडीपी में वृद्धि हुई, और आयात में वृद्धि हुई, लेकिन ब्रिटेन या हालैंड की तरह उपभोक्ता या उद्यमशील क्रान्ति के कोई संकेत नहीं मिलते। लकड़ी की प्रचुर आपूर्त्ति, भू-जलवायु, परिस्थितियों और वस्त्रों ने वैश्विक नेतृत्व में तकनीकी नवाचारों या कोयला खदानों को खोजने के लिए प्रोत्साहन को कम कर दिया। सबसे बड़ा अन्तर कोयला खनन और मैकेनिकल इंजीनियरिंग में था जो ब्रिटिश और यूरोपीय औद्योगीकरण की प्रेरक शक्तियाँ थे।

बोध प्रश्न 2

1) पश्चिम यूरोप के आर्थिक विकास में युद्ध और सैन्य राजकोषीय नीतियों की भूमिका पर संक्षिप्त में चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) क्या पश्चिमी यूरोप और शेष विश्व के आर्थिक विकास में कोई विचलन था? यह कब और कैसे उत्पन्न हुआ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13.11 सारांश

औद्योगिक क्रांति के प्रारंभ के लिए कृषि पूँजीवाद के उद्‌भव, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास, राजकोषीय और राज्य नीतियाँ, पूँजी के सापेक्ष श्रम की लागत, और उपनिवेशों की भूमिका जैसे कारकों के सापेक्ष महत्व पर अभी भी वाद-विवाद चल रहा है। अनेक विद्वानों का कहना है कि औद्योगिक क्रांति और पश्चिमी यूरोप और शेष विश्व का विचलन दीर्घकालीन कारकों या अन्तर्जात विकास का एक परिणाम था; अन्य विद्वान औपनिवेशिक शोषण पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। हाल ही में, गैर-यूरोपीय विश्व में विकास की संभावनाओं को अनवरत रूप से कम करके आंकने को रेखांकित किया गया है। हालांकि अब वाद-विवाद के तर्क अधिक परिष्कृत हैं। लेकिन बहस अभी खत्म नहीं हुई है।

13.12 शब्दावली

कोटार : (स्कॉटलैंड और आयरलैंड में) एक खेत मजदूर या श्रम के बदले एक झोपड़ी पाने वाला काश्तकार।

विचलन : पश्चिम यूरोप और शेष विश्व के बीच आर्थिक और तकनीकी अन्तर की धारणा जो प्रारंभिक आधुनिक समय में उत्पन्न हुई।

उद्यमशील क्रान्ति : परिवार के आर्थिक व्यवहार के बदलाव ने औद्योगिक क्रांति से पहले विपणन योग्य वस्तुओं के अधिक उत्पादन और काम के घंटों में वृद्धि की जिससे परिवार की आय में वृद्धि हुई और इसलिए उसके उपभोग का स्तर बढ़ गया।

13.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 13.3 देखें।

2) भाग 13.2 और 13.4 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 13.7 देखें।

2) भाग 13.10 देखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इस पाठ्यक्रम के लिए संदर्भ ग्रंथ

A. L. Morton, *A People's History of England*.

Allen, R. C., & Weisdorf, J. L. (2010), 'Was there an 'Industrious Revolution' before the Industrial Revolution? An Empirical Exercise for England, c. 1300-1830', Department of Economics, University of Copenhagen.

Arnold Hauser, *Social History of Art*. Vols 2 and 3. Routledge, London, 1962.

Arvind Sinha, *Europe in Transition*: *From Feudalism to Industrialization*, Manohar, Delhi, 2010.

Aston, T.H., & C.H.E. Philipin (eds.), *The Brenner Debate: Agrarian Class Structure and Economic Development in Pre-Industrial Europe*, Cambridge University Press, 1985.

Aston, Trevor, (ed.), *Crisis in Europe 1560-1660*, Garden City, N.Y. 1967.

Bailyn, Bernard, *Ideological Origins of the American Revolution*, Harvard University Press, 1967.

Benedict, Philip & Myron P.Gutmann, *Early Modern Europe: From Crisis to Stability*, University of Delaware Press, 2006.

Cameron, Euan (ed.), *The Sixteenth Century*, Oxford University Press. 2006.

Cameron, Euan, *Enchanted Europe*: *Superstition, Reason, and Religion*, 1250-1750, Oxford, Oxford University Press, 2010.

Christopher Bayly, *Rulers, Townsmen and Bazaars: North Indian Society in the Age of British Expansion, 1770-1870*. Cambridge University Press, 1983.

Christopher Hill, *The Century of Revolution, 1603-1714*, London And New York: Routledge. 1980 (first published in 1961).

Christopher Hill, *The World Turned Upside Down: Radical Ideas during the English Revolution*, London: Penguin Books, 1975 (first published in 1972).

Cohen, H. F.(1994), *The Scientific Revolution*: *A Historiographical Inquiry*, Chicago & London: University of Chicago Press.

D.H. Pennington, *Europe in the Seventeenth Century*, London and New York: Longman, 1989.

Ferling, John, *Almost a Miracle: The American Victory in the War of Independence*, Oxford University Press, 2007.

G.H.R. Parkinson (ed.), *The Renaissance and Seventeenth-Century Rationalism*, London and New York: Routledge, 1993.

George Rude, *Europe in the Eighteenth Century*: *Aristocracy and the Bourgeois Century*, Phoenix Press, London, 2002.

HG Koenigsberger, *Early Modern Europe 1500-1789*, Longman, 2009.

Irfan Habib, 'Colonialization of the Indian Economy, 1757-1900', *Social Scientist*, Vol 3, No 8 March 1975, pp 23-53.

Irfan Habib, 'Towards a Political Economy of Colonialism,' *Social Scientist*, Vol. 45, No. 3/4 (March-April 2017), pp. 9-15

Jan de Vries, 'The Great Divergence after Ten Years: Justly Celebrated Yet Hard to Believe,' *Historically Speaking*, Volume 12, Number 4, September 2011, pp. 13-15.

Jan de Vries, *The Economy of Europe in an Age of Crisis, 1600-1750,* Cambridge, CUP, 1994.

Jan de Vries, 'The Industrial Revolution and the Industrious Revolution', *Journal of Economic History* , 1994, Vol. 54, pp. 249-70.

Jeremy Black, *Europe and the World, 1650-1830*, Routledge, 2002.

Jeremy Black, *History of Europe: Eighteenth Century Europe, 1700-1789*, New York, Macmillan Education, 1990.

Joel Mokyr, *A Culture of Growth: The Origins of the Modern Economy*, Princeton University Press, 2017.

John Christian Laursen, 'Skepticism' in *New Dictionary of the History of Ideas*, volume 5.

John Merriman, *A History of Modern Europe*, New York: W.W. Norton & Company, 2010.

John Robertson, *Enlightenment: A Very Short Introduction*, Oxford: Oxford University Press, 2015.

Kaspar Von Greyerz, *Religion and Culture in Early Modern Europe, 1500-1800*. Oxford: Oxford University Press, 2008.

Kaveh Yazdani, *India, Modernity and the Great Divergence: Mysore and Gujarat* (17th to 19th C.), Brill Leiden 2017.

Kenneth Pomeranz, *The Great Divergence: China, Europe, and the Making of the Modern World Economy,* Princeton 2000.

Lindberg, David C. (1992), *The Beginnings of Western Science,* Chicago: University of Chicago Press.

M. S. Anderson, *Europe in the Eighteenth Century 1713-1783*, Longman, 1970.

Martin Fitzpatrick, Peter Jones, Christa Knellwolf, and Iain McCalman (eds.), *The Enlightenment World*, London and New York: Routledge, 2004.

Mendels, F. (1972), 'Proto-industrialization: the first phase of the industrialization process', *Journal of Economic History*, Vol. 32, 241-61.

Michael Andrew Žmolek, *Rethinking the Industrial Revolution: Five Centuries of Transition from Agrarian to Industrial Capitalism in England*, Brill Leiden 2013.

Munck, Thomas 2005, *Seventeenth-Century Europe: State, Conflict and the Social Order in Europe, 1598-1700*, Basingstoke: Palgrave Macmillan.

Olwen Hufton, *Europe: Privilege and Protest 1730-1789*, Second Edition. Blackwell Publishers, 2000.

Parker, Geoffrey & Leslie M. Smith (eds.), *The General Crisis of the Seventeenth Century*, Routledge, 2nd edition, 1997.Pennington, D.H. 1989, *Europe in the Seventeenth Century*. Second Edition. London and New York: Longman. 1989 (Original Edition in 1970).

Philip Weiner (ed.), *Dictionary of the History of Ideas*, volume 4. Entry on 'Skepticism in Modern Thought' by Richard H. Popkin.

Prasannan Parthasarathi, 'Review: The Great Divergence,' *Past & Present*, No. 176 (Aug., 2002).

Prasannan Parthasarthy, *Why Europe Grew Rich and Asia Did Not: Global Economic Divergence*, *1600-1850*, Cambridge University Press, 2011.

R. C Allen and J.L. Weisdorf, 'Was there an 'industrious revolution' before the industrial revolution? An empirical exercise for England, c. 1300-1830,' *Economic History Review*, 64, 3 (2011.

R.S. Woolhouse, *A History of Western Philosophy: The Empiricists*, Oxford: Oxford University Press, 1988.

Robert Allen, *Global Economic History: A Very Short Introduction*, Oxford University Press 2011.

Roderick Floud and Paul Johnson (eds), *The Cambridge Economic History of Modern Britain, Volume I: Industrialisation, 1700-1860*, Cambridge University Press, 2006 edition.

Roy Porter and Mikulas Teich, *The Enlightenment in National Context*, Cambridge: Cambridge University Press, 1981.

S. Shapin, *The Scientific Revolution*, Chicago, University of Chicago Press. 1996.

Shashi Bhushan Upadhyay, *History in the Modern World: Western and Indian Perspectives*, Delhi: Oxford University Press, 1916. Chapter 8: 'Enlightenment Historiography'.

Thomas Hahn-Bruckart, 'Dissenters and Nonconformists', at ieg-ego.eu/en/threads/crossroads/religious-and-confessional-spaces, accessed 21.06.2020.

Thomas Munck, *The Enlightenment: A Comparative Social History, 1721-1794*, New York: Oxford University Press, 2000.

Wood, Gordon S. *The American Revolution: A History*. New York, 2002.